॥ ओ३म् ॥

हर्षिचरितामृतम्

(नाटकम्)

मशेषोदयदायि दिव्य
वच: सुधासाररसालहारम् ।
वन्दऽहमानन्दिपदारविन्दं
श्रीमद्दयानंदमहामुनीनामं ॥



—रचयिता—
मोहमयीगुरुकुलस्य
प्रतिष्ठित स्नातक: सत्यव्रत: वेदविशारद:
माटुंगा, बम्बई - १९


महर्षि-पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसन्धान
तिथी......
पु०सं०......
भारती पुस्तकालय



॥ ओ३म् ॥

महर्षिचरितामृतम्

संस्कृत नाटक

व

हिन्दी अनुवाद



निःशेषसंसृतिदुरूहविधेयधुर्या
मेधाविनः सफलताप्तितयाऽद्रियन्ते ।
निःश्रेयसे जगति यां परमावदातां
मेधां विधेहि मयि तां परमेश ! भव्याम् ॥

—रचयिता—

मोहमयीगुरुकुलस्य
प्रतिष्ठितस्नातकः सत्यव्रतः वेदविशारदः
माटुंगा, मुंबई–१९

: ग्रंथ प्राप्ति स्थान :

(१) प्रकाशक से

(२) गुरुकुल आश्रम, गुरुकुल लेन घाटकोपर-बम्बई-७७

मूल्य रु. ५)

द्वितीय संस्करण] [२०००

: प्रकाशक :

राजप्रकाश व कीर्तिकुमार कामदार
"सत्यसदन" प्लॉट नं. २९५, भीमानी स्ट्रीट
माटुंगा, बम्बई-४०००१९

दयानन्दाब्द १५३] [विक्रमाब्द २०३

: मुद्रक :

श्री देवेश्वर शर्मा, निराला मुद्रक
१४०, साने गुरुजी मार्ग, बम्बई-४०००११



समर्पण

आर्यजीवन संपन्न 'महर्षिचरितामृतम्'।
जननी राजकीर्तिकी श्रीसुमित्राकोसमर्पित ॥

*

अनुक्रम

१. समर्पण

२. कृतज्ञता प्रकाशन

३ अभ्यर्थना

४. ग्रंथकारका परिचय

५. आशीर्वचन

६. महर्षिचरितामृत नाटक प्रारंभ

७. शुद्धिपत्र

———



कृतज्ञताप्रकाशः

(१) षड्दर्शनार्य्यभाष्यकाराणां पूज्यचरणानामाचार्यप्रवराणां गुरुवर श्रीमायाशङ्करशर्मणां भृशं कृतज्ञोऽस्मि यैर्नाटकस्यास्य प्रणेतुः परिचयं लिखित्वा परिचायितोऽयं ग्रन्थकारः ।

(२) स्वर्गतानामार्य्यकवीन्द्राणां श्रीमुनिमेधाव्रताचार्याणां दयानन्ददिग्विजयमहाकाव्याद्यनेकग्रन्थानां प्रणेतृणामपि कृतज्ञोऽस्मि यैराशीर्वचनैः सत्कृत्योत्साहितोऽयं जनः ।

(३) सुहृद्वरो-संभूयकारिणौ-श्रीहीरालाल-ओङ्कारनाथौ मदर्थे द्वावप्यभूतामभिनन्द्यसत्वौ ।

(४) अन्येऽपि सहाया धन्यवादानर्हन्ति ग्रन्थकारस्य ।

कृतज्ञता प्रकाशन

१] षड्दर्शनार्यभाष्यरचयिता, पूज्य आचार्यप्रवर, गुरुवर्य श्री मायाशंकरजी शर्मा का मैं हृदय से कृतज्ञ हूं, जिन्होंने इस नाटक के रचयिता का परिचय लिखकर इस ग्रंथ कारकों लोकपरिचित किया है।

२] मैं श्री 'दयानन्द दिग्विजय' महाकाव्यादि अनेक ग्रंथों के लेखक सुप्रसिद्ध आर्यकवींद्र (स्वर्गीय) श्री मुनिमेधाव्रताचार्य का आभार मानता हूँ कि उन्होंने मुझे पद पद पर उत्साह प्रदान कर प्रोत्साहित किया।

३] मित्रवर्य श्री हीरालालजी एवं श्री ओंकारनाथजी इन दोनों भाइयों ने मिलजुलकर जो सहानुभूति प्रदर्शित की है, उसके लिये इन दोनों को धन्यवाद देता हूं।

(४) इस संस्कृत नाटक का हिन्दी अनुवाद मित्रवर आचार्य विभुदेवजी शास्त्री ने किया है। तदर्थं वे समस्त हिंदी जगत् के धन्यवाद के पात्र है।

(५) इस ग्रन्थ को मुं. प्र. आर्यविधा सभा घाटकोपर ने , प्रकाशित कराके महर्षि दयानंदजी के समस्त भक्तजनों को एवं सत्साहित्य रसिकों को उपकृत किया है ।

(६) इस ग्रथ को शीघ्र प्रकाशित कराने के लिए स्नेह भाजन श्री जददेवजी आर्य, श्री गुलझारीलाल जी आर्य, श्री भगवती प्रसादजी गुप्ता, श्री गुलाटीजी, श्री मल्होत्राजी, श्री जुनेजा जी श्री अर्जुन भाई पटेल श्री नवीनचन्द्र जी पाल, श्री जगरामजी गुप्त, श्री सिद्धनाथ जी आर्य, श्री मिठाईलाल सिंह जी, डाँ. महेन्द्रकुमार शास्त्री आदि अनेक बन्धुओं की बार २ प्रेरणा के लिए मैं उन सबका हार्दिक कृतज्ञ हूं ।

(७) बंबई की "आर्यसमाज स्थापना शताब्दी समारोह समिति" की ओर से रु. २५००) का चैक द्वारा प्रकाशन–सहायता दी गई है, अतः उक्त समिति और उसके कार्यकर्ताओं मैं अत्यंत कृतज्ञ हूं ।

(८) और अत में पं. श्री देवेश्वरजी निराला मुद्रक परिवार का भी कृतज्ञ हूं । प्रेस की कई असुविधाओं के होते हुये भी उन्होंने पूर्ण कोशिष करके छाप दिया ।

(९) जिनकी अलौकिक गुणगरिमाने मुझे इस ओर आकृष्ट किया वे महर्षि दयानंद सरस्वती के हम सब अत्यन्त ऋणी हैं ।

इतिशम्

२९५ "सत्यसदन" दि. २०-४-१९१९

माटुंगा–बम्बई–१९ विदुषां विधेयः

स्नातक सत्यव्रतः

शुद्धिपत्रम्

अपेक्षा थी कि शुद्धिपत्र देना न पड़े किन्तु सिसकाक्षर भंग और असावधानी से विवशता है। अतः मुख्य २ अशुद्धियां नीचे दी जाती है। पाठक कृपया ठीक कर ले।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
५	२५	कहा	कहो
७	१६	कीर्तिक	कीर्तिसे
७	२७	मतेभराज	मत्तेभराज
१०	७	यथाथेव	यथार्थैव
१२	३	निद्राघं	निद्रार्धं
१३	१४	असदिग्ध	असंदिग्ध
१६	१७	वेदं	वेदा
१८	६	द्वा	द्वौ
१९	११	...	प्रकाश को देख
२९	८	गहीनो	गहहीतो
३६	१६	गवषेत्येष	गवेषयत्ये
३८	१६	सभाविती	संभाविता
३८	८	मुमाफिर	मुसाफिर
४६	१२	विजनान्ते	विसर्जनान्ते
४८	१२	दशनम्	दर्शनम्
४९	२०	प्रतिभा	प्रतिमा
५२	१६	नेष	नैष
५४	१	कलनि	कलित
५८	११	मषय	मर्षय
६०	२०	प्रघानानन्द	प्रधाननिन्दा
६२	२०	पवित्रा	पवित्र
६८	४	तर्वर्षिणी	वर्षिणी
७७	१२	सुझमें	मुझमें
८२	५	मोदाय	मोदमादाय
८३	३	प्रथति	प्रयति
८६	१	ऽस्म	ऽस्मि
८८	१९	घट्ट	घट्टे
८९	१३	विथाम	विश्राम
९१	१०	को	की
९४	१३	विभावया	विभावर्या
९६	३	मामस	मानस
,,	१४	विश्रमाय	विश्रामाय
९९	४	त्वगत	स्वगत
१००	२०	मषय	मर्षय
१०२	२	विघये	विधेये
१०३	५	करनजी	करसनजी
१०५	१३	विघोपाजन	विधोपार्जन
१०८	२	श्रमात	श्रयति
१०९	२	आँख	आँखें
११०	१८	महोवसार	मोहावसर
१११	१७	भव्यतर्थि	भव्यार्थता
११२	१	स्नदमेयरुप	स्तदमेयरुपं
११३	१	मस्त्स	मानस
११४	३	भवन	भगवन
,,	१०	वादेनाम्	वेदिनाम्
,,	१३	माचमितु	मोचयितुम्

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्धि
११५	२२	लया	गया
११८	१४	क्रमणन	क्रमणेन
१२४	९	विषदगते	विषादगर्ते
१२६	२२	काम	कामं
१२८	२३	महरणम्	मघहरणम्
१३३	१६	पिशाव	पिशाच
१३६	२०	गव	गर्वं
१३७	,,	खर्वमव	खवंगवं
१३९	३	भन	जन
१४५	१२	लोकामत	लोकायत
१४७	१	वेदे	वेद
,,	१७	आचार्यं	आचारार्थं
१५१	१	सत्यवान	सत्यवचन
,,	२०	श्वन्य	धन्य
१५३	१३	ग्रह	आह
१५७	१२	ओरथी	ओखी
,,	२४	हेरी	मेरी
१६२	६	मातरि	मार्जार
१६५	१०	तमोपशुभ	तवोपशुभ
१६८	१३	मसूदोष	मस्तदोषं
१७१	२०	कोहरा	को कौन हरा
१७३	१३	हमारा	तुम्हारा
१७६	१	चतुर्थोऽङ्कः	तृतीयोऽङ्कः
१७८	४	पश्यन्ता	पश्यन्तो
१८३	११	क्ता	क्या
१८५	३	सुभमति	शुभमति
१८९	२२	यघोचित	यथोचित

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
१९२	१७	त्विप्रे:	विप्रैः
२००	७	सिन्धु:	सिन्धु सत्यबधुः
२११	९	पालन	वातेन
२१२	१४	मातानुचर	मतानुचर
२१४	१८	च्छौ	च्छैल
२१७	१६	उन्नति	उन्नति
२१९	२५	स्वाथमिबुदी	स्वार्थंबुदीय
२२७	२	पारस्पारिक	पारस्परिक
२२८	७	ऋत्वम्	ऋत्विम्
२२९	१	कसे	कैसे
२३०	११	रेकाऽपि	रेकोऽपि
२३२	४	वशादुपति	वशादुपैति
,,	६	अिचारमो	विचारतो
२३६	७	चमत्केरवे	चमत्कैरवे
२४२	२	शनः	शनैः
,,	१२	प्रसन्नवत्तयः	प्रसन्नवृत्तय
,,	१६	मायपुरुषा	मार्यपुरुषा
२४५	१	दुगन्त	दुर्दान्त
,,	६०	मूघन्यता	मूर्धन्यता
२५०	१	सव	सर्वं
,,	६	क्षम्यता	क्षम्यंतां
२५४	१	काक्षय	कौक्षेय
२५५	१	म्लेक्षोंसे	म्लेच्छों से
२५८	१०	गतव	गतैव
,,	१६	सर्वस	सर्वैन
२६०	२	निगमावसर	निर्गमनावसर

आर्य्यकवीन्द्रमहाभाग; श्रीमेधाव्रतमुनिमहोदयैर्दयानन्द-
दिग्विजयाद्यनेककाव्यनाटकप्रबन्धकृद्भिः प्रेषितम्

शुभाशंसनम्

[१]

श्रीमन् वेदविशारदार्यसुकवे ! सत्यव्रत स्नातक !
स्वाशातीतफलान्वितं रसमयं गीर्वाणगीर्गौरवम् ।
पाठपाठमहो ! सुनाटकमिदं श्रीमद्दयानन्दसद्-
ब्रह्मश्चर्षेरितामृतेन रुचिरं तृप्यामि नाहं ध्रुवम् ॥

[२]

सौराष्ट्रसन्मणिमहर्षिचरित्रचित्रं
श्रेयस्करं व्यरचि चारुसुवर्णरम्यम् ।
सौराष्ट्रजेन कविना वरनाटकं तद्-
भक्त्येतिगर्वपदमार्यनृणां निकामम् ॥

[३]

हितकरीं जगतो जगतो गुरोः
सुकृतिनः कृतिनः प्रवरां कृतिम ।
तव पवित्रचरित्रमयीमहं-
समवलोच्य मुदम्बुधिमग्नवान ॥

[४]

अभिनन्दनमर्हतीह मे-सुरवाङ्नाटककृत्कविभृं शम् ।
ऋषिराजगुरोॠणादय-ननु मुक्तो गुरुतर्पणात्सुधीः ॥

[५]

साहित्यरत्नेन पदेन भूषितः सत्यव्रतः सत्कविरार्यसंस्तुतो ।
सरस्वतीगाधनकीर्तिकौमुदीं प्रसारयेत्प्राज्ञमनोहरां प्रभो ।

अभ्युदयाभिलाषी—
मुनिमेधाव्रताचार्यो मुख्याचार्य-आर्षकन्यागुरुकुलस्य दिल्लीस्थ-
नरेलानगरवर्तिनः ।

दि. २-४-१९६४ गुरुवार

लेखकमहोदयस्य अल्पतमः परिचयः

अस्ति भगवद्भिः श्रीकृष्णादिभिर्महात्मभिः सेवितस्य पश्चिमाब्धितरङ्गधूतस्य सौराष्ट्रदेशस्याङ्कलालिता विविध-विद्याव्यापारकृष्यादिकर्मबहुला 'अमरेली' नाम नगरी। तत्र वास्तव्यः श्रीमहर्षिदयानन्दसरस्वतीस्वामिना दर्शिते वैदिके धर्मे बहुश्रद्धः गुर्जरगिरः शिक्षकमहोदयः स्वर्गतः 'श्रीहीराचंद्र मास्तर' इत्यभिधया प्रसिद्धिं गतः—परिचये मदीये बहुशः सम्प्राप्तः। स कदाचित् मोहमयीं (मुम्बई) निकषास्थिते सान्ताक्रुझनगरे संनिविष्टं मुम्बई प्रदेश आर्यविद्यासभया क्रिय-माणप्रबन्धं गुरुकुलं चतुर्दशवर्षदेशीयेन केनचित् शिशुना सह सम्प्राप्तवान्। तदानीमहं तत्राचार्यतया संस्कृतवाङ्मयाध्या-पनमकरवम्। चिराल्लब्धेन श्रीहीराचन्दमास्तरमहोदयस्य दर्शनेनाहं परं प्रमोदमापम्। कुशलप्रश्नादनन्तरं 'भवता सहाऽयं शिशुः कः ?" इति मया पृष्टेन तेनेत्थमावेदितम्:—

छात्रसंसदि लब्धकीर्तिः 'चतुर्भुज' नामायं मम समानधर्मा समाननगरनिवासश्च विद्यार्थी विद्यते। जन्मना जैनधर्मा-वलम्बिनापि वैदिकधर्मं श्रद्दधानेन मयाऽयमार्यसमाजसेवितं वैदिकधर्मलेशं परिचायितः। मम चायं शिष्यवर्गे समस्ति। पुण्यश्लोकौ पितरौ चास्य बाल्ये, वयसि स्वरितौ। बालेऽस्मिन्मे महती श्रद्धा वर्तते। नूनमयं देशोदयकार्यकारी भविता। अधीतवेदादिविद्यो वैदिकधर्मप्रचारेऽपि सम्यक् प्रयतिष्यते। व्याख्यानेऽप्यस्य प्रगल्भताऽस्ति, इति बद्धश्रद्धोऽहमत्र गुरुकुले लब्धप्रवेशमिमं कर्तुमागतोऽस्मीति। अपि कुलजनेभ्योऽस्य गुरुकुलवासो रोचिष्यते ? इति मया पृष्टेन तेनोक्तं तेषामनु-ज्ञामधिगम्याहमिहागत इति। सकलोऽयमुदन्तस्तदानीन्तन-मुख्याधिष्ठात्रे निवेदितः। तेन चायं कृतपरीक्षो गुरुकुले

ग्रन्थकार का संक्षिप्त परिचय

भगवान श्रीकृष्णादि अनेक महापुरुषों से सुसेवित पश्चिम जलधि की तरंगों से पावन, सौराष्ट्र की कान्त उदात्त गोदी में विविध विद्या व्यापार से विभूषित 'अमरेली' नाम की एक समृद्ध नगरी में, महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती के श्रद्धालु भक्त थे श्री हीराचन्दजी मास्टर। उन्हें वैदिक धर्मपर अत्यन्त श्रद्धा थी, भले ही वे स्वयं जन्मत: जैन मतावलम्बी थे। अनेक बार इनसे साक्षातकार होता रहा है। ये मास्टर महोदय एक बार सन १९१५ मे मुम्बई के निकटवर्ती सांताक्रूज नगर में अवस्थित मुम्बई प्रदेश आर्यविद्या सभा संचालित गुरुकुल में अपने साथ चौदह वर्षीय एक किशोर के साथ पधारे थे, मैं उस समय इस गुरुकुल में आचार्य था, और संस्कृत वाङ्मय पढाया करता था। चिरकालानन्तर श्री हीराचन्दजी मास्टर के दर्शन पाकर मुझे खूब आनन्द मिला; कुशल प्रश्नों के बाद मैंने पूछा ! मास्टरजी ! आपके साथ यह किशोर कौन है ? तो मास्टरजी ने बताया अमरेली वासी 'चतुर्भुज' नामक यह किशोर मेरी बिरादरी का जैन धर्मी है, छात्रों की सभा में इसने यश प्राप्त किया है; जन्म से जैन धर्मी होते हुए भी मैंने इस छात्र को वैदिक धर्म का परिचय कराया है, यह मेरे शिष्यवर्ग में ही है। इसके माता पिता दोनों ही शैशवावस्था में ही स्वर्गीय हो चुके हैं; इस किशोर को मैं अत्यन्त चाहता हूं, निश्चित ही यह बड़ा होकर देशोदय का कार्यकर्ता होगा; वेदादि शास्त्रों को पढ़कर यह वेद प्रचार में भलीभाँति सफल हो सकेगा; व्याख्यान भी यह अच्छा देता है, इसकी प्रगल्भता देख कर ही मैं इसे गुरुकुल में प्रविष्ट कराने के लिये लाया हूं। क्या गुरुजनों को भी इस किशोर का गुरुकुल निवास पसन्द आयेगा ? बालक के गुरुजनों की आज्ञा लेकर ही मैं यहाँ इसे लेकर आया हूं,

प्राप्तप्रवेश: कृत:। मयाप्युपनीयायं सावित्रीमातृकत्वांनीत:। सत्यव्रतवरोऽयं नाम्ना 'सत्यव्रत' इति सर्वैराहूत:। अनेन कर्मणा हीराचन्दमास्तरमहोदय: समतुष्यत्।

ग्रहणधारणपटुरयं बटु:, शनै: शनै: संस्थास्थितर्गुरुभिर्विनीयमान: शरीरे, मानसे आत्मनि च समुन्नतिं पुष्यन् सर्वेषां प्रीतिभाजनं जात:। एतस्मिन् गुरुकुले संस्कृतसाहित्याध्यापक: कविशिरोमणि: पोपटलालशर्माऽऽसीत्। तेन चायं काव्यरसास्वादचर्वणं ग्राहित:। उद्बुद्धकाव्यसंस्कारोऽयं बहूनि मनोरमाणि सरलानि गीर्वाणवाण्यां पद्यानि निर्मिमाणो गुरुजनानां हृदये कविरयं भवितेति श्रद्धां समजनयत्। अन्येषु च यजुर्वेददर्शनोपनिषदादिषु शास्त्रेषु कौशल्यमस्याविरासीत्। गुरुकुलमहोत्सवेषु समीयुषां विदुषां व्याख्यानानां श्रवणेन बहुश्रुतवर्त्मनि पदमनेन निहितम्।

आर्यविद्यासभाया मन्त्रिमहोदयश्रीडॉक्टर कल्याणदासस्य हृदयेऽप्यचिरादनेनात्मनो विनयेन कर्मशक्त्या च प्रभाव: समुत्पादित:। आर्यसमाजजगति च शनै: शनै: प्रसिद्धिं गत:। निश्चितेषु च विद्याव्रतस्नातक परीक्षायां परीक्षणीयविषयेषु समुत्तीर्ण: समजायत। आङ्ग्लसंस्कृतगुर्जरहिन्दीमराठीति भाषापंचकेषु चायं प्रावीण्यं प्राप्तवान्। 'वेदविशारद' इतिप्रष्ठितस्नातकोपाधिं चाधिगतवान्। गणितादिविषयेषु च नैपुण्यं हृदयगतं कृतवान्। व्यवहारेऽप्ययं कुशलो विदित:। कृतसमावर्तनोऽयं विद्यासभया मन्त्रिमहोदयस्य सहायको वर्णित:। आर्यसभासद्भिश्चायं १९२६ खिस्ताब्दे महर्षि-

यह सारा वृत्तान्त मैंने तत्कालीन गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता को कह सुनाया। मुख्याधिष्ठाता ने परीक्षा लेकर इस किशोर को गुरुकुल में प्रविष्ट किया। मैंने भी उपनयन संस्कार करके इस किशोर को शिष्य बना लिया। सत्यव्रत धारण करने वाले इस बालक को 'सत्यव्रत' कहकर सबने पुकारा, मास्टर जी को इस कार्य से बड़ा आनन्द मिला। विद्याग्रहण में चतुर यह किशोर शनैः शनैः गुरुजनों मे विनीत व्यवहार करता हुआ, तन-मन और आत्मा को समुन्नत बनाता रहा और इस प्रकार सबका प्रेमपात्र बन गया। इस गुरुकुल में संस्कृत साहित्य के प्राध्यापक स्व० कविरत्न श्री पोपटलालजी शर्मा थे। इन्होंने इस उदीयमान युवा को काव्य रसास्वादन में दक्ष बना दिया। उद् बुद्ध संस्कारी यह छात्र सूरभारती में मनोहर सरस पद्यों का सर्जन करके गुरुजनों के हृदयों में यह कवि होगा ऐसी प्रतीति उत्पन्न करने में सफल हो गया। यजुर्वेद, दर्शन ग्रंथ एवं उपनिषदादि शास्त्रों में भी इस युवक की पुरी पहुंच हो गयी। गुरुकुल के महोत्सवों में पधारे हुए दिग्गज विद्वानों के विविध विषयों पर होनेवाले प्रवचनों ने इस तरुण में 'बहु-श्रुतता का पाथेय भर दिया।

मुं. प्र. आर्य विद्यासभा के मंत्री श्री डा. कल्याणदासजी के हृदय में भी यह युवक अपनी विशिष्ठ योग्यता, विनयशीलता तथा कार्यकुशलता से स्थान पा गया, और आर्य सामाजिक जगत् में इसे प्रतिष्ठा मिलने लगी, गुरुकुल की निश्चित विद्या व्रत स्नातक परीक्षा में यह छात्र योग्यता पूर्वक प्रथम कक्षा में उत्तीर्ण हुआ; अंग्रेजी, संस्कृत, गुजराती, हिन्दी, मराठी भाषाओं का पांडित्य भी इन्होंने उपार्जित कर लिया। गुरुकुल की 'वेद विशारद' की उपाधि से यह विभूषित किया गया।

स्थापितस्य काकड़वाडागतार्यसमाजस्य मन्त्रिपदेऽभिषिक्तः। तत्राप्ययं कुशलः कर्मकरो भूत्वा सर्वेषामभिनन्द्यसत्त्वोऽभूत्। तथैवानेन महानुभावेन मुम्बईआर्यप्रतिनिधिसभायाः मन्त्रिणो विश्वस्तविविधपदभारो वर्षाणां विंशतेरधिक कालं समूढः। गुरुकुलार्थं धनोपार्जने च श्रीमन्त्रिमहोदयः स्वगतः डॉ. कल्याण-दासः इममात्मनो दक्षिण बाहुममन्यत। व्यापारविषयेऽप्यस्य धीरर्थंकरी दूरदर्शिनी च वर्तते। यतो मोहमय्यामेव 'कुमार मेटल इंडस्ट्रीज" "इंडियन क्रैंकशाफ्ट इंडस्ट्रीज," "इंडियन मैंटल फॉर्जिग एंड रोलिंग मिल्स," चेत्येषूद्योगेषु चायं सांभूयकारी वर्तते। सुखं चापीश्वरानुग्रहेणानेनानुभूयते।

स्वज्ञातिभिश्चायं बहुमानपात्रतां नीतः। विवादपदनिर्णये चाप्ययं स्थैर्यतया शोभते। किं बहुना यत्र यत्र सांसारिकशुभ-कर्मणि तत्र तत्र समुन्नतिमेव समदर्शयत्। विशिष्टसमाजेषु परिचयविशेषमागत्य लब्धयशाः समभवत्। इदानीमयं महाभागः कुशलो व्यापारी वेदादिशास्त्रेषु च निपुणतामावहन्नितरां विमलं यशस्तनोति।

आर्यसमाजसिद्धान्तपरिपालनेऽप्ययमहार्यनिश्चयो वर्तते। समाजे बहवो जनाः केवलं वाचि कौशलमावहन्ति, न पुनः कर्मपरिपालने। अयं तु 'आचारः परमो धर्मः' इति मानवं वचः स्वाचारे समर्थयितुं न विस्मरति।

कुलपरंपरामाश्रितैर्ज्ञातिजनैः स्वज्ञातौ परिणयायायं प्रार्थि-तोऽपि नानुकूलतां तेषां प्रापत्। यतोऽनेन विदुषा प्रथीयस्यपि ज्ञातिप्रथा जनानां प्रगतिविरोधिनी न हितायावगता। गुणकर्मा-श्रितां वैदिकीं वर्णव्यवस्थामास्थाय सम्यगनुष्ठितब्रह्मचर्या-

गुरुकुल से स्नातक बन जाने के बाद, जब ज्ञाति बिरादरों ने इनसे अपनी जैन बिरादरी में ही विवाह करने का आग्रह कि तो इन्होने किसी की बात न मानी और गुणकर्म स्वभाव को ही प्राथमिकता देके इन्होंने सच्ची वर्णव्यवस्था के अनुसार अपने तारकर कुलोत्पन्न सहपाठी कृष्णचन्द्र की सुयोग्य सुचरित्रा मिष्ठ भाषिणी, सुमध्यमा, शिक्षिता बहन श्री सुमित्रा से पाणिग्रहण किया। दांपत्य जीवन में ये दोनों सुतरां सफल है, आतिथ्य सत्कार तो इनकी थाती के रूप में प्रशस्त माना जाता है। इनकी इन्दिरा, भारती एवं चारुलता नामक तीनों आत्मजाओं के M A. के उच्चशिक्षण के साथ-साथ पुरातन वैदिक विधि से उपवीत संस्कार भी हुए हैं। परिवार में गुरुजनों का स्वागत सत्कार तो नियमित होता ही रहता है। सभा हो या सदन, सवत्र ही ये स्वय की योग्यता का परिचय देते रहें।

गुजरात राज्य के सौराष्ट्र विभाग में मोरवी नामक एक देशी राज्य था; उसी राज्य की तहसील 'टंकारा' नामक नगर को महर्षि दयानन्द ने अपने लोकोत्तर जन्म से पावन किया है, यह अब सव संमत है। स्वामी दयानन्द का जन्मनाम 'मूलशंकर' था यह तथ्य सभी इतिहासकार स्वीकार करते हैं। स्वामी दयानन्द के जन्मस्थान में ही सन् १९२४ में 'दयानन्द जन्म शताब्दि महोत्सव' मनाया जाने वाला था, इस महोत्सव को पूर्ण सफल बनाने के लिये इस तरण ने अपनी गुरुकुलकी अन्तिम स्नातक परीक्षा छोड़ दी और जी जान से टंकारा में जुट गया, इसके बाद तो क्या वृद्ध आर्य श्रेष्ठी श्री हरगोविन्द धरमसी काचवाला, स्व प. परघुभाई, स्व. दामोदर सुन्दरदास जी, महाराज वीरपूर नरेश हमीरसिंहजी चेर दरबार श्री मनुभा साहेब, स्व. डा कल्याणदास, श्री विजयशंकर मूलशकर जानी इत्यादि सुप्रतिष्ठित आर्य नेताओं ने अपना संपूर्ण

श्रमोऽय युवा, सत्कुलसम्भवां समानगुणकर्मशालिनीं पवित्रचरित्रां स्नेहसुधया परिचितां जनतां प्लावयन्तीं श्रीसरस्वतीसनाथां भ्रातृमतीं महाराष्ट्रदेशीयां 'तारकर' कुलोत्पन्नां मातापित्रोर्बहिश्चरप्राणभूतां 'सुमित्रा' नामधेयां सुमित्रानन्दकन्दसारां युवतिं कन्यां सवर्णमात्मनैक्यगतां गार्हस्थ्यधर्मसेवनाय स्वगृहिणीपदे स्थापितवान् । आतिथ्यधर्मपरिपालनतेजसा दम्पत्योरनयोर्गृहस्थाश्रमो नितरां दीप्यते । प्रजा चानयोर्लब्धवैदिकसंस्कारा सत्ययुगं दर्शयति । अस्य इन्दिरा, भारती, चारुलता पुत्र्योऽपि धृतोपवीताः श्रुतिमन्त्रोच्चारैर्जनताश्रुति पुनन्ति । गुरुगौरवपूजा चात्रानुदिनं जनमनांसि मोदयति । मित्रवर्ग च साहाय्यदाने नास्य संकुचितः पन्थाः । प्रसङ्गे प्रसङ्गे सदसि सद्मनि च वैदिकधर्मप्रचारे कर्तव्ये विबुधसमवायेन सह विचारणागभीरतास्य न दरिद्राति ।

गुजरातराज्ये सौराष्ट्रान्तर्गतमोरबीनगरप्रान्ते 'टङ्कारा' नाम प्रसिद्धं नगरमस्ति । तच्च नगरं महर्षिदयानन्देनात्मजन्मना पावितमिति सर्वजनसंमतम् । दयानन्दस्य जन्मनाम मूलशंकर:' आसीदिति तज्जीवनलेखकमहोदयानां मतं सर्वैः संमतम् । वेदनेत्रग्रहचन्द्रमिते ख्रिस्तीये वत्सरे महर्षि जन्मशताब्दी महोत्सवः समजायत । त सफलं कर्तुमन्तिमां स्नातकपरीक्षामपि विहायाय श्रीसत्यव्रतमहोदयः सर्वेभ्यः प्रथममेव कार्यक्षेत्रे प्रचारमन्त्रिरूपेणावातरत् । पश्चादन्येऽपि श्री हरगोविंद काचवाला, स्व. परधुभाई शर्मा, स्व. दामोदर सुंदरदास श्चास्मिन्कार्ये प्राविशन् । पश्चात् श्रीस्वामिशङ्करानन्दः, वीरपुरननरेशहमीरसिंहः, मनुभाचेरदरबारः, स्व डॉ. कल्याणदास प्रभृतयः प्रमुखमहानुभावा आर्यसमाजसेवकधुरंधरा बद्धपरिकरा

सहयोग देकर इस नव युवक के प्रचार मंत्रित्व पद को खूब सफल बनाया, यह महोत्सव अत्यन्त सफल रहा। इसी महोत्सव के अवसर पर जब ये टंकारा में रहे तो इन्होंने भी मोरवी राज्य एव राजकोट राज्य के प्राचीन ऐतिहासिक सामग्री के आधार पर महर्षि दयानन्द के जन्मस्थल के विषय में खोजपूर्ण कार्य करके गुजराती भाषा में अपने ढंग की मौलिक रचना संग्रहीत की। बाद में तो यही संग्रहीत खोजपूर्ण प्रकाशित सामग्री के आधार पर ही हिंदी भाषा में भी 'महर्षि दयानन्द जन्म स्थानादि निर्णय' नाम से एक पठणीय ग्रंथ टंकारा शताब्दि समितिने प्रकाशित किया। इस अवसर पर जो कार्यकुशलता इन्होंने दिखाई, इससे सभी छोटे बड़े कार्यकर्ता इनसे बहुत बहुत प्रभावित हुए। इसी सम्मेलन की सफलता ने इनकी सर्वतोमुखीन प्रतिभा को आर्यजगत् मे उजागर कर दिया।

बम्बई के पूर्वी उपनगर 'घाटकोपर' में अवस्थित 'गुरुकुल हाईस्कूल' बहुत ही आर्थिकसंकट में था तो स्नातक महोदय ने अपना समस्त सहकार देकर संस्था को चार चाँद लगा दिये और आज तो यह संस्था आर्यसमाज ही क्या अन्य सगठनों की संस्थाओं में अग्रगण्य स्थान पर है। इस संस्था का अपना छात्रावास भी है, यहाँ पर छात्र गुरुकुलीय सात्विक वातावरण में अग्निहोत्र एवं संध्यादि शुभकर्म करते हुए विद्याध्ययन करते हैं। इसके भी स्नातक महोदय मुख्याधिष्ठाता रहे हैं, यह गुरुकुल आश्रम आज भी भली भाँति भारत के भावी नागरिकों को वेंदिक विचारों से अवगत कराता हुआ चल रहा है।

माटुंगा बम्बई के आर्य समाज तथा आर्य समाज संचालित

समाजे कदाचारकराणां वेदप्रतीपगामिनां वित्तकीर्तिलोभ-परायणानां लोककण्टकानामुत्साहदलनायायमलम् ।

स्वर्गं प्रयता आर्यविद्यासभासंस्थापकेन श्री डॉक्टर कल्याण-दास महोदयेन गुरुकुलसंचालनभारोऽस्मिन् पुत्रसमानशिष्ये सहकार्यकरे च संक्रामितः। स च भारस्तितिक्षापरवशेनानेन सम्यगुह्यते ।

अनेन विदुषा प्रतिष्ठितस्नातकशिरोमणिना 'वैदिकत्रैतवाद' नामा महानिबन्धो (Thesis) स्नातकपरीक्षायां देववाण्या लिखितः। स च कालान्तरेण विशदतया ग्रन्थरूपेण गुर्जरभाषायां प्रकाशं नीतः। तत्व जिज्ञासुभिरयं रमातिरेकेण पठ्यते । ब्रह्मजीवात्मप्रकृतीनां सप्रमाणं निरुपणं विद्यते ग्रन्थेऽस्मिन् तत्त्वत्रयात्पराचीनवादिना मतं निर्मूलं निष्प्रमाणं च दर्शितम् । विशिष्टाद्वैतपथसेविना श्रीमल्लोकार्यचरणेन प्रणीतं 'तत्त्वत्रयम्' नामक ग्रन्थमतिशेते एतदीयस्त्रैतवादः ।

मूर्तिपूजाविषयकोऽपि 'मूर्तिमीमांसा' नामक ग्रंथोऽस्य मया पठितः। अनेन ग्रंथेनापि महती समाजसेवा कृतेति तत्त्वविदां समाजे लब्धास्पदा चर्चा वर्तते ।

अन्येऽपि बहवो लेखाः समाजहिताय वर्तमानपत्रेषु अनेन महानुभावेन लिखिता दृश्यन्ते ।

अनेन स्नातकमहोदयेन मुम्बईप्रदेशार्यप्रतिनिधिसभाया मुखपत्रस्य 'आर्यप्रकाश' स्य अवैतनिकसंपादकपदमपि बहुशः समधिष्ठितम् । तद्वर्मनापि जनसंसदि श्रुतिधर्मसेवाऽविस्मरणीया विहिता । किं बहुना चारित्र्यसंपन्नस्य अस्य महोदयस्य निखिलं जीवनं परहिताय निर्मितमिवाभाति ।

के ज्ञान गौरव को विद्वत्समाज में प्रस्तुत कर यशोर्जन किया है।

समय समय पर लिखे गये सामाजिक तथा साहित्यिक लेख और निबन्ध इनकी लेखनी की दक्षता को प्रदर्शित कर चुके हैं

एवं सफल पत्रकार के रूप में स्नातक सत्यव्रतजी ने मुंबई प्रदेश आर्य प्रतिनिधि सभा के साप्ताहिक मुख पत्र 'आर्यप्रकाश' का कई बार योग्यतापूर्वक सम्पादन किया है; इससे इनकी लेखन शली का चमत्कार पाठकों को खूब पढ़ने को मिला, चिरकालतक इस प्रकार यह व्यक्ति भारतीय समाज के लिये सब प्रकार से एक चरित्र प्रस्तुत करने में सर्वथा सफल रहे है।

महर्षि दयानन्द का 'सत्यार्थ प्रकाश' नामक ग्रन्थ मेरी निराशा का कारण हुआ है 'ऐसा कहने वाले महात्मा गांधी की भी इन्होंने अपने तीखे तीरों से खूब गत बनायी थी। क्योंकि सत्यव्रत के लिये सत्य से अधिक प्रिय और क्या हो सकता है ?

बड़ी-बड़ी सभाओं में, सम्मेलनों में यह मनीषी सुवक्ता के रूप में सर्वदा लब्ध प्रतिष्ठ रहा है। इनके विषय के प्रस्तुती करण का तौर तरीका श्रोता को ज्ञानवान बना देता है।

यह देखा गया है कि आर्यसमाज के अधिकांश कार्यकर्ताओं के बालक-बालिकाओं के भी विधिपूर्वक यज्ञोपवीतादि संस्कार नहीं किये जाते हैं, किन्तु इन्होंने तो विधिपूर्वक अपनी पुत्रियों और पुत्रों के समुचित समय पर उपनयन, वेदारंभ संस्कार करवाये हैं, तभी तो स्वामी दयानन्द का मन्तव्य सिद्ध होता है कि स्त्री पुरुष दोनों ही वेदाध्ययन में अधिकारी है। अन्यथा 'स्त्रीशूद्रौ नाधीयताम् की तलवार जाने कब से लटकती आ रही थी। ऋषि दयानन्द की कृपा स्वरूप ही आज स्त्री-शूद्र बड़ी संख्या में वेदादि शास्त्रों के प्रौढ़ विद्वान उपलब्ध हो रहे हैं। अस्तु

'महर्षिदयानन्दस्य सत्यार्थप्रकाशग्रन्थो मम निराशाय संजातः' इति वादी महात्मा गांधिमहोदयोऽपि अस्य वेदविदो लेखशराणां शरव्यतां गतः। सत्यव्रतस्य सत्यादधिकतरं किं प्रेयः संभवेत् ?

सभायां व्याख्यानदाने कुशलोऽयमात्मनो विचारधारां सम्यक्तरां निरूपयति, यतः श्रोतारो लब्धप्रकाशा इव जायन्ते। आर्यसमाजे प्राप्तप्रमुखादिपदाधिकाराणां पुत्रा अपि विधिना न दत्तोपवीताः प्रायशः क्रियन्ते, तदा कैव कथा पुत्रीणाम् ? अयं तु स्नातकमहोदयः श्रुतिविहितकर्मणि श्रद्दधानः आत्मजा अपि स्ववेश्मनि समाहूतज्ञातिमित्रादि-मण्डलस्य समक्षं कृतोपनयनसंस्काराः सम्पादितवान्। एतेन पवित्रेण कर्मणा स्त्रीणां वेदाधिकारो नास्तीति प्रलपतां जनानामपि हृदयानि पवित्रीक्रियन्ते।

एकदाऽनेन श्रीमता गीर्वाणवाण्यां स्वरचितं 'महर्षिचरितामृतं' नाटकं मत्सकाशं प्रहितमवलोकनार्थम्। अहं च तत्पठित्वा आश्चर्यपाथोनिधौ निमग्नः इदं नाटकं महर्षिदयानन्दसरस्वती स्वामिनः समस्ति। अस्य स्नातकस्य संस्कृतनाटकनिर्मितावपि शक्तिरस्तीति मया एतन्नाटकवाचनादनन्तरमेव ज्ञातम्। अति-परिचयोऽपि गुणगभीरस्य सज्जनस्य निखिलान् गुणान् सद्यः प्रकटीकर्तुं नालमिति मे चेतसि तदा जातम्। अस्य नाटकस्य संविधानं साहित्यशास्त्रानुसारि विद्यते। अस्य नाटकस्य सरसानि मनोरमाणि पद्यानि पठतो मे मनसि कालिदासादि-महाकवयः स्मृतिगोचरीभूताः। वीतरागस्य महर्षिदयानन्दसर-स्वतीस्वामिनो रसबहुलमप्यस्पृष्टशृङ्गाररसमिदं नाटकं सुयोग्यमेव जातम्। अतो मे मनसि महती मुदजनि।

गणित, विज्ञानादि विषयों में स्नातकजी ने विशिष्ठ योग्यता अर्जित की, अत: व्यवहार में निपुणता तो सहजही मिल गयी। समावर्तन संस्कार के पश्चात स्नातक बनकर इस युवक को आर्य विद्या सभा में मंत्री महोदय का सहायक निर्धारित किया। बम्बई समाज के आर्य सभासदों ने योग्यता के आधार पर सन १९२६ में इसे काकडवाडी के सबसे पुरातन प्रतिष्ठित आर्य समाज का मंत्री बनाया; आर्य समाज के गौरव युक्त मंत्री पद पर रहते हुए भी ये मुम्बई प्रदेश आर्य प्रतिनिधि सभा के मंत्री का पद भी संभालते रहे और अपनी योग्यता का सिक्का जमाते रहें; यह पदभार बीस वर्षों से भी अधिक समय तक उठाकर ये सामाजिक क्षेत्र में अत्यन्त प्रतिष्ठित हो गये। आर्यसमाज के सुयोग्य नेता, श्री डॉ. कल्याणदासजी देसाई तो इन्हें अपना दक्षिणहस्त मानते थे। व्यापारिक क्षेत्र में भी इनकी बुद्धि सशक्त है, तभी तो 'कुमार मेटल इडस्ट्रीज' 'इडियन क्रेंक शाफ्ट इंडस्ट्रीज में सहभागो हुये तथा 'इण्डियन मेटल फॉर्जिग एण्ड रोलींग मिल्स' नामक उद्योग में ये सहभागी है। अन्य सभी प्रकार के सुख भी प्रभु की दया से उन्हें प्राप्त है।

अपनी ज्ञाति से भी वे अभिपूजित हुए हैं, विवाद होनेपर लोग इन्हें न्यायाधीश मानते रहें हैं अधिक क्या कहूं कि जहाँ कहीं भी ये रहें वहीं पर इनकी प्रतिष्ठा बढ़ती ही गई और इस समय तो यह महाशय व्यापारी, एवं वैदिक विद्वान् के रूप में सर्वत्र प्रशंसित हैं।

आर्य समाज के सिद्धान्त पालन में भी ये महान् आदर्श कारी हैं। आर्य समाज में अधिकांश व्यक्ति केवल वाणी से ही आर्यत्व व्यक्त करते हैं, कर्म से नहीं; किन्तु ये तो 'आचार: परमोधर्म:' इस मनुवचन के परिपालक हैं।

ग्रन्थकारस्य परिचया

महर्षिदयानन्दस्यालौकिकीं जीवनगाथां सर्वं प्रथमं यथा शास्त्रं नाटकस्वरूपे देववाण्यां गुस्फितवत: श्रीस्नातकसत्यव्रतस्य सुश्लाघ्योऽयं परिश्रमस्तस्यर्षिभक्त्यनुरूपं एव। सफलया रचनयाऽनया ग्रंथकारमहाभागेनायंसाहित्येऽग्रिमं स्थानं लब्धमिति नि:शङ्कं वक्तमुत्सहे।

अयमल्पतमोऽस्य स्नातकमहानुभावस्य जीवनचरितस्य परिचयो विन्यस्तो मया। मन्ये चास्मिन् परिचयदाने वक्तव्य-विषयाणां शतांशोऽपि मया न पारित इति। आशासे चास्य विदुषः काव्यनाटकनिर्मितिबाहुल्यम् आस्वादयन्ता चास्य नाटकस्य रसं सदसद्व्यक्तिहेतव: सन्त: बितरतु चास्मै विदुष विश्वव्यापी दयाघन: परमात्मा वर्षाणां शतादप्यधिकं समृद्धि-मत् सर्वथा सुखकरमायुः। इत्योम्।

च. प्र. आर्यसमाज।
आणंद (गुजरातराज्य)

पं. मयाशङ्कर शर्मा
दर्शनाचार्य

एक बार स्नातक महोदय ने स्वरचित 'महर्षि चरितामृतम्' संस्कृत नाटक मेरे पास अवलोकनार्थ भेजा जब मैंने यह नाटक पढ़ा तो मेरे आनन्द का ठिकाना न रहा ! मैं तो आश्चर्य सागर में निमग्न हो गया, तब इस नाटक के पठनानन्तर ही मुझे यह पता चला कि यह व्यक्ति सफल नाटककार भी है ! मुझे यह भी मालूम हुआ कि गुणगंभीर विद्वानों के, वैशिष्ठय, चिरपरिचय से भी नहीं जाना जा सकता ! जिस नाटक का निर्माण साहित्य शास्त्रानुसार ही हुआ है, जिस नाटक में आए हुए सरल मनोहर पद्य तो कविकुलगुरु कालिदास आदि कवियों की स्मृति याद कराने वाले हैं।

जीवन महर्षिदयानन्द सरस्वती स्वामीजी महाराज का जीवन विविध रसयुक्त होता हुआ भी यह नाटक शृंगार रस से सर्वथा अलिप्त है, यह एक आदर्श की बात है, ऐसे योगिराज के कथोपकथन में ! जिससे मेरे मन में अत्यधिक मोद बढ़ा।

महर्षि दयानन्द की अलौकिक जीवनगाथा को सर्वप्रथम शास्त्रानुसार संस्कृत नाटक के रूप में उपनिबद्ध करने वाले स्नातक सत्यव्रत का यह परिश्रम श्लाघनीय है और ऋषि की अनूठी भक्ति का द्योतक है। मैं यह बात असंदिग्ध रूप से कह सकता हूं कि ग्रन्थकार इस नाटक के द्वारा आर्य-साहित्य में अग्रिम पंक्ति में विराजमान एवं सफल है।

यह संक्षिप्त सा परिचय स्नातक सत्यव्रतजी—का लिखकर मैंने अपने कर्त्तव्य की पूर्ति करनी चाही है। संभव तो यह है कि—मैं नाटककार को पूर्ण रूप से विज्ञपाठक के समक्ष उपस्थित करने में सफल न भी हुआ हूं, मुझे आशा है कि जिस समर्थ विद्वान की रुचिर रचना का रसास्वाद विद्वद्जन अपनी सदाशयताओं समृद्ध बनाकर इन्हें कृतार्थ करना न भूलेंगे। परम कृपालु भगवान ग्रन्थकार को 'भूयश्च शरदः शतात्' का वरदान दें ! !

आर्य समाज ने गुरुकुलों की स्थापना कर देववाणी संस्कृत का पुनरुद्धार करना चाहा है । इस दृष्टि से इस ग्रंथकी रचना ने आर्यों की आकांक्षा को अधिकांश में सफल किया है । इसका श्रेय ग्रंथकार स्नातक सत्यव्रतजी को देना चाहिए । प्रभु ग्रंथकार को दीर्घायु करे यही प्रार्थना ।

म. प्र. आर्यसमाज,
आणंद (गुजरातराज्य)

पं. मयाशङ्कर शर्मा
दर्शनाचार्य

महर्षिः

आर्यसमाजस्य



प्रवर्तकः

धृतिः क्षमाभ्यां सह सा सखीभ्यां
सरस्वती, यस्य मुखे रराज ।
नित्यं प्रसादामलशान्तिरम्या
वन्दे दयानन्दसरस्वतीन्द्रम् ॥

॥ ओ३म् ॥

महर्षि चरितामृतं नाटकम्

॥ तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥

जयति संततसंनमसच्छटा-
च्छुरितमानसमोहहरद्युतिः ।
करुणया हृदयांबुजममलं,
दिशतु शश्वदनश्वरमीश्वरम् ॥१॥

अजमुदित्वरविश्वविधिप्रियं,
श्रुतिसमादृतशक्तिसमन्वितम् ।
निगमगर्भगभीरसुधानिधिं,
शिव ! शिवाय नमामि मनोगतम् ॥२॥

सुखं दुःखं सोढुं वितर मयि किंचिद्बलमयि,
प्रभो ! गाढं ध्वान्तं दलय मनसो मे च सततम् ।
अहं सेवाकृत्ये सफलमखिलं जीवितमिदं
यथा कर्तुं शक्तः कुरु शिव ! तथा विश्वजनक ! ॥३॥

[1]यद्विन्दिराभारतिचारुकीर्तिं
राज्ञां प्रकाशं भुवनेषु गूढम् ।
सुमित्ररत्न जगदेकवन्द्य
तमीश्वर भावय मुक्तयेऽलम् ॥४॥

यदक्षरं ब्रह्मविदो वदन्ति,
यद्योगिनां योगपथानुगम्यम् ।
समस्ततेजोमय दिव्यरूप-,
मुत्पत्तिरक्षाप्रलयप्रगल्भम् ॥५॥

यत्कालकालादिमनादिरूपं,
यदृग्यजुःसामसु संप्रगीतम् ।
प्रकाशितं येन च भूर्भुवः स्वः.
पुनातु नस्तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥६॥

---

१. पारिवारिकजना:

॥ नाटकमारभ्यते ॥

सूत्रधारः- [नेपथ्याभिमुखमवलोक्य] अलमलमतिविस्तरेण [सर्वान् विलोक्य स्वगतम्] अहो ! सर्वेषां गुणग्रहणपटीयसी विपश्चित्परिषच्चातक-मण्डलीव कादम्बिनीमपेक्षते नूतनचरित्रनिर्मितम् । [प्रकाशं]
आर्ये ! इतस्तावत् ।

नटी:-[कुसुमभाजनं गृहीत्वा] इयमस्मि, को निदेशः स्वामिनः?

सूत्र:-देवि ! गुणारामविहारिणी कोविद परिषदियं समुपतिष्ठते नयनानन्दजननं दिव्यचरितामृतं पिपासुः, आदिष्टोऽस्मि गुरुकुलक्लिष्टेन वेदशास्त्रसंपन्नमुनिवर मायाशंकराचार्य-शिष्येण श्रीसत्यव्रतस्नातकेन रचितमुचितसमयाभिनेयं "महर्षिचरितामृतम्" नाम नाटकमभिनेतुमिति, तत्कथमनभियुक्तामिव कर्मणि पश्यामि भवतीम् ?

नटी:-अयोग्याधिकारे पदे पदं निदधानो जनः सर्वदा हास्यतां याति ।

सूत्र:-[अज्ञात्वा तत्त्वम्] ननु किमुत्क्षिप्तम्, न सम्यगवधारयामि भवत्या आशयं, तद् विशदं विवर्णयतु ।

नटी:-[सोल्लुण्ठनम्] आर्य ! पुरुषकरणीये हि कार्ये किं मे पृष्टेन मतेन वा ?

सूत्र:-देवि ! मैवम्, कानिचित्पुरुषतंत्राणि. कानिचिद्गृहिणीतन्त्राणि, कानिचिच्चोभयतन्त्राणि भवन्ति कार्याणि ।

सूत्रधार :—[नेपथ्य की ओर देखकर] बस करो बस, अति-विस्तार से क्या लाभ ? [सब को देखकर मन में] अहा ! सबके गुणों को ग्रहण करने में चतुर, यह विद्वत्परिषद् भी किसी जीवन चरित्र रचना की, उसी प्रकार प्रतीक्षाकर रही है जैसे चातक पंक्ति मेघ माला की। [प्रकट में] देवि ! थोड़ा इधर आओ।

नटी :—[फूलों की कंडिया हाथ में लेकर] वह आ गई, पतिदेव की क्या आज्ञा है ?

सूत्रधार : - देवि ! सद्गुणों के उपवन में विचरने वाली यह विद्वत् सभा, नेत्रों को आनन्द देनेवाले दिव्य चरित रूपी अमृत की प्यासी है, मुझे आदेश मिला है कि तपोनुष्ठान पूर्वक गुरुकुल में पढ़े हुए, वेदादिशास्त्रों में निष्णात मुनिकल्प श्री आचार्य माया शंकर जी के शिष्य, श्री स्नातक सत्यव्रतजी के द्वारा रचित और इस अवसर पर अभिनय योग्य 'महर्षिचरितामृतम्' नामक नाटक का अभिनय प्रस्तुत करूँ तो फिर तुम इस काम में लापरवाह सी क्यों दिखाई दे रही हो ?

नटी :—जिसका वह अधिकारी नहीं है ऐसे कार्य में प्रवृत्त होने वाला मनुष्य सदा उपहास का पात्र बनता है।

सूत्रधार :—[भाव को न समझते हुए अरे, क्या कहा ? आप के आशय को मैं नहीं समझ पाया हूं, इसलिये स्पष्ट रूप से समझाओ।

नटी :—[उछलते हुए] आर्य ! पुरुष के करने योग्य काम में मेरे पूछने से अथवा जानने से क्या लाभ ?

सूत्रधार :—देवि ! ऐसा मत कहो ! कुछ कार्य केवल पुरुष के करने योग्य होते हैं, कुछ केवल पत्नी के करने योग्य और कुछ ऐसे होते हैं, जिन्हें कि दोनों मिलकर करते हैं।

नटी:–अपूर्वमिव वच: ।

सूत्र –आर्ये ! अवगतस्ते हृदयतर्क:, एवमेव केश्चित्पुरुषापसदै: समानमपि परस्परोपकरणं पदं निराकृत दंपत्यो: प्रकृतिपुरुषयोरिव ।

नटी:–प्रियं न: [स्मृत्वेव] न तु विद्यमानेष्वपि समादृतभूषणेषु ज्योतिश्चक्रेष्विव परेषु महामहिमशालिषु कथं नाम सुभगम्मन्य: कविरय न विरमति महर्षिचरितामृतात् ?

सूत्र:-सत्यमेतत् ! तथापि—

"सौजन्यैकपयोनिधेरविरलप्रारब्धपुण्यव्रत–
प्रेयोलालितमानसस्य विशद: कस्यापि भव्यार्थिन: ।
कामंधाममुदामशेषजनताकीर्तिस्फुरत्तारका—
तेज:स्तोमहर: स निर्मलयश:शीतद्युति: शोभते ।।७।।

नटी:–एवं पारेगिरां गौरवं, अथ पुन: सुधाप्रवाहवाहिनश्चरित्रप्रतिवेशिन: कवेरपि कथ न परिचयभणिति: श्रवणगोचरी भवति ?

सूत्र:–आर्ये ! किं वृथा विकत्थनघोषै:, आविष्कुर्वन्ति कार्यत एव महिमान-महायशस: पश्य—

"उद्दामद्रागुदञ्चत्खरतरनखराघातसंचूर्णितोग्र–
ग्रावग्रामस्य गर्वग्रहिलगुरुपदं निर्यतोऽरण्यभागात् ।
त्रस्तत्रस्तास्तसत्वक्षुभितगजघटास्फारचीत्काररावै-
रुत्कर्ण: शौर्यशक्तेरगदितगरिमा ज्ञायते सिंहसूनो: ।।८।।

नटी :—आपका यह वचन अभूतपूर्व सा है।

सूत्रधार :—प्रिये ! तुम्हारे मन की शंका को मैंने ताड़ लिया है। वास्तव में, कुछ नये धर्मों ने प्रकृति और पुरुष के समान पति और पत्नी दोनों द्वारा परस्पर मिल-जुल कर करने योग्य कर्म के अधिकार का भी निषेध कर दिया है।

नटी :—आपकी बात हमें बड़ी प्रिय लगी, [स्मरण सा करके] क्यों जी, ये अपने आपको सौभाग्यशाली समझने वाले नाटककार **'श्री स्नातकजी'** नक्षत्रों के समान देदीप्यमान चरित्र वाले समादरणीय अति गौरवशाली अन्य महा-पुरुषों के होते हुये भी केवल 'महर्षिचरितामृतम् (=महर्षि दयानन्द के चरित्र) के गान में ही क्यों लगे रहते हैं ?

सूत्रधार :—यह सत्य है तथापि—

सौजन्य-सागर के असामान्य भाग्यरूप पुण्यव्रत से लालित मानसवाले किसी भव्यार्थीका विस्तृत तेज, एवं समग्र कीर्ति के शोभायमान तारकों से युक्त प्रकाश, और अन्धकार समूह को हटाता हुआ—निर्मल यशवाला चन्द्रमा शोभता है ।।७।।

नटी :—अहा ! अनिर्वचनीय महिमा है। पर साथ ही इस अमृत धारा को प्रवाहित करने वाले, 'चरित्र' के रचयिता कवि महोदय (नाटककार) का भी परिचय क्यों नहीं दिया जा रहा है ?

सूत्रधार :—प्रिये ! व्यर्थ ही आत्मप्रशंसा के उद्देश्य से क्या लाभ ?

सूत्र :- आर्ये ! क्या लाभ है इन अनावश्यक बातों से मनस्वीजन तो कार्य से ही निज गौरवाख्यान किया करते हैं। देखिये।

"मतेभराज मदवारि विशोभिगण्ड,
उध्वस्त पादपचयाखिलवन्यशक्त ।
दन्तावल–प्रतिपल-प्रति-भू समर्थ,
सिंहार्भक द्विप विनाशन हेतु पूज्य ।।८।।

नटी:–[सस्नेहम्] अहो प्रख्यापितमैदम्पर्यं वच:, साम्प्रतं कस्मिन्नियुज्यतेऽय जन: ?

सूत्र:–किमन्यन् प्राथमिकं श्रवणरञ्जनमन्तरेण विदुषाम् ?

नटी:–ननु कमाश्रित्य गायामि ?

सूत्र:–[विलोक्य] इममेव समुचितसमयानुकूलं जलदकालम् । पश्य अय हि पयोवाहस्य–

"धरां धारासारैरनधिगतनिम्नोन्नतदशा-
मनर्थैर्विन्यासैः श्रुतिमिव खलानां विचरयन् ।
अनालोकं धर्मागममिव विधायाम्बरमणिं
समायात: काल: कलिरिव कलापिप्रियकर: ॥९॥

नटी:–सत्यं तथापि रमणीय: सलिलप्रवाह:—

"निखिलकरकलापैर्भूरसं हन्त. कृष्ट्वा
प्रतिदिनमधिवासं संग्रहं कुर्वतोऽस्य ।
अयमुपकृतिकामो सर्वमादाय भानोः
सुखयति सुखमुर्वीमातपेनाभितप्ताम् ॥१०॥

सूत्रः–अतिकमनीयं संगीतम् [वीक्ष्य कुसुमभाजनम्] आर्ये ! किमेतत् ?

नटी:–ननु जानात्येव आर्यः, यथा श्वः शिवरात्रिः, अतो मया प्रथममेव संगृहीतानि कुसुमानि ।

सूत्र:–युज्यते किल [नेपथ्ये]

'भो भो अन्तेवासिनः. एष समाज्ञापयति नो गुरुः यथा श्वः शिवरात्रिरिति, अनध्यायो युष्माकम्" [श्रुत्वा] देवि ! त्वरताम् प्रवृत्तमेव बटुककौतुकम् ।

नटी:–यथार्थं समाज्ञापयति ।

नटी :-[सप्रेम] अहो आपने तो मुझे सचेत ही कर दिया। अब कहिये यह जन सभा क्या देखना चाहती है ?

सूत्र :–विद्वानों को श्रवण दृश्य के सिवाय और क्या चाहिये ?

नटी : किसके गीत गाऊँ ?

सूत्र : [देखकर] इस श्यामल घन शोभित पावस वेला के ही। देखो तो इस जलद के :—

'धरा धारा सिक्ता कर अलभ नीचोच्च पदवी,
विमोघाक्षेपों से श्रुतिसम खलों को रच रहा।
विना ज्योति प्रायः सुकृतपथ को हीन रवि सी,
किया वेलाआयी कलिसम कलापी प्रिय करी ॥९॥

नटी :–है तो सत्य, पर कितना रमणीय है यह सलिल सम्पात–

"सकल किरण जालों से धरावारि लेके,
प्रतिदिन करता ही जो रहा अम्बु योग,
निखिल रवि विभव की प्राप्ति से धन्य भाग,
सुखद कर रहा है ताप सन्तप्त भू को ॥१०॥

सूत्र :–बड़ा ही मनोहर गीत है। (पुष्पपत्र को देखकर) आर्ये ! यह क्या है ?

नटी :–आप जानते ही हैं कि शिवरात्रि है। तभी तो मैंने अभी से संग्रह कर लिया है कलियों का।

सूत्र :–बहुत अच्छा किया [नेपथ्य में]

'अरे अरे अन्तेवासियो ! हमारे गुरुदेव का आदेश है तुम्हारे लिए कल शिवरात्रि का अनध्याय रहेगा।"
[सुनकर] देवि ! शीघ्रता करो ब्रह्मचारियोंको तो कौतुक का आनन्द आ गया है।

नटी :–जैसी आपकी आज्ञा !

सूत्रः–[विहस्य] अहा ! समागता दम्भदण्डैरिव पूजकैर्घणघणायमानघंटाघोषनिरस्तजननिद्रा उपवासमिषान्मिष्टान्नपूरितोदरकुहरैश्चोच्चारितदीर्घनादा निद्रालुजनघुरघुरायमाणघोरघोणघोषिता शिवरात्रिः. अथवा शिवरात्रिः ।

[विचिन्त्य]

"अस्तंगतेऽपि मार्त्तण्डे कस्यचित्तेजसा सत: ।
इयं रात्रिर्यथार्थेव शिवरात्रिर्भविष्यति" ॥११॥

[अपि च]

अद्य प्रचण्डतमसा पूरिपूरिताऽपि
घोराऽपि भीतिकरकारणसंगताऽपि ।
कस्याऽपि दिव्यमहसा शिवरात्रिरेषा
रात्रीतिशब्दमपहाय शिवं वरीता ॥१२॥

[इति निष्क्रान्तः]

इति प्रस्तावना

सूत्र :-[मुस्कराकर] ओ हो ! आ ही गयी है पूजकों के दम्भदण्डों के समान घनघनाते हुए घण्टा घोषों से विनष्ट जननिद्रा वाली, उपवास के व्याज से मिष्टान्न भरे हुए उदर गुहा के समान दीर्घनाद वाली, निद्रालुजन की घुरघुराहट से घोरतम शब्दमयी शिवरात्रि अथवा शिवरात्रि [सोचकर]

"अस्तंगत हुआ भानु किसी के सत्य तेज से,
अवश्यही यही यामा होगी शिवरात्रि वस्तुतः॥११॥"

[और भी]

"आज प्रचंण्ड तम से परिपूरिता भी,
घोरा विभीषण भयादि विधान हेतु।
पुण्य प्रभाव सरसा शिवरात्रि होगी,
रात्रि प्रसिद्ध ध्वनि छोड़ शिवार्थ बोधी ॥१२॥

[इस प्रकार चला गया]

॥ इति प्रस्तावना ॥

प्रथमोऽङ्कः ।

(प्रवेश: प्रथम:)

[स्थलं गुरुकुलम्, प्रात: सयम:, तत: प्रविशति कश्चित्-निद्रार्धनिमीलितनयनश्छात्र:]

राजप्रकाश :-अहो ! विभातप्राया विभावरी । तथाहि—

पीयूषकोमलरसोरसरीतिचौरा
दारानिभां कुमुदिनीं श्रयत: सुधांशो: ।
कान्तिर्विधोरपगता कुटिलस्य ताव-
दीर्षांकषायितमना इव मानिनीयम् ।।१।।

अहो ! इतोऽपि हृदयङ्गमः प्रकृतिविलासः—

"इतस्तारा व्यस्ता अनुगतनिकारा इव करा
न राजन्ते राजन्यनुचितसमासादितगतौ ।
विभावर्यां भर्तुर्विरहजनितानां च कणिका
निकामं नेत्रान्तर्गलितसलिलानामुपनभ: ।।२।।

समुद्गत: प्रभापाटल: प्रभाकर:—

"एतद्बिम्बमधोविधूनिततमो रेतोधस: साम्प्रत
संव्यूहैरविशषमम्बरमिदं भासामहो लिम्पति ।
विष्वग्व्याप्ततमच्छटासहवसत्येन: कलङ्कस्पृशा-
माशानां कथमुन्मृजामित्र ततो भानुर्विधत्ते तराम् ।।३।।

इतोऽपि

"दिक्कामिनी सदनवन्दनमालिकेव
कान्ति: सरोजसुहृदो नवकोङ्कुमीयम् ।

प्रथमांक

[प्रवेश प्रथम]

[स्थान गुरुकुल, समय प्रातः, निद्रार्ध निमीलित नयन किसी छात्र का प्रवेश]

राजप्रकाश : अहो ? रजनी तो समाप्त हो गयी । तभी तो :

पीयूष मंजुल रसाशय रीति लुब्धा,
पत्नी समा कुमुदिनी प्रिय चन्द्रमा की ।
शोभामिटी लग रही सम मानिनी सी,
ईर्षानल, चलित चित्त अहो प्रभाते ॥१॥

अहो ! कितना चित्त चोर है प्रकृति नटी का यह अनूठा विलास !

यहाँ तारे सारे रुचिर कर से हीन कर से,
नहीं शोभा पाते अनुचित कृति भूमि पति से ।
निशा के स्वामी के विरह जनिता संख्य कणिका,
असन्दिग्धाश्रुकी नयनगत नीरागम विभा ॥२॥

भगवान् भुवन भास्कर सुवर्णथालसा उभर आया,
बिम्बकार रवि प्रभात समयी गाढान्धकारारि ये ।
आकाशा खिल सम्प्रति प्रतिनिधीभूत प्रकाशौंघ,
सर्वंत्रात्मगत प्रधान प्रणिधि प्रख्यात कीर्ति प्रिय,
सर्वाशाधवलायिता सुखमयी भास्वान् के शौर्य से ॥३॥

इधर भी तो

आशांगना निलमवन्दन मालिका सी,
सूर्य प्रभा नवल कुंकुम सी सुरम्या ।

आशाङ्गनाभिरनुरागवतीभिरद्य
सस्मेरहासमिह कारयति प्रसङ्गम् ॥४॥

भवतु, आदिष्टोऽस्मि गुरुणा यथा "अद्य शिवरात्रिरिति प्रातरेव त्वया सर्वाणि कुसुमानि संगृहीतव्यानि" इति तद् यावन्न समागच्छति नागरिकसमवायस्तावदिमानि विकसितानि गृह्णामि पुष्पाणि ।

[विलोक्य]

"पीयूषदीधितिलसत्किरणाञ्चितानि
किञ्चिन्मदारुणविभारुणितानि मध्ये ।
बिम्बाधरामलवलद् दशनांकभाजं
प्रातःश्रियः स्मितरुचं कुसुमान्यवापुः" ॥५॥

[इति कुसुमानि चिनोति, ततः प्रविशति शीतवेपिताङ्गः छात्रः]

कीर्तिकुमारः—अरे ! ईदृशेऽनध्यायकालेऽपि नाऽस्माकं निद्रावकाशसुखं सर्वथा, इदं कुरु, इदं कर्तव्यमिति नियोगशतैः क्षणमपि विरतिं न ददाति नो गुरुः

[हिमबाधां नाटयति, अग्रे विलोक्य]

अये ! राजप्रकाश एहि ।

राजप्रकाशः—[आगत्य] ननु कीर्तिकुमार! कथं भवानपि विभात एव कुथरकम्बलः समागतः ?

कुमारः-[सेर्ष्यम्] भो ! कुसुमानि चेतुमाज्ञप्तोऽस्मि उपाध्यायहतकेन ।

·काशः—वयस्य ! प्रातरेव निन्दसि गुरुम् ?

दिङ्नारियाँ नव सुनेहवती अमीये,
हासानुहास करती शुभकाल आज ।।४।।

अच्छा, गुरुजनने तो आदेश दिया है।

तदनुसार आज शिवरात्रि है। अतः प्रातःकाल ही तुझे सारे सुमनों का संग्रह कर लेना। अब, जबतक जनता की भीड़ नहीं उमड़ती तब तक इन विकसित कुसुमों को चुन लूँ।

[देखकर]

"पीयूष हस्त विलसत्कर भव्यभूत,
ईषन्मदारुणसुभा अरुणाभ मध्य।
बिम्बाधरा विमल शुभ्र सुदन्त शोभी,
प्रातर्विभा स्मितमयी कुसुमाश्रिता थी ।।५।।

[इस प्रकार कुसुमचयन करता है, सामने से शीत से कम्पायमान कलेवर छात्र प्रवेश करता है।]

कीर्तिकुमार : ओ हो! इतनी सुन्दर अनध्याय वेला है तो भी हमें निद्रा का सुख नहीं है, 'यह कर' 'वह ऐसा कर', 'ऐसा करना चाहिये', इस प्रकार की गुरुजी की सैकड़ों आज्ञाएं हमें विश्राम नहीं लेने देतीं।

[सर्दी की असह्यता बताता है, आगे देखकर] हां भई! राजप्रकाश! इधर आ न।

राजप्रकाश : [आकर] भाई कीर्तिकुमार! क्यों तुम भी सबेरे सबेरे ही कम्बल लटकाते चले आ रहे हो?

कुमार : [जलन से] क्या करूं भैय्या? दुष्ट उपाध्याय ने प्रसून चयन की आज्ञा जो दे दी है।

प्रकाश : वाह भाई! प्रभात की पुनीत वेला में ही गुरु की निन्दा!

कुमारः-भो गुरुवत्सल ! सत्यमेतत्, पश्य,

अस्मिन्विभातावसरे मन्दमन्दमकरन्दवाहिनि तुषारविन्दु-
तुन्दिलितवपुषि वाति मरुति गृहेषु नित्यजागरुकाः कुक्कु-
अपि पक्षतीच्छादिताऽवयवाः शेरते ।

प्रकाशः-ततः किं वक्तुकामोऽसि ?

कुमारः-अद्य शिवरात्रिः, गुरुरपि शिवसायुज्यमेतु ।

प्रकाशः- सखे ! कथमध्यापकस्योपहासः ?

कुमारः-[अश्रुत्वेव] पश्य, अयमपि मूलशङ्करः किमपि गु-
गुणायमानः आक्रोशतीव निसर्गरूपे गुरवे ।

प्रकाशः-सर्वथाऽनभिज्ञोऽसि, अयन्तु वेदस्तवेन स्मरति चरा-
नायकम् ।

[ततः प्रविशति शङ्करः]

शङ्करः-अहो ! विभातसमयस्य कमनीयता !

"इतो विभा भानुमतः समन्तादपाकरोति प्रचुरान्धकारम्,
पवित्रसारस्वतसारपात्रीत्रयीमयी रम्यगवीव गुर्वी ॥६

अपि च

वेद यस्य प्रशंसापरिणतिविवशाः कर्मणामीक्षिता य-
स्त्रैलोक्यक्षेमधाता वसतिरभिमता धर्मशर्मोदयस्य ।

कुमार : जी हाँ गुरुभक्त जी ! यह सत्य है देखो न इस प्रत्यूष वेला में मन्दमन्द मकरन्द वहन करने वाले हिमकी बून्दों से परिपुष्ट शीतल समीरण के सञ्चार से नित्य जागरुक अरुण शिखा भी तो आज घरों में ही डैनों में चोंचें छिपाये कैसे सो रहे हैं।

प्रकाश : तो तुम्हारे कथन का क्या भाव है ?

कुमार : मैं तो यही चाहता हूं कि आज शिवरात्रि के दिन गुरुजी भी कैलाश वासी हो जायें।

प्रकाश : क्यों अध्यापक महोदय का भी उपहास ?

कुमार : [अनसुनी करके] देखो ! यह मूल-शंकर भी तो कुछ गुनगुनाता हुआ सा दुर्वासा जैसे गुरु को ही रो रहा है।

प्रकाश : तू सर्वथा अनभिज्ञ है। यह तो श्रुतिवचनों से चराचर पति का संस्तवन कर रहा है।

[इतने में मूलशङ्कर प्रवेश करता है]

शंकर : अहो प्रभात वेला कितनी रमणीय है ?

'यहाँ प्रभा भास्करकी नशाती,
प्रगाढ़ अन्धेरे दशों दिशा का।
पुनीत विद्यागत सारपत्री,
वेदत्रयी शोभन गौ समाना ॥६॥

और भी तो—

'चारों श्रुति प्रथित गायन कार्य सक्ता,
जो सर्वदा सकल कर्मनिरीक्षकाद्य।
लोकत्रयी कुशल मंगलद प्रसन्न,

म० च०—२

उन्मीलत्पङ्कजालीपरिमललहरी लोभिनोन्दिन्दिरालो
झङ्कारस्वीकृतस्वागतमयमरुणः शोभते लोकचक्षुः ॥७॥

प्रकाश –[समीपं गत्वा]

शङ्कर ! कथं आगमनपरिक्लेशः स्वीकृतः ?

[अश्रुत्वेव प्रकृतिविकासमवलोक्य]

"द्वौ कन्दुकौ हिमरुचिद्युमणी विभातौ
मन्दप्रफुल्लनयनद्युतिलक्ष्यमाणौ ।
धाता जगत्त्रयविनिर्मितिजागरूकः
संक्रीडते गगनसीमनि किं कराभ्याम् ॥८॥

[प्रकाशं विलोक्य] सखे ! पश्य !

"धाराभिर्विश्वमारात्तमसि निपतितं रञ्जितकुंकुमाना-
मानाकव्यापिनीभिर्निशिचरनिवहः क्षोदितो रश्मिदण्डैः ।
मुक्तानां सूक्तरावैः कमलवनमहाबन्दिवासादलीनां
साकं यद्गोद्विजैश्च चरति विभवति भ्राजमानांशुराशिः ॥९॥"

प्रकाशः–सत्यं मनोहरमेव निखिलम् ।

"विकचकमललीलालम्पटालिस्वराली,
कृतकुतुकवचोभिर्दृश्यते दिक्सखीभिः ।
अरुणितवपुरुद्यन् चूर्णमुष्ट्येव भास्वा-
नमरपतिगृहिण्या सस्पृहंभुक्तमुक्तः." ॥१०॥]

शङ्करः–ननु कथं प्रातरेव भवन्तौ समागतौ ?

कुमारः–शिरो मुण्डयितुम् ।

प्रकाशः–[विहस्य] शिवपूजायै चेतुं सुमनांसि ।

उत्फुल्लं पंकजनिलीन सुषट्पदालि,
स्वस्था गतार्थं करती गुणगान सद्य।
भानु प्रभात किरणें सकलान्धकार ।।७।।"

प्रकाश : [निकट जाकर]

शङ्कर : आगमन का कष्ट क्यों उठाया है ?

[अनसुनाकर के ही प्रकृति का सौन्दर्य देखकर]

"दो गेंद से रवि निशाकर शोभते हैं
मन्द प्रसन्न नयनद्युतिदीप्तिपूर्ण ।
धाता समस्त भव निर्मित बुद्धभाव,
है खेलता गगन आँगन में करों से ।।८।।"

[आलोकाविलोकन करके] मित्र ! देखो !

'धराओं से झटिति जग को ध्वान्त संक्रान्त शून्य,
रक्तात्यन्त प्रखर किरणों से अभी रात्रि गामी।
पद्मारण्याश्रित मधु के मिष्ट कांत स्वरों में,
पक्षी-गौएं चरण करते साथ भाता दिनेश ।।९।।"

प्रकाश : यथार्थ ही तो है, ओहो ! निखिल प्रकृति कितनी रुचिर है ?

'विकसित जलजों में मग्न मुग्धालि वर्ग,
ध्वनित कुतुकवाणी दिक्सखी सृष्ट हर्ष।
रवि अरुणित देही चूर्णकी मुष्टियों सा,
अमरपतिरमा के स्पर्श से ज्ञात मुक्त ।।१०।।

शंकर : क्यों जी इतना प्रभात में कैसे शुभागमन हुआ आप दोनों का ?

कुमार : सिर मुंडाने के लिए।

प्रकाश : [मुस्कराकर] शिवार्चना के लिए, सुमन संचय के लिए।

कुमारः—शङ्कर ! दिष्टया भवान्न पतितो नयनगोचरं तस्य पण्डितस्य । [प्रकाशं प्रति] सखे ! अयं कथं न विधेयीकृतः कुसुमावचये ?

प्रकाशः—बन्धो ! प्रतिभैव रञ्जयति गुरून् शिष्याणाम् ।

कुमारः—अवगतम्, अतिप्रतिभावत्त्वमपि दोषाय कल्पते !

प्रकाशः—कथमिव—

कुमारः—पश्य, तस्मिन्दिने बृहस्पतिरिव शंकरः कथं निःसारितः विद्यालयात् ।

शङ्करः—हा धिक् वयस्य ! स्वाछन्द्य हि निपातयति गर्तं !

कुमारः—भो जाने ! आत्मनः समधिकमेधाविशेषं न सहन्ते शिष्यं हताशा अध्यापकः ।

शङ्करः—बालिशोऽसि ।

"वचांसि येषामुदयङ्गमानि,
पापप्रणालीदलनक्षमाणि ।
चरित्रशीलानि न शीलयन्ति,
घनावलेपा निपतन्ति शोके ॥११॥

प्रकाशः—तथ्यमाहुर्गुरवो हि—

"स्तोकं लब्धमपायि पुण्यनिचयव्याजान्मनागर्थिने
लोकेऽस्मिन्द्रविण दुरन्तकरण केनापि किं दीयते ।
एते हन्त निसर्गसौम्यरुचयो विद्याधन शाश्वत
निर्व्याजं ददते पवित्रमनसो धन्या गुणग्राहिणः ॥१२॥

कुमारः—त्वमपि विप्रलब्धोऽसि पश्य—

"अन्विष्यान्विष्य राशीननुषितसरणीर्हन्त पारक्यवाचां
प्राचामाचार्यतायाः पदमिह विदधद्दर्पदन्द्रम्यमाणः ।

कुमार : शंकर ! भाग्य से तू उस पण्डित की आँखों के सामने नहीं आया। [प्रकाश की ओर] मित्र ! इसे क्यों नहीं लिया कुसुम चयन में ?

प्रकाश : भैय्या ! गुरु जन तो शिष्यों की प्रतिभा से ही प्रसन्न रहते हैं।

कुमार : हाँ, जान लिया, अधिक प्रतिभा भी तो दुःख का कारण बन जाती है।

प्रकाश : कैसे ?

देखो न, उस दिन वृहस्पति के समान बुद्धिमान् शंकर को कैसे निकाल दिया था विद्यालय से ?

शङ्कर : अरे भाई छिः छिः अधिक स्वच्छन्दता गड्ढे में गिरा देती है।

कुमार : मुझ ज्ञात है, अपनी योग्यता से अधिक योग्य शिष्यों को निराश गुरुजन कहाँ पसन्द करते हैं ?

शङ्कर : मूर्ख है तू।

"वाणी जिन्हों की उदयार्थकारी,
पाप प्रणाली दलन प्रवीण।
चरित्रशाली न मलीन होते,
गर्वांधमात्मा गिरते दुखों में ॥ ११ ॥

प्रकाश : सत्य वचन हैं गुरुजनों के :—

थोड़ा प्राप्ति विनाशि पुण्य जनक व्याज प्रदत्ताम्य को,
कोई क्या कितना वितीर्ण करता संसार में द्रव्य को।
'ये तो पूज्य महानुभाव गुरु हैं नैसर्ग सौम्याशय,
विद्या दान मुदा प्रदान करते ये धन्य पूतान्तर ॥१२॥

कुमार : तू भी मूर्ख ही रहा, देखा—

"अत्यन्त शोधन पर प्रकृतान्य वाणी,
सर्वस्व है समझता नित जो कवीश।
आचार्य पूज्य पद को अभिमान दृष्टि,

कण्ठेऽकुण्ठः शिशूनां स्रजमिव वहतां शासनालोमलंभू-
रुद्वेगीकृत्य गर्जत्यनुभवरहितः पण्डितम्मन्य एषः ॥१३॥

अपि च।

"अधिगत्य कियत्यनर्थभाञ्जि
परमतया हृदयङ्गमानि कृत्वा ।
अधिकाश्रितदर्पमक्षराणि
ननु वागीशगतिं विडम्बयन्ति" ॥१४॥

प्रकाश :—अयमपि प्रशंसनीयस्तेषां यत्नः, किन्तु नहि परेऽपि मुष्टाक्षरोदरं भरिणः सवथा नमस्या हि ते पश्य—

दूरादेव मनोहरः शिवगिरिः शोवापदापत्प्रदः
वक्रः सोऽपि तुषारदीधितिरयं काम कलङ्कान्वितः ।
क्षुब्धः किञ्च वलन्नपेयसलिलो वारांनिधिस्तद्गुरुः
विद्यादिव्यविलासवर्षणसुधापाकः कथं वर्ण्यते ॥१५॥

कुमार :—भवतु, युष्याकमभिरुचिः ।

शङ्कर :— (सशङ्कः) न तव ?

कुमारः—अथ किम्, अद्यैव शिवरात्रिमहोत्सवं भाजयित्वा व्रजिष्याम्यन्यत्र ।

प्रकाश :—निश्चतं तदपि नाम ! अन्यथा कथं मूषकस्य बिडालेन समं युद्धाभिनिवेशः ?

[कुमारः शङ्कराय पत्रं दर्शयति]

शङ्कर :—[पठित्वा] (स्वगतं) अहो ! भारतीविलासालय इ सिद्धाश्रमे [सिद्धपुरे] नियतं विपश्चितामवकाश

से देखता चिर अनेहस से प्रगल्भ।
पाण्डित्य कण्ठगत जो शिशुसा सुहार,
धारे मनुष्य पति सा दृढ़दण्ड बुद्धि ॥१३॥"

और भी तो—

"मनस्थ मोघार्थ अनेक लेके,
सरस्वती भी परकीय लेके।
स्वयं बने अर्थपति प्रविज्ञ,
दर्पोक्तियाँ लाँछन दे रही हैं ॥१४॥

प्रकाशः—ऐसा प्रयास भी प्रशस्त है उनका! सभी तो ये ऐसे नहीं हैं जिनके चरणों की धूलि से मस्तक पवित्र किया जाए। इनमें भी अनेक ऐसे हैं जो उदरपूर्ति का ही ध्यान रखते हैं। —देखो

"आपल्लंध्य मनोहरोन्नतशिरा शैवालक प्राञ्जल,
है लक्ष्मांकित चन्द्रमा असरल प्रख्यात शीतांशुक।
वो भी वक्र तुषारदीधिति तथा दोषांकनापूरित।
क्षुब्ध क्षीर निधि प्रशस्तन रहा प्यासे सभी प्राणभृत् ॥१५॥

कुमार : हाँ, हाँ ठीक है आप की अभिरुचि!

शंकर : [शंकित सा] तेरी नहीं न!

कुमार : और क्या आज ही शिवरात्रि का मेला बिताकर कहीं भाग जाऊँगा।

प्रकाश : स्थान तो निश्चित ही है न!
नहीं तो बिल्ली से चूहे की क्या लड़ाई?
[कुमार शंकर को पत्र दिखाता है]

शंकर : [पढ़कर] (मन ही मन में) अहो! विद्या के भव्य धाम सिद्धाश्रम (सिद्धपुर) में विद्वानों का पुनीत सान्निध्य तो अवश्य है।

[प्रकाशम्] कुमार ! अवश्यं एतत्करणीयम् ।

पश्य—

कल्याणैककुलाङ्कुराः सुरसरिद्धारानुकारा.पराग्
ध्वस्ताशेषतमश्चया नवनवोन्मेषा दिनेशा इव ।
निःशेषार्पितजीवना जलधराविश्वानुबन्धा इव
चेतस्तोषसमर्पणैः सुगुरवो धन्या यशोराशयः ॥१६॥

प्रकाश :-भो ! अवचितानि न वा कुसुमानि, पश्य, उदितो भगवान् दिवाकरः त्वरितं गन्तव्यम् ।

कुमार :—कथ विभेषि, धिक् कष्टम् ।

"अपेक्ष्य हेतुं परिकुप्यतोऽपि
न चोपतापो कुटिलः स्वभावः
परतु निर्हेतुरुषां गुरूणां
सान्निध्यमन्तःकरणं क्षिणोति" ॥१७॥

[शङ्करः सिद्धाश्रमचिन्तां नाटयति]

कुमार :—मया वस्तुनो न निन्द्यन्ते गुरवः किन्तु पल्लवग्राहिण एव— पश्य —

"स्वाहंकारजुषः प्रमादिवपुषश्चारित्रचञ्चूपुषः
शिष्टा हन्त गुरोर्विशिष्टमतयः शिष्या भवेयुः कथम् ।

प्रकाश :—नाय सर्वदा नियमः । पश्य—

"क्षारादेव विनिर्गतानि जलधेरस्मादलंकुर्वते
वक्षः सुन्दरमौक्तिकानि किरणश्रेणीभिरेणीदृशाम् ॥१८॥

(नेपथ्ये) भो भो ! अन्तेवासिनः संजात । एव सन्ध्यासमयः

शङ्कर :—(श्रुत्वा) अहो ! कालातिपातोऽय व्यर्थकथया, तदस्यामेव सरिति विधीयतां स्नानक्रिया ।

[प्रकट में] कुमार ! हाँ हाँ अवश्य ऐसा करो यही ठीक है ।

देखो :—

"आनन्दातिशय प्रसन्न हृदय प्रज्ञाभिमानोन्नत,
गंगाधार समान मंल निचयध्वंसावशेषोज्ज्वल ।
भानु ज्योति समप्रफुल्ल जलद प्यासी धरा मोदक,
धन्याभन्द मुद प्रदर्शित यशा आचार्यवर्यादृत ॥१६॥

प्रकाश : क्यों भई ! पुष्प चयनकर लिया है ? देखना ! प्राचीदिशा में भगवान् भुवन-भास्कर सुवर्णथाल सा ऊपर उठ रहा है । शीघ्र चलना चाहिए ।

कुमार : क्यों भयभीत हो रहे हो ? हाय रे !

"सहेतु जो क्रोध करें महात्मा,
न दुःखदायी कटुभाव होता ।
आचार्य निष्कारण रुष्ट हो तो,
समीपता मानस को चुभेगी ॥ १७ ॥"

[शंकर सिद्धाश्रम चिन्ता का प्रदर्शन करता है ।]

कुमार : मैं वस्तुतः गुरुजनों की निन्दा नहीं करता । मैं तो पल्लवग्राही गुरुवों की बात करता हूं ।

देख—

"स्वार्थान्धामल बुद्धिशील नितही आचार चर्चा करे ।
शिष्यों को न महान् ज्ञान निधियाँ से दे सकें स्वप्न में ॥

प्रकाश : सदा ऐसा ही थोड़े होता है ?

मोती क्षार समुद्र जात रमणीवक्षः स्थलाभूषण ।
आदर्श प्रतिमान है जगत में एणाक्षियो को सदा ॥१८॥

(नेपथ्य में) अरे विद्यार्थियो ! सन्ध्याकाल हो चुका है ।

शंकर : [सुनकर] अहो ! क्या लाभ है व्यर्थ समय यापन से ? चलो इस नदी में ही स्नान कर लें ।

कुमार :—अयमपि द्वितीयो गण्डस्फोटकः प्रभातस्नानम् ।

प्रकाश :—(अश्रुत्वा) अथ किम् ?

विष्कम्भः (इति सर्वे निष्क्रान्ताः)

द्वितीय प्रवेशः

[सन्ध्यासमयः, टकारास्थानम्]

[ततः प्रविशति कश्चिद्वैदेशिकः]

[चन्द्रशेखरः] वैदेशिकः—[समन्तादवलोक्य] अहो ! अस्त यियासुर्भगवान् लोकचक्षुः—

"उल्लासं कमलाकरस्य कलयन् दीर्घं निरस्यँस्तमः
शोभां कामपि पङ्कजेषु विदधच्चञ्चत्करश्रीभरः ।
लोकं तेजसि मज्जयन् जयय शोमुद्रामहिम्नाङ्कितो
मार्त्तण्डः समुपैति कालपरवानस्ताचल संप्रात ॥१॥

"येनोदितेन मधुपैः ममकारि मैत्री,
पात्रीकृताः प्रणयतो मधुकोशवत्यः ।
इत्थं जगत्त्रयगतिर्वचनीयभीरुः
सिन्धौ प्रतापगतिरेष रविर्ममज्ज ॥२॥

अहो पर्यवसानशीलं हि सर्वेषां जीवनम्—

"लब्ध्वा मूर्ति सकलवसुधाधीशसाम्राज्यकल्पां
कीर्ति शुद्धां ममदरमणीहाससंकाशमूर्तिम् ।
का विश्रान्तिस्तृणलघुषु हा जन्तुषे क्षेमदात्री
संसारेऽस्मिन् सलिलघटिकाचक्रवद्घूर्णमाने" ॥३॥

कुमार : यह प्रात: स्नान भी दूसरी मुसीबत हो गयी।

प्रकाश : [अनसुना करके] और क्या ?

[सब चले जाते हैं]

(द्वितीय दृश्य)

[समय सायकाल, स्थान टंकारा]

[इतने में एक परदेशी छात्र प्रविष्ट होता है] चन्द्रशेखर

परदेशी छात्र:—[चारों ओर देखकर] अहो ! भगवान् दिवाकर तो अस्ताचल की ओर जा रहे हैं :—

कमलाकर को विकसा कर के,
आते गाढ़ तमस विनसा करके।
मृदु अम्बुज में प्रतिभा भर के,
चहुं ओर प्रकाश निभा करके।
ध्रुव चंचल रश्मि उठा कर के,
रवि कीर्तिजयांकित श्री वर के।
छिपता परतन्त्र विभा भर के,
सम सज्जन कष्ट हरे पर के ॥१॥
'मैत्री द्विरेफ गण से कर जो उदेता,
पात्रत्वपा प्रणय से मधु कोष शीला।
ऐसे समस्त भव जीवन वाच्य भीरु.
है डूबता जलधि में रवि तेज धामा' ॥२॥

हाँ, हां, इसी प्रकार तो सारे ही संसार का जीवन है :—

पाके श्री का सकल धरणी ईश साम्राज्य तुल्या,
शुद्धाकीर्ति मदिररमणीहास सकाश रूपा।
कैसी शांति क्षयरत सभी प्राणियों में सुखाढ्या,
आताजाता प्रति पल जगत् वारियन्त्रस्थपात्र ॥ ॥

भवतु अस्तङ्गतः प्रभाकरः, मयाऽपि निजावासयोग्यमन्वेषणीय स्थानम् [सर्वतोऽवलोक्य] न दृश्यते कोऽपि । [आकाशे] भो भो ! ग्रामनिवासिनः, वैदेशिकोऽस्मि । क्व ननु योग्यमस्मादृशामायतनम् ! किं ब्रूषे उपशिवालय धर्मशालेति ! अहो परं निवृ तिस्थानम् ।—

यात्रिकाणां च पन्थानां
विटानां व्यसनैषिणाम् ।
कामिनां गृहहीनानां
धर्मशाला गृहायते ॥४॥

अस्तु तामेव गच्छामि [अवलोक्य] इयमेव सा चलत्पताकाञ्चलनेनाह्वयन्तीव पान्थान् विराजते । ततः प्रविशामि सुखशयनाय । [एककोणे प्रविश्य, विलोक्य] अरे ! किमिदम् ?

"क्वचित्थुक्काष्ठीवः सकलगदसंक्रामकरणः
क्वचित्फूत्कारेण प्रचलित पतत्कच्चरचयः ।
क्वचिज्जीर्णा कन्था सघनमलिनः कर्पकटः
क्वचिद्धूमासक्त स्रवति हत कुड्य कृमिकरम् ॥५॥

एषाऽपि केनाचिद्भित्तौ परिलिखिता स्वाभिधेयगौरवप्रशस्तिश्चकास्ति । एतदपि पथिकैरानीतं शाकपाकादितृणजालं चुल्लिकां परितः प्रसृतम् । इतोऽपि सारमेयपुच्छाहतः शीतभूमिश्वभ्रधूलिनिकरः । बीभत्समिद स्थानम् । क्व गच्छामि ? एतादृशे तु कुक्कुरा अपि न निषीदन्ति । [अग्रे विलोक्य] अये ? सम्मुखं वर्तते गृहं कस्यचित् । नूनं गृहस्वामिनो भविष्यन्ति । [इति तदभिमुखं ब्रजति] [ततः प्रविशति चतुर्दशवर्षीया बाला]

बाला—भगवन् ! नमस्ते !

पथिकः—भद्रमस्तु कल्यापि !

अच्छा, अब तो सूर्य छिप गया है। मुझे भी अपने निवास की व्यवस्था कर लेनी चाहिये। [चारों ओर देख कर] यहाँ तो कोई नहीं दीखता। [गगन में] अरे भाई ग्राम निवासियो ! मैं विदेश से आया हूं। कहीं पर हमारे लिये उपयुक्त स्थान है ! क्या कहते हो ? शिवालय के पास में ही धर्मशाला है। बड़ी ही आराम का स्थान है :—

यात्रियों राहगीरों की, बनियों की व्यसनार्त की।
कामुकों गृहीनों का, धर्मशाला निजालय ॥४॥

तो चलुँ इसी के पास। [देखकर] यही है वह धन्य भाग्या धर्मशाला, जो पथिकों को हिलते हुये केतु के व्याज से बुलाया करती है। अच्छा; सुखद निद्रा के लिए चलूं यहीं धर्मशाला में। [एक कोने में जाकर, और देखकर] ओहो ! क्या है यह सब ?

'कहीं ढेरों थूक, प्रबलगद का कारण बना,
कहीं फूत्कारों से उड़-उड़ रहा खूब कचरा।
कहीं जीणा कन्था अतिमलिन है दारु फलक,
कहीं धूम व्याप्त स्त्रवित कृमिकुड्य प्रति पद ॥५॥"

ये भीतें भी तो लोगों के सगौरव हस्ताक्षरों से भरी हुई कैसी शोभायमान लग रही हैं ?

और यात्रियों के लाये ये चूल्हे के चारों ओर शाक-पात के ढेर कैसे पड़े हैं ? इधर कुत्तों की पूछों से उड़ने वाली यह धूलि भी तो इस पावन स्थान को कैसे भद्दा बना रही है ? यह स्थान बड़ा मैला है। कहाँ जाऊँ ? ऐसे स्थान पर तो कुत्ते भी नहीं बैठते। [आगे निहारकर] हाँ यह सामने तो है किसी का घर। निश्चित ही घर वाले यहाँ होंगे। [वह उस घर की ओर बढ़ता है तभी सामने से चोदह वर्ष की बाला प्रविष्ट होती है]

बाला :—भगवन् ! नमस्ते !

पथिक :—नमस्ते कल्याणि !

बाला :—कुतः समागम्यते श्रीमता ?

पथिका :-ननु सिद्धायतनात् सिद्धपुरात् ।

बाला :—किं सिद्धपुरात् ?

पथिक :—ओम् । भद्रं ।

[बालिका सनिःश्वासं अधोमुखी भवति]

पथिक :—[स्वगतम्]कथं नामश्रवणमात्रेण बालया निःश्वसितम्? अपि नामाभिमतो जनः स्मृतः स्यात् [निरीक्ष्य] अये ! आकृतिरपि लावण्यमयी तदेवानुस्मारयति (प्रकाशम्) भद्रे ! कथं भवत्या नामश्रवणेन निःश्वसितम् ?

बाला :—महाभाग ! किं निवेदयामि मन्दभाग्या !

पथिक :—जनित कुतूहल, विस्तरेण वणयतु भवती ।

बाला :—जन्मस्थानं मदीय तत्र ।

पथिक :—किं सिद्धपुरे जन्मस्थानम् ?

बाला :—एवम्

पथिक :—[साश्चर्यं स्वगतम्] कथं माकन्दपरिरम्भशालिनी माधवीलता खदिरवनमालिङ्गति ? [प्रकाशम्] भद्रे ! यद्यपि नवीनागन्तुकेन न सर्वं रहस्यं प्रष्टव्यं गृहमेधिनाम् । किन्तु भवत्याः शालीनतां वीक्ष्य प्रष्टुमुत्सहे ।

बाला :—ननु विश्रब्धं वदन्तु महाभागाः ।

पथिक :—तत्कथं भवत्या दूरादत्र निवासः ?

बाला :—अत्रैव मे दुर्विधायाः परिणत भाग्यम् ।

पथिक :—अवगतम्, वैवाहिकः सम्बन्धः किम् ?

बाला :—नहि नहि, विक्रय. ।

बाला :–कहाँ से पधार रहे हैं आप ?
पथिक :–मैं सिद्धायतन अर्थात् सिद्धपुर से ।
बाला : क्या सिद्धपुर से ?
पथिक :—हाँ भद्रे !

[बालिका निःश्वास छोड़ती हुई नीचा मुख कर लेती है]

पथिक :—(स्वगत) नाम सुनने से ही इस बालिका ने निःश्वास क्यों छोड़ा होगा ?

हाँ, नाम से किसी की स्मृति जाग उठी है। [देखकर] ओहो ! आकृति भी तो सुन्दर है, वही याद करा रही है। [प्रकाश] कल्याणी ! तुमने नाम सुनते ही आह क्यों भरी ?

बाला :–महाशय ! मैं अभागिनी क्या बताऊं ?
पथिक :–कौतुहल हो गया है। विस्तार से बता दो क्या बात है ?
बाला:—वह मेरी जन्मभूमि है।
पथिक :–क्या सिद्धपुर तुम्हारा जन्म स्थान है ?
बाला :—जी हाँ !
पथिक :—[आश्चर्य चकित स्वगत] माकन्द वृक्ष का सहारा लेने वाले यह माधवी बेल भी हाय रे ! खैर के पड़ से कैसे लिपट गयी ? [प्रकाश में हाँ, तो देवि ! वैसे नवीन यात्री को तो नहीं पूछना चाहिये घर गृहस्थ की सारी बातें। परन्तु आपकी शालीनता देखकर पूछने का मन हो गया है।
बाला :—नहीं, खूब पूछिये आप !
पथिक :— तो इतनी दूर से आप यहाँ कैसे आ गयीं ?
बाला :–मुझ अभागिनी का भाग्य यहीं पर फूटा है।
पथिक :–समझ गया, आप विवाहिता हैं यहाँ ?
बाला :—नहीं, नहीं, विक्रीता हूं मैं यहाँ पर।

पथिकः—(साश्चर्यम्) कथ विक्रयः ? (स्मृत्वा) आम्)। अवगतम् अस्ति तत्र गुर्जर प्रदेशस्य प्रसिद्धे नगरेऽयं कन्याविक्रय-व्यवहारः। यत्र धनलुब्धाः केचन काकोदरा बहुमूल्येन कन्याविक्रय कुर्वन्ति। हा !

"आविर्भूतदयोदयात् परिचयादुच्छिष्टपिण्डादृतान्
न क्रूरायजनोऽपि हार्दविवशां दत्त गृहात्कुक्कुटान्।
धिक् त य: परिपोष्य जीवनरत्नस्नेहेन यावत्सुखम्
विक्रीय द्रविणेन पापनिरतो भुङ्क्ते स्वकन्यामिषम् ॥६॥

हा ! भारतवर्ष ! कां दशां नीतोऽसि पामरपशुभिः

निःश्वासानिलघूर्णमानलहरीसावर्तवक्रायिते
चेतोदाहकरालपावकशिखाघाराकुले दुर्वहे।
आपन्नक्रपरिक्रमप्रचलिते व्युल्लङ्घिताशाम्बरे
कन्यानां नयनाश्रुनीरधिजले हा देश ! संमज्जसि ॥७॥

[इति निःश्वसिति]

बाला:—इत आसनपरिग्रहं करोतु भवान्। [विलोक्य] ननु सम्प्राप्त एवैष गृहस्वामिशिवपूजकः सहोपाध्यायेन।

(इति निष्क्रान्ता)

(ततः प्रविशति पूजकः सहोपाध्यायेन)

पूजकः—भो भो ! उपाध्याय ! कथं चिरायितं भवद्भिः ?

उपाध्यायः—नियोजिता मया विद्यार्थिनः शर्वर्यां शिवपूजन-सम्भारसंपादनाय।

पूजकः—[मध्ये] ननु, अस्मत्पूजनसंभारो विहितो न वा

पथिक :-[आश्चर्य के साथ] कैसी बिक्री ? (याद करके) हाँ, समझ में बात आ गयी अब। गुजरात के प्रसिद्ध उस नगर में कन्या विक्रय की प्रथा है। वहाँ कुछ काकवृत्ति के धन लोभी माता-पिता, संरक्षक, कन्याओं को खूब सारे रुपयों में बेच देते हैं। हाय री कुप्रथा ?

'उद्भूतानु दयाभरा यदि नर स्वप्राणियों को बड़े,
स्नेहाधीन न बेचते अदय को गेहाश्रमी मानव,
सम्पुष्टामितवत्सलत्वभरिता पुत्री पिता बेचते।
तो वे हैं तनयाऽऽमिषान पतित प्रख्यात पापी बुरे ॥६॥

हाय रे भारतवर्ष ! तुझे किस दुर्दशा को पहुंचा दिया है ऐसे पामर पशुओं ने !

हाहाकार समीर पूर्णित चलद्दीर्घोर्मि सावर्तक;
चित्त ज्वालन दुर्भगानल शिखा धारा वृत प्रोदय।
आपद्ग्राह युत प्रकर्ष रहित व्युल्लघनाशामय,
आँसू सागर नीर मग्न बनता तू देश ! क्यों जा रहा ॥७॥

[निःश्वास छोड़ता है]

बाला :—यहां आसन स्वीकार करें आप [देखकर] हाँ, हाँ, अब तो उपाध्याय के साथ गृहस्वामी शिवार्चन करके आ ही गये हैं।

[बाला का प्रस्थान]

[उपाध्याय के साथ में पुजारी प्रविष्ट होता है]

पुजारी :—उपाध्याय जी ! कैसे विलम्ब हो गया आपको ?

उपाध्याय :—मैंने छात्रों को नियुक्त कर दिया है। शिवरात्रि की पूजा सामग्री की सज्जा के लिए।

पुजारी :—[बीच में ही] क्यों जी ? हमारी पूजा की सामग्री व्यवस्था तो कर दी है कि नहीं ?

उपाध्यायः–कथमेतद् विस्मरिष्यामि ?विशेषत ईदृशे महोत्सवे !

[इति कक्षतो भंगपोट्टलिकां निःसारयति]

पूजकः—समीहितं नः आगच्छतु पूर्वं विजयां पीत्वा पश्चात् मिष्टान्नेन निजोदरसौहित्यं कुर्वः।

उपाध्यायः–यथेच्छति भवान्।

[आसने स्थित्वा पूजको विजयां घोटयति]

पूजकः—[घोटयन्] भो उपाध्याय ! श्रावय, श्रावय विजयापुराणमाहात्म्यम्।

उपाध्यायः–[विहसन्] अहो ! पारेगिरां महिमा विजयायाः येन नास्वादिता स जीवन्नेव मृतः !

पश्यः-

दृष्ट्यैव मोहयति कर्षति दूरतोऽपि
हर्षप्रकर्षमभिवर्षति सङ्गकाले।
वामाङ्गनेव कमनीयकलावतार
मारारिमानसहरा विजया मनोज्ञा"॥८॥

अपि च, सैव–

'दधाति सरसं मनः प्रचुरहर्षसंवर्धनैः
करोति मृदुरञ्जनं नयनयो रसोल्लासितम्।
सुखं किमपि सस्मितं वहति वीतशोकागमं
विलासरसमन्थरा जगति सादरं जीवतु ॥९॥

पूजकः—अहो ! पल्लवितं माहात्म्येन समं हृदयेनाऽपि ! भो ! घोटिता मया विजया, विधीयतां मिश्रणं, अहमपि गत्वा गृहाभ्यन्तरं पयः समानयामि।

(इति गतः)

पथिक :—हाय रे ! इन लोगों का कितना खोटा काम है ? आश्चर्य है, इस भङ्ग के रसिक पण्डित महाराज ने तो विजया गौरव का पिटारा ही खोलकर रख दिया है। ऐसे शुभ पर्व पर भी तो मादक द्रव्य नहीं छोड़ते !!

"शैथिल्योद्भवकारण प्रमदधी, पानान्तर प्रायशः,
चित्तानन्द विनाशिनी प्रतिपल प्रज्ञाबलध्वंसिनी।
हा हा ही करती सदा विकलता सम्बर्द्धिनी सौख्यहा,
मूढाङ्गीकृतभगवारवनितायक्ष्माभयोद्भासिनी ॥ ८॥

धिक्कार है ऐसे विशिष्ट विचक्षण विविध वेद वेदाङ्गों के तथाकथित विद्वानों को, दाम्भिकों को, सदाचार विमुखों को !

उपाध्याय :—[भाँग मिलाता हुआ चारों ओर निहार कर] अहा ! कितना सुन्दर मनोनयन-हर रूप है इसका।

क्योंकि :—

"जब जब नाम सुना विजया का,
महादेव शिव ने प्रियतर का।
तभी-तभी मुद मोद भरे शिव,
अन्य तरुणियों के अभिलाषी ॥९॥

"ऐसा विचार प्रणयाभिरामा
प्राचीन नाम त्यज के स्वकीय।
शैलेन्द्रजा शङ्कर वञ्चनार्थ,
है धारती ये विजयाभिधान" ॥१०॥

[इतने में पुजारी प्रवेश करता है]

पुजारी :—उपाध्याय जी ! लीजिये जल, मैं धर्मशाला के द्वार बढ़ाकर आता हूं, फिर होगा आनन्द से विजया पान–महोत्सव।

[वह द्वार के निकट जाता है]

(उपाध्यायः मिश्रणं करोति)

पथिकः—हन्त, भो ! कीदृशोऽमीषां वामाचार । आश्चर्य
अनेन विजयोन्मादिना पण्डितेन माहात्म्यश्लोकपरिषा
पेटिका समुद्घाटिता । ईदृशेऽपि वासरे न मादकद्रव्यं जहीतः

"शैथिल्य जनयत्यमन्दमभितः स्वादावसाने पुन-
र्जीवग्राहमपाकरोति निखिलं सत्वं ततः कर्षति।
वैक्लब्यं विदधाति कारयति या हीहीति मूर्खायित
वेश्येव क्षयकारिणीह विजयाऽऽनन्दाय मन्दैर्मता"॥१०

धिक् तानधिगतशास्त्ररहस्यानपि प्रतिहतसदाचा
दाम्भिकान् ।

उपाध्यायः—[मिश्रणं कृत्वा विलोक्य] अहो ! नयनानन्दज
रूपमस्याः ।

यतः खलु—

"यदा यदाऽयं विजयाभिधान
शृणोति शम्भुः प्रणयाभिरामम् ।
तदा तदा मोदयुतः समन्तात्
गवेषत्येष विशेषवामाम्"॥११॥

"इत्थं विचिन्त्य प्रणयाभिरामा
पुरातनं नाम निजं विहाय ।
गिरीन्द्रजा शङ्करवञ्चनाय
दधौ नवीनं विजयेति नाम"॥१२॥

[ततः प्रविशति पूजकः]

पुजारी :-[पथिक को देखकर] अजी कौन हो तुम ?

पथिक :—महाशय ! परदेशी हुं।

पुजारी :—तो यहाँ क्यों आये हो ?

पथिक :—धर्मशाला जानकर ठहरने के लिए।

पुजारी :—यह धर्मशाला नहीं है; अच्छा यहाँ रहने का स्थान किसने दिया है ?

पथिक :—आपकी ही कन्या ने ?

पुजारी :—अरे मूर्ख ! कहां है मेरी कन्या ?

पथिक:—क्रोध न करें, वह आपको आता हुआ देखकर घर चली गयी है।

पुजारी :—छीः छीः, पत्नी को कन्या मान रहा है ?

[इस प्रकार मुँह बिगाड़ता है]

पथिक :-क्षमा करें महाराज ! आयु देखकर मुझे कन्या का भ्रम हो गया !

पुजारी :—कहां से आ रहे हो ?

पथिक :—सिद्धपुर से।

पुजारी :—हूं ! सिद्धपुर से !

पथिक :—हाँ जी ! महाशय जी !

[नेपथ्य में]

"अरे विद्यार्थियों ! मैं सब जगह उपाध्याय जी को खोज चुका हूं। अब पुजारी जी के घर चलता हूं। आप सब विद्यालय चलें।"

उपाध्याय :—ओ पुजारी जी ! जल्दी कर जल्दी, मेरा कोई छात्र आ रहा है।

[इतने में मूलशंकर प्रवेश करता है]

पूजकः—उपाध्याय ! गृह्णातु पयः, अहं धर्मशालाया द्वारं पिधायागच्छामि येन विश्रब्ध भवेद् विजयापानमहोत्सवः ।

[इति द्वारसमीपं गच्छति]

पूजकः—[पथिकं विलोक्य] कस्त्वं भोः ?

पथिकः—महाभाग ! वैदेशिकोऽस्मि ।

पूजकः—तत्कथमत्रागतः ?

पथिकः—धर्मशालेति मत्वा समाश्रयाय ।

पूजकः-अरे !नेयं धर्मशाला, भवतु, अत्र केन दत्तो निवासपरिग्रहः?

पथिकः—भवत एव कन्यकया ।

पूजकः–अरे । मूढ ! क्वास्ति मे कन्या ?

पथिकः–मा कुप्य, इयं सा भवन्तमागतं विलोक्य गृहं गता ।

पूजकः–धिक् त्वां, पत्नीं कन्येति मन्यसे ?

[इति विकृतिं दर्शयति]

पथिकः-क्षम्यतां महाभाग ! मया वयसा सा भवत्कन्येति सभाविता ।

पूजकः–अरे ! कस्मादागम्यते ?

पथिकः–सिद्धपुरात् ।

पूजकः–हुं . सिद्धपुरात् ?

पथिकः—आम् महाराज !

[नेपथ्ये]

"भो भो विद्यार्थिनः, अन्वेषिता मया सर्वत्रोपाध्यायपादाः सम्प्रति पूजकगृहं गच्छामि । गच्छन्तु भवन्तः पाठशालाम् ।

उपाध्यायः–भो भो ! पूजारे ! शीघ्रं शीघ्रं कश्चिन् मदीयश्छात्रः समागच्छति ।

[ततः प्रविशति मूलशङ्करः]

मूलशङ्कर -[प्रविष्ट होकर] अहो ! उपाध्याय जी को सर्वत्र देख लिया। अब पुजारी जी के घर में देखता हूं। [देखकर] अब इस घर में प्रवेश करता हूं। अच्छा, विजया महोत्सव का आनन्द मनाया जा रहा है। रहने दूं, या विघ्न खड़ा करूँ ? नहीं नहीं, व्यर्थ में बुरा भला कह देंगे क्रोधी गुरुजी ! नहीं जाता अन्दर। यहीं खड़ा रहूंगा।

[वह धर्मशाला के पथिक वाले कोने की ओर जाता है]

[देखकर] ओहो ! यहाँ पर तो कोई मुसाफिर दीख रहा है। [सोचकर] अच्छा चलो उसी के साथ कुछ परदेश की बातों से मनोविनोद कर लूँ [पथिक से]

भगवन् ! नमस्ते !

पथिक :—नमस्ते ब्रह्मचारिन् !

मलशंकर :—मुझे तो आप पथिक से लग रहे हैं।

पथिक :—ठीक समझा है।

मूलशंकर :—आप किस नाम को सुशोभित करते हैं ?

पथिक :—चन्द्रशेखर।

मूलशंकर :—तो इस ग्राम में आपका परिचय नहीं है ?

पथिक :—ब्राह्मण कुमार ! नहीं तो।

मूलशंकर :—[सादर] तो चलिये, मेरे घर को पवित्र कीजिये आप।

पथिक :—[स्वगत] अहो ! ऐसा सुन्दर शील एवं सौजन्य तो आकस्मिक सम्बन्ध होने पर भी मन को खींच लेते हैं। यह बालक तो महापुरुषों सा विनीत है। अवश्य ही इसका शील अभिजात वंश के समान ही है। क्योंकि :—

"सौजन्य प्रतिकार्यशील विनय प्रख्यात वंशक्रम,
स्नेह प्रांजल भावनादर कथा प्रज्ञान पूर्णाशय।
वाणी सत्य सुधाभरी, रसमयी प्यारी मनोहारिणी
सारेपुण्यसमूहसंभृतगुणव्याख्यानसद्वंशके ॥११॥

मूलशङ्करः–[प्रविश्य] अहो ! सर्वत्रान्वेषिता उपाध्यायाः। साम्प्रतं पूजकस्य गृह प्रविशामि । [विलोक्य] एतद् गहम्, प्रविशामि । अहो ! अनुभूयते विजयामहोत्सवानन्दः ! भवतु, विघ्नमुत्पादयामि अथवा अपलप्स्यते वृथारोपिणाऽनेन, अतो न मच्छामि । इत एव तिष्ठामि ।

[इति धर्मशालायाः पथिकाश्रितकोणे व्रजति]

[विलोक्य] अहो ! पथिक इवात्र कोऽपि लक्ष्यते। [विचिन्त्य) भवतु, तावत्तेन समं वंदेशिकचर्चा विनोदयामि । [पथिकं] भगवन् ! नमस्ते ।

पथिक :–नमस्ते ब्रह्मचारिन् !

मूलशङ्कर :–आर्य ! पथिकमित्र मन्ये भवन्तम् ।

पथिक :–प्रम्यगवबुद्धम् ।

मूलशङ्करः–किमभिधानमलङ्क्रियते तत्र भवद्भिः ?

पथिकः–चन्द्रशेखर इति ।

मूलशंकरः–किं नास्ति तदस्मिन्ग्रामे परिचयः श्रीमतः ?

पथिकः–नहि विप्रबटो !

मूलशंकरः–[सप्रश्रयम्] तन्मदीयं गृहं पावयिष्यन्ति भवन्तः ?

पथिक.–[स्वगतं] अहो ! ईदृशं शीलं सौजन्यं च आकस्मिकेनाऽपि सम्बन्धेन मनः समाकर्षति महापुरुषविनयोचितोऽयं बालः नूनं अभिजातवंशोचितं शीलमस्य । तथा हि–

"सौजन्यं शुभशीलपेशलतरं मानोन्नता नम्रता
स्नेहः सुन्दरभावनादरकथोपन्यासपूर्वः सदा ।
वाणी सत्यसुधाचिता रसमयी चेतश्चमत्कारिणी
सर्वं पुण्यनिकायसंभृतगुणं धन्यं कुलं शंसति" ॥१२॥

[प्रकाश में] प्रियवर ! यह भी स्थान अच्छा है।

मूलशंकर :—क्यों बहका रहे हैं आप !

पथिक :—इसमें बहकाने की बात कहाँ है ? मैं तो तुम्हारे प्रेमार्द्र व्यवहार से ही तृप्त हो गया हूं।

मूलशंकर :—अच्छा अभी मैं उपाध्याय जी के पास जा रहा हूं। फिर आपके दर्शन करूँगा।

[चला जाता है]

मूलशंकर :—[पास में जाकर] गुरुदेव ! नमस्ते !

उपाध्याय :—क्यों मूलशंकर ! पुत्र ! कैसे आये ?

पुजारी :—[बीच में] विजया-पान के लिए। क्या गुरु शिष्य को छोड़ देता है ?

मूलशंकर :—महाब्राह्मण ! यह सब आपको समर्पित है। गुरुवर्य नगर श्रेष्ठी को निमन्त्रण देकर घर चले गये हैं।

पुजारी :--जय जय विजये ! अजी उपाध्याय जी ! गरीब को न भुला देना। [भाँग पीता है]

मूलशंकर : —गुरुदेव ! सन्ध्यावन्दन के लिए जा रहा हूं।

उपाध्याय :—[भाँग का नशा दिखाता हुआ] मू . ल... शं...क...र ! ...तू कहाँ... जा . रहा ?

मूलशंकर :—भांग ने गुरु जी को घर दबोचा है तो अब इनके सामने नहीं रहूंगा, [इतना कहकर पथिक को लेकर चला गया]

उपाध्याय :—पुजारीजी ! आप...पाठशाला आ...इ...ये...मैं ले.. ता.. हूं ।

पुजारी :—हाँ, हां, विना अभ्यास के बेचारे गुरु जी का बुरा हाल हो गया, मैं भी घर चलूं और शिवपूजा की सज्जा करलूँ, जय ! जय ! विजया देवी तेरी जय हो !

[सब चले गये]

[प्रकाश] भद्र ! समीचीनमिदं स्थानम् ।

मूलशंकरः—किं विकल्प्यते श्रीमता ?

पथिकः—कुतो विकल्पनावकाशः, तव प्रणयरसेनैवाप्यायितोऽहम्

मूलशंकरः—अस्तु, सम्प्रति उपाध्यायसमीपं गच्छामि, तत् युष्मद्दर्शनं विधास्यामि । [इति गच्छति]

मूलशंकरः—[उपगम्य] उपाध्याय ! नमस्ते ।

उपाध्यायः—कथं मूलशङ्करः ! कथामागतोऽसि वत्स !

पूजारिः—[मध्ये] विजयापानाय, ननु गुरुणा शिष्यो न परिहीयते ।

मूलशङ्करः—महाब्राह्मण ! समर्पितं भवेत सर्वम् । गुरो ! नगर श्रेठी निमन्त्रणं दत्त्वा गृहं गतः ।

पूजकः—जय विजयादेवी ! जय ! भो ! उपाध्याम ! न विस्म व्योऽयं दीनः ! [इति विजयां पिबति]

मूलशङ्करः– गुरो ! सन्ध्यावन्दनाय गच्छामि ।

उपाध्यायः [विजयामदं दर्शयित्वा] मू ···· लश ··· ङ्··· · ····क······क····· र ! त्व · त्वया क्व क्व···गम्यते ?

मूलशंकरः—आलिङ्गितः खलु विजयया गुरुः । तन्न स्थातव् मस्याग्रे ।

[इति पथिकमादाय निष्क्रान्तः]

उपाध्यायः—पूजक ! भ ····भ ···· वता······पा··· पा··· पाठशालाय ·····मा ··· मा···ग ···ग······न्त ··· व्य··· म् ·····। अहं ·····ग ·····ग··· च्छामि ।

पूजकः—अरे ! अनभ्यासादुल्लङ्घितो विजयया वराकः; अहमा गृहं गत्वा शिवपूजनसामग्रीं संपादयामि । जय ! जय विजयादेवि जय ! !

[इति निष्क्रान्ताः सर्व]

[स्थल टंकारा का शिवालय; समय : शिवरात्रि की रात]

[चारों ओर देखते हुए पथिक प्रवेश करता है]

पथिक :—[चारों ओर देखकर] ओहो ! बहुत बढ़िया काम कर दिया है इस मूलशंकर ने; जो शिवालय में मेरे निवास की व्यवस्था कर दी है। अच्छा तो चलूँ बाहर मण्डप के चबूतरे पर बैठ जाऊँ ! नहीं तो जनता की भीड़ बढ़ जायेगी। [बाहर जाकर] हाय रे ! कितनी काली रात है ? फैला हुआ अपना हाथ भी नहीं सूझता ! [सोचकर] ओहो !

'ये खद्योतजले परन्तु इनसे क्या ध्वान्तका नाश हो,
ये नक्षत्र अशक्त हैं तिमिर के विध्वंस में सर्वदा।
ये भी तीक्ष्ण करांशुसूयँ जबलों भूमिध्र कोनिम्नता,
होता ना गत पद्म फुल्लकरता ज्योंहीं न ये सत्वर ॥१॥

[अच्छा तो यहीं पर बैठ जाऊँ]

[इतने में भारी भीड़ और पिता के साथ मूलशंकर प्रविष्ट होता है]

[प्रवेश करके]

सब :—हर हर महादेव ! हर शम्भो ! हर कैलाशपते ! शिवशङ्कर हर हर !

[तब सभी शिवलिङ्ग को नमन करते हैं]

करसनजी :—मूलशंकर ! पुत्र प्रणाम करो देवाधिदेव भगवान् भवानीशङ्कर को, ये ही हैं सब भय हारी और मङ्गलकारी देव !

'ब्रह्मा वर्जित शम्भु ने जगत् का निर्माण छोड़ा स्वयं,
श्रौतस्मार्तविगीत विश्वसबका जो बीजहेतु स्वयम्।
जो सम्बद्ध युत प्रकर्ष बलवान् चित्तेन्द्रियों से परे,
सूर्याकारजलस्थबिम्ब समभा ध्याये महादेव को ॥२॥

[स्थलं, टङ्काराशिवालयः, समयः शिवरात्र्याः]

[ततः प्रविशति पथिकः सर्वत्रावलोकयन्]

पथिकः—[सर्वतो विलोक्य] अहो ! समीचीनं व्यवसितं मूलशङ्करेण शिवालये वासं मम कल्पयता, भवतु, इतो बहिर्गत्वा मण्डपं श्रये चत्वरम्, नोचेत् नागरिकाणां भविता संबाधः [बहिर्गत्वा] अहो ! भीषणं निशाकरं तमः प्रसारितः स्वकरोऽपि न दृश्यते ।

[निर्वर्ण्य] अहो !

खद्योतालिरिह प्रकाशमयते नश्येत्तमः किं तया
नक्षत्राणि न सन्ति केवलमलं छेत्तुं तमोवल्लरीम् ।
चञ्चद्रश्मि खराङ्कुशेन परितो नीचीकृतोर्वीधर,
यावन्नोदयते विकासितजगन्मार्तण्डबिम्बं क्षणात् ॥१॥

[भवतु इत एव आसनपरिग्रहं करोमि]

[ततः प्रविशति जनसंदोहेन समं सजनकः मूलशंकरः]

[प्रविश्य]

सर्वे:—हर हर महादेव ! हर, शम्भो ! हर ! कैलासपते ! शिव, शङ्कर ! हर !

[ततः सर्वे प्रणमन्ति]

करसनजी:—मूलशंकर ! वत्स, प्रणम भगवन्तं भवभयहारिणं मङ्गलकारिणं भवानीरमणम् ।

यः सृष्टिं न ससर्ज वर्जितविधिर्ब्रह्माण्डभाण्डोदरी
बीजं किन्तु तदादिकारणकलावल्ल्याः श्रुतिर्यं जगौ ।
यः सम्बन्धमवापितोऽपि करणैर्भिन्नोऽतिमात्रप्रभ-
स्तोयेबिम्बमिवारुणस्य हृदये तं शङ्करं धीमहि ॥२॥

[मूलशंकर प्रणाम करता है]

मूलशंकर :-पिताजी ! आज के इस उपवास और व्रत से मुझे क्या लाभ होगा ?

करसनजी:—पुत्र ! क्या कहूं ! सुन ले तो फिर !

'अनेक उपवासों से भक्तिमान् मानवोत्तम ।
शम्भु के उपवासों से भक्तिमुक्ति फलार्जिता' ॥३॥

[मूलशकर कुतूहल पूर्वक देखता है]

पथिक—[स्वगत] वाहरे ! पिता की वात सुनकर भी तो यह किशोर देव नमब करने में कुछ भी तत्परता नहीं दिखा रहा । तभी तो:—

'पूजाविनष्ट महदाश शुभान्तराल,
शम्भुपदस्थ कर मौक्तिक माल शोभी ।
भक्ति प्रसादन परा सरणि प्रशस्ता,
तुल्या, निमीलित शुभाक्षिशिशुत्व बोधी ।
ध्यानस्थ बालक महा मुदमोदकारी,
साक्षात् यही प्रकट है शुचि शांति पूत' ॥४॥

अहो ! कितना सद्भाव और कुतूहल है इसमें—

'ज्ञानाज्ञान विवेक शून्यमन से प्राप्त पर्याप्त पर्यावृता,
शुद्धात्यन्त कला शुभाविभुमयी बाल्यत्व चिताह्लदा ।
चन्द्रांकस्थकलासमान शिशुओं का मान जो दीखता,
छायातुल्य पुरातनी फलयुत प्राकर्षता-वाप्ति में ।
संस्काराश्रित कर्म मात्र नरके प्रत्यक्ष वे आगये,
प्राय: यह मन की दशा नमन में विघ्नप्रदा आज है' ॥५॥

वैसे तो सभी ने भगवान् आशुतोष महादेव बावा की पूजा कर ही ली है । सब स्थान भी स्वच्छ बना दिया है तो मैं भी यहीं बैठे जाता हूं ।

[पूजा समाप्ति के बाद एकांकी]

[मूलशङ्करः प्रणमति]

मूलशङ्करः–तात ! अद्य कृतेन विधिनोपवासेन किं मे साध्यं भविष्यति ?

करसनजीः–वत्स ! किं वर्णयामि ? शृणु !

अनेनैकोपवासेन मानवो भक्तिसंयुतः ।
भक्तिं मुक्तिं सदा शम्भोरुपवासमुपार्जति ॥३॥

[मूलशङ्करः सकौतुकं वीक्षते]

पथिकः–[स्वगतं] अहो ! बालकौतुकम् ! जनकेन निवेदितोऽपि नमनाय न मनाङ्मनो दर्शयति । तथा हि–

समर्चाविद्धाशः सुभगहृदयः शङ्करमनाः,
करे मालां मुक्तेः सरणिमिव भक्तिप्रणयिनीम् ।
दधानो ध्यानेन स्तिमितनयनः शैशववशा–
दयंसाक्षाच्छान्तिस्नपित इव माङ्गल्यमहिमा ॥४॥

अहो, निरतिशयं सौहार्दं कुतूहलं च–

ज्ञानाज्ञानविवेकवृत्तिरहिता प्राप्तेऽप्यपर्यावृता,
शुद्धा चन्द्रकलेव शैशववशाद् संविन्मनोनन्दिनी ।
बालानां प्रतिबिंबितेषु सहसा तस्यां पुराकर्मणां
संस्कारेषु यतः पुरातनपरिष्कारान समुज्जृम्भते ॥५॥

भवतु संपादिता समस्तैः सपर्या भगवतः सदाशिवस्य । अहो ! स्थानमपि निखिलैः परिष्कृतम् । भवतु अहमपि तावदिहैव तिष्ठामि ।

[पूजाविजनास्ते एकाकी]

मूलशंकर -(चारों ओर देखकर)

अरे ! यह क्या सभी की आँखे नींद से भर गयी हैं ! सचमुच शिवजी को पा गये हैं ये ! और पिताजी तो कहते थे कि भगवान शिव के दर्शन होंगे, पर वे स्वयं क्यों सो गये हैं ? हाँ, हाँ, यह खूब लड्डू उड़ाने वाला पेटू पुजारी भी तो हाथ पैर फैलाकर कैसे आनन्द से सो रहा है ? कितना प्रगाढ अन्धकार है ? ये तेलहीन दीपक भी सोते हुए इन भक्तों की नासिका के वायु से कैसे काँप रहे हैं ?

क्यों अरे यह पथिक भी तो सो गया है ? क्या ऐसी भक्ति से कल्याण मिलता है ? हैं ! हैं ! कौन खड़खड़ा रहा है यह ? यह तो चूहों की फौज है क्या यह सेना पेटू पुजारी के मालमलीदे मोदक भरी उदर गुहा में आहार ढूंढ़ने आये हैं ? (नींद जताता हुआ) यह नींद तो मुझे भी सता रही है। क्या सो जाऊं मैं भी; नहीं। शिवरात्रि का उपवास टूट जायेगा [शिवलिंग को देखकर] भगवान् ! देवाधिदेव ! परमेश्वर ! कर दो कृपा दर्शन दान से कृतार्थ कर दो शिव शम्भो ! क्या जाता है तेरा भोले ! मुझे दे दे मुक्ति ! इस बालक पर कृपा कर दो विभो ! मैं अकिञ्चन हूं तेरा शरणागत हूं कैलास पते ! मेरी रक्षा कर दो दीनबन्धो !

'बच्चा हो यदि हो युवागुरुजन प्रज्ञानवान् सज्जन,
छोटा हो वरमुग्ध मंजुलसुधी हो वंचक व्याल-सा।
या हो सूर्य समान तेज जग के आलोककारी शुभ,
हे ! हे! ईश्वरसर्वतुल्यवतही. सर्वेशता है कहां ॥१७॥

प्रभो ! जगत्पते ! शङ्कर भोले! प्रसन्न हो जाओ देव ! ध्यान करता है तभी एक चूहा शिव लिङ्ग पर चढ़े प्रसाद अक्षतों को खाने लग जाता है। (भक्षण की कुट कुट को सुन कर आश्चर्य पूर्वक देखकर) हाय रे ! यह क्या ? जड़ जङ्गम के स्वामी महादेव जी के ऊपर ये चूहे की लातें ?

मूलशंकरः—(सर्वतो विलोक्य)

अहो ! किमिदं, सर्वेऽपि निद्राविघूर्णितनयनाः, सत्यं शिवसामीप्यमुपागताः, ननु तातेन प्रतिपादितं तावत् भविता भवसन्निधिः तत्कथं स्वयमपि निद्राति ? अहो, एष पूजकोऽपि कुक्षिंभरिः मोदकसोदरोदरः प्रसार्य हस्तपादं प्रसरति । भीषणं तमः, एते प्रदीपा अपि निःस्नेहा पूजकनासामुखश्वासानिलप्रेङ्खिताः कम्पन्ते, कथं पथिकेनापि निद्रावशभूयं प्राप्तम् ? ननु कथमीदृशी भक्तिः श्रेयः साधयति ? अहो, एतत् किं ? केन खटखटाय्यते ? अहो, मूषकसमूहः किमेष पूजकस्योदरकुहरे पतित्वा निजमाहारान्वेषणं कुरुते, निद्रां (नाटयन्) अहो एषा मामपि बाधते निद्रा, किं करोमि शयनम् ? न हि उपवासभङ्गः स्यात् [शिवलिङ्गं पश्यति] भगवन् । चन्द्रशेखर ! देहि दर्शनम्, विधेहि करुणाम् ! वितर सायुज्यं ! प्रसीद परमेशान ! पाहि प्रभो ! मां शिशुं मा निजकरुणया वञ्चितं कुरुष्व,

बालो वा यदि वा युवा गुरुतरः पूज्योऽथवा सज्जनो
वर्षीयानपि मुग्धमञ्जुपमतिर्वामाथवा वञ्चकः ।
किंवा पङ्कजबान्धवस्य भुवनाभासाय भानोरिव,
त्वं ते जगदीश ! तुल्यमथवा सर्वेशता ते कुतः ॥६॥

प्रभो ! जगत्पते ! शङ्कर ! प्रसीद, [इति ध्यानं करोति, तदा कश्चिन्मूषकः शिवलिङ्गोपरिस्थितान् तण्डुलान् खादति, तस्य ध्वनिं श्रुत्वा साश्चर्यं दृष्ट्वा] हन्त, भो ! एतत्, किं ? चराचररक्षणक्षमस्य शिवस्योपरि मूषकपादाहतिः ?

हैं, जो चूहे शिवलिङ्ग पर सवार होकर प्रसाद भक्षण करते हैं, उन्हें कैसे हटायेंगे शिव शंकर ? छोड़ दे ऐसी व्यर्थ की बातें।

मूलशंकर—पिताजी ! क्या सदा ऐसा ही होता है, और भोले बाबा कुछ भी नहीं कहते हैं इन्हें ?

करसनजी—पुत्र ! यह जड़ पाषाण प्रतिमा कुछ थोड़े ही करती है। इसलिए व्यर्थ का सोच मत कर !

मूलशंकर—पूजनीय ! इस समय तो मेरा मन संकल्प विकल्प मयी बुद्धि का शिकार हो चुका है। आप सुनते हैं न, यह सर्वव्यापक परमात्मा नहीं है ; हमें ठगा जा रहा है। यह स्वयं की तो रक्षा नहीं कर सकता। परमेश्वर तो कोई और ही है, उसी की उपासना करनी चाहिये; यह सद्विचार इस मूर्ति मय शिव की दुर्दशा से उत्पन्न हो रहा है मुझ में।

करसनजी—नहीं नहीं पुत्र ! हम कोई इसी प्रतिमा की पूजा थोड़े ही करते हैं? हम तो भवानी पति, कामदेव भस्मकारी, त्रिपुरासुरनाशी, पिनाक परिशोभी, कैलासवासी शंकर

मूलशङ्करः—पूज्य ! सांम्प्रतं मानसं मम विकल्पनाकलतिशेमुषीम्। आकर्णन्तु भवन्तः। नायं भगवान् परमेश्वरः, सर्वथा वयं वञ्चिताः, यः स्वमपि न रक्षति। अस्ति कोऽपि परः परमात्मा स एष सेव्यः। कृतं पाषाणपिण्डमर्दनेन।

पिताः—ननु प्रिय वत्स ! नास्माभिरियमेव प्रतिमा सेव्यते, किन्तु भवानीरमणः स्मरदहनकरः त्रिपुरासुरविमर्दनपिनाकपरिशोभमानः कैलासवासी शङ्करः सेव्यते। यः श्रूयते पुराणेषु जेता यमस्य; नेता भुवनस्य; विनेता रक्षसाम्; प्रणेता श्रेयसाम्; भर्ता भवस्य; कर्ता जगताम्; हर्ता दुरितानाम् स एव सेव्यते वत्स !

मूलशङ्करः-पूज्यतात ! ततः कथं न स आविर्भवति गृहीत्वा भयंकरं त्रिशूलम् ?

पिता—ननु आविर्भवति भगवान् भक्त्या।

मूलशङ्करः—(विहस्य) एवं, यथा युष्माभिः कृता भक्तिरद्य ?

पिताः—[लज्जामभिनीय] वत्स ! दुर्लभो महिमा भवस्य; न जानाति कोऽपि तस्य माहात्म्यम्, इति कृत्वा जनैरुपास्यते पाषाणखण्डे प्रभुः मा विकल्पं विधेहि।

मूलशङ्करः—तात ! किमिदं तत्त्वं नावधारयामि ?

[इति विचिन्तयति]

पिताः—[स्वगतम्] किमिदं शृणोमि ? अहो, एतादृशं वाक्यं पुरा न निःसृतं वत्सस्य मुखात्। वचोऽपि विशदं सर्वथा सत्यमिव प्रतिभाति।

की पूजा करते हैं। पुराणों में जिस देवाधिदेव को यम विजेता के रूप में, चराचर के अधिपति के रूप में, राक्षसों के विजयी श्रेयस के सर्जक, भव के स्वामी, लोक-लोकान्तरों के विधाता, दुःख दुरितों के विनाशक शिवशंकर को ही तो पूजा की जाती है बेटे !

मूलशंकर—तो पिता जी ! वह त्रिशूलधारी महादेव प्रकट क्यों नहीं हो जाता ?

करसनजी—भक्ति भाव से प्रकट हुआ करता है वह शिव कैलास पति।

मूलशंकर—(हंसता हुआ) ऐसी ही भक्ति से जैसी आपने की थी अभी ?

करसनजी—(लजा करके) वत्स ! उस भवानी पति की महिमा असीम है; कौन जान पाया है इसकी माया को। तभी तो कोटि कोटिजन रहस्यमय देव की पाषाण मूर्ति के रूप में पूजा किया करते हैं। इसमें विकल्प करना पाप है पाप !

मूलशंकर – पिताजी ! मेरी बुद्धि में तो कुछ नहीं आ रहा है।

[विचार करने लग जाता है]

करसनजी—(मन में विचारता हुआ) मैं यह क्या सुन रहा हूं ? ऐसी बात आज तक पुत्र के मुख से कभी नहीं निकली थी। और बात भी स्पष्ट और सत्य लग रही है।

मूलशङ्करः—[तातं प्रति] पूज्य ! किमस्यैस्व पाषाणस्य विहित पूजने प्रसीदति परेशः, नान्यस्य ?

पिताः—अथ किम् ? एतल्लिङ्ग माहात्म्यमाविर्भावयति भगवतः, पुनरपि कथं शङ्काकुलः ?

मूलशङ्करः—आर्य ! न मे मानसशुद्धिः, न केवलं महिमानं द्योतयति पिष्टपाषाणखण्डः– शृण्वन्तु भवन्तः—

"सूर्याचन्द्रमसाविमौ भगवती विश्वम्भरा भारती
स्वःपीयूषकराणि कालकलनज्योतींषि दिङ्मण्डलम् ।
शैलाः किञ्च निकुञ्जपुञ्जमधुरा नद्यस्तथा केतवः,
सर्वं न प्रथयत्यहो भगवतो माहात्म्यमीशस्य किम् ?।८।

पिताः–बाल ! सत्यं, तथापि न जानासि शास्त्ररहस्यं. खलु खलत्व शिवविडम्बना । (स्वगतं) अहो ! नूतनं तेजः, अस्य नयनयो शैशवादज्ञातशास्त्ररहस्योऽपि विमलां प्रतिभां विस्तारयति। (प्रकाशं) वत्स ! सत्यमिदं तथापि लोककथेयं यद् भगवान् पाषाणप्रतिमापूजनेन प्रसीदति ।

मूलशंकरः–भवन्तोऽपि तथा कुर्वन्ति ? न मेऽन्तरात्मा प्रसीदति यतः—

हैं, जो चूहे शिवलिङ्ग पर सवार होकर प्रसाद भक्षण करते हैं, उन्हें कैसे हटायेंगे शिव शंकर ? छोड़ दे ऐसी व्यर्थ की बातें।

मूलशंकर—पिताजी ! क्या सदा ऐसा ही होता है, और भोले बाबा कुछ भी नहीं कहते हैं इन्हें ?

करसनजी—पुत्र ! यह जड़ पाषाण प्रतिमा कुछ थोड़े ही करती है। इसलिए व्यर्थ का सोच मत कर !

मूलशंकर—पूजनीय ! इस समय तो मेरा मन संकल्प विकल्प मयी बुद्धि का शिकार हो चुका है। आप सुनते हैं न, यह सर्वव्यापक परमात्मा नहीं है ; हमें ठगा जा रहा है। यह स्वयं की तो रक्षा नहीं कर सकता। परमेश्वर तो कोई और ही है, उसी की उपासना करनी चाहिये ; यह सद्विचार इस मूर्ति मय शिव की दुर्दशा से उत्पन्न हो रहा है मुझ में।

करसनजी—नहीं नहीं पुत्र ! हम कोई इसी प्रतिमा की पूजा थोड़े ही करते हैं? हम तो भवानी पति, कामदेव भस्मकारी, त्रिपुरासुरनाशी, पिनाक परिशोभी, कैलासवासी शंकर

मूलशङ्करः—पूज्य ! साम्प्रतं मानसं मम विकल्पनाकलतिशेमुषीम्। आकर्णन्तु भवन्तः। नायं भगवान् परमेश्वरः, सर्वथा वयं वञ्चिताः, यः स्वमपि न रक्षति। अस्ति कोऽपि परः परमात्मा स एष सेव्यः। कृतं पाषाणपिण्डमर्दनेन।

पिताः—ननु प्रिय वत्स ! नास्माभिरियमेव प्रतिमा सेव्यते, किन्तु भवानीरमणः स्मरदहनकरः त्रिपुरासुरविमर्दनपिनाकपरिशोभमानः कैलासवासी शङ्करः सेव्यते। यः श्रूयते पुराणेषु जेता यमस्य; नेता भुवनस्य; विनेता रक्षसाम्; प्रणेता श्रेयसाम्; भर्ता भवस्य; कर्ता जगताम्; हर्ता दुरितानाम् स एष सेव्यते वत्स !

मूलशङ्करः—पूज्यतात ! ततः कथं न स आविर्भवति गृहीत्वा भयंकरं त्रिशूलम् ?

पिता—ननु आविर्भवति भगवान् भक्त्या।

मूलशङ्करः—(विहस्य) एवं, यथा युष्माभिः कृता भक्तिरद्य ?

पिताः—[लज्जामभिनीय] वत्स ! दुर्लभो महिमा भवस्य; न जानाति कोऽपि तस्य माहात्म्यम्, इति कृत्वा जनैरुपास्यते पाषाणखण्डे प्रभुः मा विकल्पं विधेहि।

मूलशङ्करः—तात ! किमिदं तत्त्वं नावधारयामि ?

[इति विचिन्तयति]

पिताः—[स्वगतम्] किमिदं शृणोमि ? अहो, एतादृशं वाक्यं पुरा न निःसृतं वत्सस्य मुखात्। वचोऽपि विशदं सर्वथा सत्यमिव प्रतिभाति।

की पूजा करते हैं। पुराणों में जिस देवाधिदेव को यम विजेता के रूप में, चराचर के अधिपति के रूप में, राक्षसों के विजयी श्रेयस के सर्जक, भव के स्वामी, लोक-लोकान्तरों के विधाता, दुःख दुरितों के विनाशक शिवशकर को ही तो पूजा की जाती है बेटे !

मूलशंकर—तो पिता जी ! वह त्रिशूलधारी महादेव प्रकट क्यों नहीं हो जाता ?

करसनजी—भक्ति भाव से प्रकट हुआ करता है वह शिव कैलास पति।

मूलशंकर—(हंसता हुआ) ऐसी ही भक्ति से जैसी आपने की थी अभी ?

करसनजी—(लजा करके) वत्स ! उस भवानी पति की महिमा असीम है; कौन जान पाया है इसकी माया को। तभी तो कोटि कोटिजन रहस्यमय देव की पाषाण मूर्ति के रूप में पूजा किया करते हैं। इसमें विकल्प करना पाप है पाप !

मूलशंकर – पिताजी ! मेरी बुद्धि में तो कुछ नहीं आ रहा है।

[विचार करने लग जाता है]

करसनजी —(मन में विचारता हुआ) मैं यह क्या सुन रहा हूं ? ऐसी बात आज तक पुत्र के मुख से कभी नहीं निकली थी। और बात भी स्पष्ट और सत्य लग रही है।

मूलशङ्करः—[तातं प्रति] पूज्य ! किमस्यैस्व पाषाणस्य विहितं पूजने प्रसीदति परेशः, नान्यस्य ?

पिताः—अथ किम् ? एतल्लिङ्ग माहात्म्यमाविर्भावयति भगवतः, पुनरपि कथं शङ्काकुलः ?

मूलशङ्करः—आर्य ! न मे मानसशुद्धिः, न केवलं महिमानं द्योतयति पिष्टपाषाणखण्डः- शृण्वन्तु भवन्तः—

"सूर्याचन्द्रमसाविमौ भगवती विश्वम्भरा भारती
स्वःपीयूषकराणि कालकलनज्योतींषि दिङ्मण्डलम् ।
शैलाः किञ्च निकुञ्जपुञ्जमधुरा नद्यस्तथा केतवः,
सर्वं न प्रथयत्यहो भगवतो माहात्म्यमीशस्य किम् ?।८॥

पिताः-बाल ! सत्यं, तथापि न जानासि शास्त्ररहस्यं. खलु खलत्वं शिवविडम्बना । (स्वगतं) अहो ! नूतनं तेजः, अस्य नयनयोः शैशवादज्ञातशास्त्ररहस्योऽपि विमलां प्रतिभां विस्तारयति । (प्रकाशं) वत्स ! सत्यमिदं तथापि लोककथेयं यद् भगवान् पाषाणप्रतिमापूजनेन प्रसीदति ।

मूलशंकरः–भवन्तोऽपि तथा कुर्वन्ति ? न मेऽन्तरात्मा प्रसीदति । यत;—

मूलशंकर–[पिता से] पिताजी ! क्या इसी शिलाखण्ड के पूजन से प्रसन्न होते हैं शिव भगवान्, दूसरे के नहीं ?

करसनजी—और क्या ? यही शिव लिङ्ग तो भगवान् शिव के गौरव को प्रकट करता है, तुम्हें फिर भी शंका ने आ घेरा ?

मूलशंकर—पूजनीय ! मेरे मन में इससे शांति नहीं हो रही है। क्या इतना विराट् जगत् भगवान् के गौरव को नहीं बताता—जो यह छोटा सा शिलाखण्ड बता रहा है ?

सुनिये तो—

"सूर्य चन्द्रमा और धरा यह अन्नफलों फूलों वाली,
निज अमृतकी किरणोंसे भी प्रभुकी कीर्ति सुनाने वाली।
ये असख्य ग्रहउपग्रह सारे ज्योतिर्मयदिग्भागविशाल,
हिममण्डित पर्वत की चोटी वनउपवन सरितासरताल।
उत्तालतरङ्गों से उद्वेलितसागर, मरुभूमि, मरुबाग,
हैं सशक्त परमेश्वर की महिमा-भाव गुंजानेराग" ॥८॥

करसनजी—पुत्र ! बात तो ठीक है यह पर, तुझे पता नहीं है कि शिव-निन्दा कितनी अशास्त्रीय है और पाप हेतु है ? [मन में] ओहो ! इस बच्चे की आँखों में तो नवीन तीव्र तेज झाँक रहा है। भले ही यह शैशव काल में है और शास्त्रीय रहस्यों से अपरिचित है। [प्रकाश में] वत्स ! तेरी बात बुद्धि में तो आ रही हैं, किन्तु लोक वार्ता यही है कि भगवान् शिव मूर्ति पूजा से भक्तों पर प्रसन्न होते हैं।

मूलशंकर—आप ऐसा करें, किन्तु मेरा अन्तरात्मा तो इससे प्रसन्न नहीं होता। क्योंकि —

"केयं लोककथा यथागमपथप्रासाय पापप्रथा-
न्यासाय श्रितसत्यदैवतपरीहासाय संजृम्भते ।
या वेदाशयवेद्यमद्भुतगुण तत्त्व पर वैभवं
निःशङ्कं ग्रसते घनाघनघटा बिम्ब सुधांशोर्यथा ॥९॥

तातः–[सक्रोधं] वाचाल ! न शृणोषि किमपि ? प्रलापं करोषि? न जानासि मूढ तत्त्वम् ।

(इति ताडयितुं त्वरते, तदा स पथिकः कोलाहलं श्रुत्वा सहसा आगच्छति)

पथिकः–अहो ! कथं जायते कोलाहलः ? [विलोक्य] हन्त ! मूलशङ्करः तातेन सह विवदते । हन्त ! किमेतत् ताडयति तं तातः, कथम् ? [गत्वा] मषय ! भगवन् ! कोऽयं प्रमादः शिशौ ?

तातः—[विलोक्य] ननु, महाभाग ! एष मूढः कथयति, न प्रभुः शिवः शंकरः प्रतिमायाम् !

पथिकः—आर्य ! बाल एष यथास्थित वदति तत्कोऽयं विधिः ? [मूलशङ्करं प्रति] ब्रह्मचारिन् ! क एष विवादः ?

मूलशंकरः—[पथिकं] महोदय ! नास्ति विवादः किन्तु तातात् जानामि सत्यस्य शिवस्य स्वरूपम् !

पथिकः—[स्वगतं] अहो ! ताड्यमानोऽपि बालः नैसर्गिकीं स्वभावशुद्धि न जहाति, सर्वथा महापुरुषोचित कर्म शैशवेऽपि ।

तातः—[मूलशंकरं प्रति] किं निश्चितं त्वया ?

मूलशंकरः—आर्य, तात ! तदेव, अन्यः परमात्मा इति ।

"ऐसी लोककथा अमान्य जग में वेदोक्त जो भी न हो,
पाप प्ररक पुण्य नाश निरता, सत्यार्थ शीला न हो,
वेदार्थ प्रतिपादनाक्षम मति भ्रांतिकरी त्याज्य है
चन्द्रकारपयोदछाद्यभगवन् ! वेदोक्तियाँ मान्य हैं ॥९॥

करसनजी:—[क्रोध से] वाचाल ! तू कुछ नहीं सुनता, व्यर्थ में प्रलाप करता जाता है ! मूर्ख ! शास्त्र रहस्य क्या जानता है तू ?

[मारना चाहता है कि तभी कोलाहल सुनकर पथिक आ जाता है]

पथिक:—यह होहल्ला क्यों हो रहा है ? [देखकर] हायरे ! मूलशंकर का पिता के साथ झगड़ा हो रहा है। अरे ! पिता तो इसे मारने भी लगा। क्या बात होगी ! [पास में जाकर]-महाराज ! क्षमा कीजिये न ! क्या गल्ती हो गयी है इससे।

करसनजी:—[देखकर] अजी महोदय ! यह मूर्ख कह रहा है कि भगवान् शिव केवल इस पाषाण मूर्ति में नहीं हैं।

पथिक:—भगवन् यह तो ठीक ही कह रहा है। पर यह भी क्या ढग है आपका ? [मूलशंकर से] ब्रह्मचारिन्। क्या विवाद है यह ?

मूलशंकर:—[पथिक से] कोई विवाद नहीं है महाराज। मैं तो पिताजी से शिव का वास्तविक रूप जानना चाहता हूं।

पथिक:—[मन में] देखो न, पिटने पर भी यह बालक अपनी स्वाभाविक सूझबूझ को नहीं छोड़ :पाया। बचपन में भी इसमें महापुरुषों के समान लक्षण दीख रहे हैं।

करसनजी—[मूलशंकर से] बोल, क्या सोचा है तूने !

मूलशकर—पूजनीय पिता श्री ! यही कि मूर्ति से भिन्न ही परमात्मा है !!

तातः—आः अद्यापि न जहासि दुराग्रहम् ? पुराणगीतः स शिवः स्पर्ध्यते त्वया, मूढ ! शृणु—

"शुद्धे जगत्साक्षिणि देवदेवे
संविन्मनोऽगम्यनिसर्गतत्त्वे ।
केषां प्रमाणं विमते परस्मिन्—
स्वभावभूयानवबोधमास्ते ॥१०॥

पथिकः—ननु, उन्मदायितमनेन । सर्वथा क्रोधेन परित्यक्तं सामञ्जस्यम् [प्रकाश] महाराज, भूदेव ! किमेव प्रतिपाद्यते भवता ?

"देवे जगत्कर्मकलापसूत्रे
विशिष्य सशासितरि प्रसिद्ध ।
अशेषमाङ्गल्यमहर्षिगीता
श्रुतिः प्रमाणं परमेकमास्ते ॥११॥

अथवा श्रुतिप्रमाणमन्तरेण क्वावकाशः पुराणस्य ? [मूलशङ्करं प्रति] बाल ! त्वमपि निजाग्रहं विहाय स्वस्थीभूयाः ।

मूलशंकरः—महाभाग ! नास्ति दुराग्रहः किन्तु सत्यं ब्रवीमि । यतः —।

तातः —मूढ ! पुनरपि वाचालतां वहसि ? गच्छ गृहं, मा कलुषीकुरु मन्दिरमेतद्भवस्य ।

"गुरोरनुज्ञाऽनवधानमंहः
प्रधानानिन्दाश्रवणं पुरारेः ।
दुरात्मनां संगतिरात्मवादः
सतां हि चेतः कलुषीकरोति ॥१२॥

पथिकः—महाराज ! क्षमा विधीयताम्, एवं प्रभातप्राया विभावरी । पश्य—

ब्रह्मचारी को नमस्ते करता हुआ दूर चला गया और आँखों से ओझल हो गया। [सब पूजा करने लगते हैं]

मूलशंकर—अच्छा, भले ही ये सब पाषाण पूजा करें। हाय रे ! विद्वानों को भी कितना मोह है इस पूजा का ? रहस्य एवं सत्य जानते हुये भी तो कहाँ छोड़ते हैं परम्परागत अभीष्ट लोकाचार को ? ओहो ! सर्वत्र अव्यवस्था हो रही है, कौन श्रद्धा करायेगा सत्यार्थ पर ? अब कोई बात नहीं, वह पथिक महाशय तो चला गया है। यह सिद्धपुर नाम से मन मेरा आनन्द से भर-भर जाता है, लगता है कि भाग्य से यह नाम फलवान् होगा। (देखकर) यह घण्टा घड़ियाल का सम्मिलित शब्द कानों के पर्दे फाड़े डालता है। हाय रे—

"जो ईश विश्व रचना नियमानुकूल,
कर्ता अघामघफल-प्रसभ-प्रदाता।
वाणी अगम्य असमान भवार्थता से,
वोही महासुगुरु-गम्य सुबोधिता से।
ऐसा अलौकिक विभु प्रतिमा-निबद्ध,
श्रुत्यादि रुद्ध लघु बुद्धि जना विरुद्ध।
ओहो ! सिद्धपुर ! कब देखूंगा तुझे" ॥१५॥

(सोचकर) हैं, कौन दे रहा है मुझे प्रेरणा मनोरथ पूर्ति के लिए ? लग रहा है कि मेरी मनोरथ सिद्धि होकर रहेगी।

मेरे पिता कुपित हों तब भी न चिन्ता,
माता अनादर करे फिर भी न चिन्ता।
लोकोक्तियां फलवती मम गर्हणा से,
हूंगा न सत्य पथ से चलितान्तरात्मा ॥१६॥

(इस प्रकार कहकर सबके साथ मन्दिर से बाहर चला जाता है)

इति शिवरात्रि उत्सव नामक
प्रथम अंक समाप्त

॥ ओ३म् ॥

द्वितीयोऽङ्कः

तमसो मा ज्योतिर्गमय

[स्थानं सिद्धपुरम्, प्रभातसमयः, गुणेन्दुः विद्यार्थिनश्च]

गुणेन्दु :—(प्रविश्य) हन्त भोः फलिताः मे मनोरथसिद्धिः, यद्यपि दुःखाकरं विदेशाश्रयणं, तथापि निर्यन्त्रण स्वातन्त्र्यं महतीं प्रीतिं पुष्णाति, विशेषतः सरस्वतीसमाराधनं न विदेशव्यासङ्गमन्तरेण सदनैकलालितस्य कूपकूर्मकल्पस्य संजायटीति। मया हि नाम समागत्य स्थानेस्मिन् किं किं नानुभूतं, किं किं नो दृष्टमदृष्टचरम्, इदमपि पुनराश्चर्यं यन्मदीयं बालचाञ्चल्यमपि प्रयातमिव मन्ये महानुभावसंसर्गात्—अहो! विदेशाश्रयेण गरीयसी गुणपरिपाटी प्रादुर्भवति—

"स्वातन्त्र्यं परिवर्धते सहधिया स्वच्छंदसंचारतो
वैशद्यं मतिरेति विश्वकलनाव्यापारसंमिश्रिता।
औद्धत्यं व्रजतीव निःस्पृहतया सारः स्वरः स्वयोगाश्रयः
सारासारविवेचनाचतुरिमा सर्वाङ्गमालिङ्गति ॥१॥

॥ ओ३म् ॥

द्वितीयोऽङ्कः

यवनिका पतन

समय—प्रभात वेला, स्थान—सिद्धपुर, विद्यार्थियों के साथ में गुणेन्दु)

गुणेन्दु : (प्रवेशकरके) ओहो ! मेरी मनोरथ की सिद्धि तो हो गई है। भले ही विदेशों में निवास से दुःख मिलता है, तो भी, नियन्त्रित स्वतन्त्रता से बड़ी सुखदायिनी होती है। और विशेषकर तो सरस्वती की आराधना, बिना विदेश में रहे, घर के अशान्त वातावरण में कहां होती है ? इस स्थान पर आकर मुझे क्या क्या अनुभव नहीं हुए ? मैंने यहां पर क्या क्या नहीं देखा ? और तो और, महानुभाव गुरुजनों के सम्पर्क से मेरे बचपन की चञ्चलता भी जाती रही है, निस्सन्देह विदेश से ही मनुष्यों में गुणों का प्रादुर्भाव होता है—

"स्वातन्त्र्य भाव बढ़ता सह बुद्धियों से,
स्वच्छन्दता विशदता भर वाहिनी हो।
बुद्धि प्रगल्भ बनती भवकार्य मिश्रा,
उद्दण्डता न रहती निज लम्बना धी,
होती समस्त गुण हैं परदेश वासे,
चातुर्य तत्व सब संस्थित हैं इसी में ॥१॥

आदिष्टोऽस्मि मातुलेन वैदविद्यालयं गन्तुम् । अद्य प्रातरेव तत्र गत्वा मुख्याधिकारिण: सांनिधि: कर्तव्य: । तत् क्व भविष्यति वेदविद्यालयः ? (सर्वतो विलोक्य) अहा ! हृदयानन्दसन्दोह-हर्षिणी प्रभातकमनीयता सिद्धपुरस्य !! अहो ! मोदते मानसं मनोमोहिनीमुद्वीक्ष्य वासरसुषमां सरस्वतीतीर्थस्य, ननु पश्यामि किं रामणीयकम् । [विचार्य] नेदं समुचितम्, पुन: समागत्य नयनगोचरी करिष्यामि समस्तम्(परिक्रम्य) हन्त भो: ! अयमेव विद्यालयस्य पन्था: । तथा हि व्रजन्ति यथाऽनेन त्वरितगतयः स्नानशीलाः सुरभिचन्दनकलिततिलकक्रिया ब्रह्मचारिणः—

"एते बालकुसूहलैकवशिनः शास्त्रस्पृहामञ्जुला
हस्तन्यस्तविभक्तपुस्तकचयाः श्रीशारदासेविनः ।
ओंकारं रसना, मनःपरतरं ज्योतिर्वपुःशीलतां
येषामाश्रयते निसर्गमधुरं पुण्यार्जवं शेमुषी" ॥२॥

अहो ! अमीषां विद्याव्यासङ्गः—

"अमी विशुद्धाशयमावहन्तः
स्वप्नेऽपि सत्यागममालपन्तः ।
जानन्ति तत्त्वं न पर कदाचित्
सरस्वतीसेवनमन्तरेण ॥३॥

भवतु, आह्वयामि छात्रान् । भो भो: ! विद्यार्थिन: ! समादिशन्तु वेदविद्यालयस्य पन्थानम् ।

(सर्वे प्रविशन्ति)

एकः—किं न पश्यसि ? अयमेव मार्गः ।

द्वितीयः—अये ब्रह्मबटुरिव लक्ष्यते ।

गुणेन्दु :—सखे ! अहमपि विद्यालयेऽध्ये तु समागतः । तत्र
क्वास्ति युष्माकं मुख्यसंपादक: ?

मामाजी ने मुझे वेद विद्यालय में पठन के लिए कहा है। अभी प्रातः काल ही मुख्याधिकारी के निकट जाऊँगा। कहाँ पर होगा यह वेदविद्यालय (चारों ओर देखकर) यह सिद्धपुर भी कितना मनोहर हो जाता है पुनीत प्रभात बेला में ? इस सरस्वती तीर्थ की दिनोदय काल में बढ़ती हुई मञ्जुल सुन्दरता कितनी कमनीय है ? पर देखूंगा तो सही इस स्थान में क्या-क्या सुन्दरता है ? (सोचकर) यह ठीक नहीं है पुनः आकर देखूँगा इसको। (परिक्रमा करके) यही तो विद्यालय मार्ग तभी तो इसी मार्ग से चले जा रहे हैं ये त्वरित गति शील लिप्त, सुगन्धित चन्दन मूर्धा स्नान करके लौटने वाले ये ब्रह्मचारी—

"ये बालवृन्द, शिशुखेल निसर्ग बद्ध,
शास्त्र स्पृहालु कर बीत समस्त पाठ्य।
सारस्वतप्रथित भक्ति गुरु प्रियाढ्य,
ओंकार पाठन पर प्रकटात्म बोध।
सज्ज्ञान दीप बहुशोभित पुष्ट देही,
बुद्धि प्रगल्भ इनसे परमार्थ वर्त्ती ॥२॥

ओ हो ! कितना प्रेम है विद्या के लिए इनमें !

"ये छात्र शुद्धाशय पूर्ण चेता,
न स्वप्न में सत्यविरुद्ध वक्ता।
न जानते सार हैं ये कदाचित,
सरस्वती सेवन छोड़ अन्यत् ॥३॥

अच्छा, इन छात्रों से पूछ देखूं। अरे ! अरे ! विद्यार्थियो ! वेदविद्यालय का मार्ग बता दीजिये।

(सब प्रवेश करते हैं)

प्रथम—क्या नहीं देखते, यही तो है मार्ग !

द्वितीय—यह तो ब्राह्मण पुत्र सा लगता है।

गुणेन्दु—मित्र ! मैं भी विद्यालय में अध्ययन करने आया हूं। बताइये कहां हैं आपके मुख्याध्यापक ?

एक:—अरे ! अपेहि, अपेहि पठितं त्वया ! न लक्ष्यते ते पुनरावृत्ति रध्ययनस्य ।

गुणेन्दु :—(सक्रोधं) अरे मूढ़ ! किं असम्बद्धं प्रलपसि ? किं जानासि रे ?

द्वितीय: - (दृष्ट्वा स्वगतं) अये अमर्षण: खल्वेष:, अस्ति च प्रचण्डबाहुदण्डस्तद् यदि चपेटाचपेटि करिष्यति तदा न वयं एकामपि चपेटां सोढुं समर्था: । (प्रकाश) ननु महाभाग ! उपहास: खलु, एहि नयामस्त्वां विद्यालयम् ।

गुणेन्दु:—(स्वगतं) हुं...सम्प्रति समीचीनं सत्योऽयं जनप्रवाद: "चमत्कारेण नमस्कार" इति । (प्रकाशं) भवतु, एष आगच्छामि । (तत: सर्वे विद्यालय गच्छति) । (तत: प्रथमं प्रविशति मुख्याधिष्ठाता, पश्चात् छात्रा:)

चन्द्रशेखर:—मुख्याधिष्ठाता—अहो चेतस: स्वाभिनिवेश: नाद्यापि बिस्मरामि मूलशंकरम् । अहो क्व ग्रामग्रामणीसन्निकाय:, क्व च विशदमानस: शिशु:, अहो शिवरात्रिसमये जनकेन समं विश्वजनीनं सविनयं श्रुत्वा विवादार्थं मानसं मे समुत्कण्ठते । अपिनाम सम्पत्स्यते हृदयानुरूपम्, (दक्षिणाक्षिसंकोचं सूचयित्वा) किमिदं स्फुरति दक्षिणं नयनं, अहो भगवन् । सफलय विद्यालयं, पल्लवय सौभाग्यकल्पलतिकां, पूरय च विश्वबन्धो ! मनोरथम् ।

एक:—(प्रविश्य) भगवन् ! अभिवादये ।

द्वितीय:—नमो नम: ।

गुणेन्दु:—महाभाग ! नमस्ते ।

मुख्याधिष्ठाता—(दृष्ट्वा स्वगतं) कोऽयं अपरिचित:, नायं श्रीस्थलीय: ? (प्रकाशं) कुत: समागम्यते ?

प्रथम —अरे ! जा जा यहाँ से पढ़ लिया तूने ? तेरी सूरत ही नहीं है पढ़ने की।

गुणेन्दु —(क्रोध से) अरे मूर्ख ! क्या बकवास करता है ? तू क्या जानता है ?

द्वितीय— देखकर मन ही मन) अरे ! यह तो बड़ा असहनशील है, और है भी तो इसके लम्बे बलवान भुजदण्ड ! यदि यह मारने लगेगा तो हमारे वश की नहीं है एक थप्पड़ खाना भी। (प्रकट) हाँ हाँ, श्रीमन्महाभाग ! यह तो मजाक था, आइये ले चलते हैं आपको विद्यालय।

गणेन्दु (मन में) हुं ……इस समय तो यह लोकोक्ति सचमुच सत्य हो रही है कि "चमत्कार को नमस्कार है।" (प्रकाश में) होने दो, यह मैं भी आया। सब विद्यालय जाते हैं। (फिर सर्व प्रथम मुख्याधिष्ठाता प्रवेश करता है, पुनः छात्रगण) चन्द्रशेखर-मुख्याधिष्ठाता महोदय ! अजी चित की महिमा का क्या कहना ? अभी तक भी मन से मूलशंकर नहीं निकल पाया। कहाँ ग्रामीणों का अटपटा जमघट और कहाँ मूलशंकर का विशुद्ध बाल हृदय ! शिवरात्रि के पर्व पर पिता के साथ विश्व हित के लिए उठाये गये विवाद को सुनने के लिए मन व्याकुल हुआ जा रहा है। क्या मेरे मन की बात हो जायेगी ? (दाहिनी आँख का फड़कना बताकर) यह दाहिनी आँख क्यों फड़क रही है मेरे भगवान् ! विद्यालय को सफल कर, सौभाग्य की कल्पलता को पल्लवित कर दे देव ! मेरे मनोरथ को पूरा कर दे !

प्रथम—(प्रविष्ट होकर) भगवान् ! नमस्कार करता हूं।

द्वितीय—नमोनमः महाराज !

गुणेन्दु— महाशय नमस्ते !

मुख्याधिष्ठाता—(देखकर मन में) यह अपरिचित कौन है ? यह श्रीस्थल का निवासी तो नहीं लग रहा ? (प्रकट में) हां भाई ! कहां से आ रहे हो ?

गुणेन्दुः—भगवन् ! सौराष्ट्रमण्डलात् । अस्माच्च, मम मातुलेन श्रीमद्विद्यालये सम्पादयितुं शास्त्राभिरुचिं साम्प्रतमादिष्टोऽस्मि ।

मुख्याधिष्ठाता–(सहर्षं) ननु किं टङ्कारास्थानतः, ननु त्वमेव गुणेन्दुः किमु ?

गुणेन्दुः—ओं भगवन् !

पथिकः—(जानन्तिकं) भो ! किमिदं समुज्जृम्भितम् ?

अपरः—सूचिकाप्रवेशेन मुसलप्रवेशः !!

मुख्याधिष्ठाता—एहि, एहि कथय, अपि जानासि मूलशंकरम् ?

गुणेन्दु—आम्, कथं न जानामि ? ननु श्रीमता कथं परिचीयते ?

मुख्याधिष्ठाता—सौभाग्यवशादहं तत्रागमम्, तत्र जातः परिचयः । गुणेन्दो: अपिनाम रज्यते शास्त्रचर्चासु तस्य मानसम् ?

गुणेन्दुः—(स्वगतं) अहो इयान् यशोविस्तारस्तस्य ? (प्रकाशं) मान्य ! बालचापलात् न जानामि तस्य रहस्यं, तथापि प्रथमतमः स सर्वापेक्षया ।

मुख्याधिष्ठाता—सन्तुष्टोऽस्मि, तस्य गुणश्रवणामृतपानेन । गुणेन्दो ! तव मातुलस्य पत्रेण विदितं मया, त्वयाऽत्र स्थातव्यं, किन्तु विद्यादीक्षां प्रतिपालयन्; मा प्रमादमवलम्बेथाः ।

एकः—पूज्य ! किमयं पठिष्यति ? गेहं गच्छतु महाभागः ।

मुख्याधिष्ठाता—मैवं विद्वेषाभिनिवेशिमलीमसं मानसं कुरुष्व ।

> "गुरोर्निन्दा श्रुतेर्ह्रासः परीवादवचस्तथा ।
> असूया श्रद्दधानेषु शारदाकोपकारणम् " ॥४॥

तद् गच्छ चारुदत्त ! दर्शय श्रीस्थलस्य प्रसिद्धस्थानसौन्दर्यं गुणेन्दुम् ।

गुणेन्दु—भगवन् ! सौराष्ट्र से । और मेरे मामाने आपके विद्यालय में आकर विद्या पढ़ने का आदेश दिया है।

मुख्याधिष्ठाता—(सहर्ष) अरे भाई ! क्या टंकारा से आ रहे हो ? क्या तुम्हारा ही नाम गुणेन्दु ?

गुणेन्दु—हाँ जी !

प्रथम—(दूसरों से) यह क्या बोल रहा है ?

दूसरा:—सुई प्रवेश के बाद मूसल का प्रवेश—

मुख्याधिष्ठाता—यहाँ आ, यहाँ आ, क्या तू मूलशंकर को जानता है ?

गुणेन्दुः—हाँ जी, क्यों नहीं जानूंगा ? परन्तु आप उससे कैसे परिचित हैं ?

मुख्याधिष्ठाता—सौभाग्य से मैं टंकारा गया था । वहीं परिचय हो गया गुणेन्दु ! क्या मूलशंकर का मन शास्त्र चर्चा में लगता है ?

गुणेन्दु—(मन में) अहो ! यहाँ तक मूलशंकर की कीर्ति फैल गयी ? (प्रकाश में) महाभाग ! बचपन के कारण उसका रहस्य तो नहीं जानता हूं, परन्तु है वह सर्व प्रथम ही ।

मुख्याधिष्ठाता—सन्तुष्ट हो गया हूं मैं उसके गुण श्रवणरूपी अमृतपान से । गुणेन्दु ! मुझे तुम्हारे मामा जी के पत्र से ज्ञात हो चुका है । तुम यहाँ पर रहो, विद्याध्ययन करो, किन्तु इसमें प्रमाद न करना ।

प्रथम—पूजनीय ! यह क्या पढ़ेगा ? आप घर जाइये न !

मुख्याधिष्ठाता—इस प्रकार द्वेष से मन को मलिन मत करो,

"गुरु निन्दा तथा वेद शास्त्र गर्हा कटूक्तियां ।
श्रद्धास्पदो में अश्रद्धा शारदा कोपकारण ॥४॥"

तो चारुदत्त जाओ एवं गुणेन्दु को सिद्धपुर के सुन्दर स्थलों का दर्शन कराओ ।

एकः—यदादिशति महामान्यः ।

मुख्याधिष्ठाता-(सस्नेहं) कुमार ! आत्मीयं स्थानमिदं मन्यस्व।

"सरस्वतीतीरनिवेशभाजा-
मुपास्य वाणी विमलां द्विजानाम् ।
श्रद्धानुविद्धं हृदयं विधाय
सरस्वतीसेवनमारभस्व" ।५॥

(इति निष्क्रान्तः)

(ततः प्रविशतः गुणेन्दुचारुदत्तौ)

चारुदत्तः—वयस्य गुणेन्दो ! इतः प्रभृति भवान् परस्परोपकारं मित्रं मम, तन्मया पूर्वाचरितं त्वद्विरुद्धाचारं क्षमस्व ।

गुणेन्दुः—मित्र ! मैवं, न मे विप्रतीपमाचरितं भवता, अथवा प्रागल्भ्यमपि शोभते शैशवे ।

चारुदत्तः—वयस्य ! सन्तुष्टोऽस्मि तव परिचयेन । अथवा सर्वमेव विद्यार्थिवृन्दं स्वभावसरलां शेमुषीं समीक्ष्य मोदतेतराम् ।

गुणेन्दुः—सखे ! तत्राऽपि युष्माकं पुण्यपरिपाकः, योऽहं स्वल्पवासरविरचितसंस्तवोऽपि सर्वेषां हृदयमिव संवृत्तः ।

चारुदत्तः—तत्रकिंवक्तव्यं "गुणैः सर्वत्र पदं निधीयते," विशेषतः तस्मिन्नवकाशेऽस्माकं मुख्यसंपादकेन सह रहसि प्रवर्तमानां विविधरसमिश्रितां देशोदयस्य, वैदिकधर्मस्य, भारतीय-गौरवस्य च कल्याणसवित्रीं तव विवेचनसरणिं शीलयित्वा विशेषागमरहस्यरहितस्यापि परमार्थदर्शिनस्ते हृदयङ्गमया मनीषया मुदितमानसाः सर्वं एव वेदविद्यालयवासिनो विद्यार्थिनः ।

गुणेन्दुः-अस्तु, अस्ति तत्रापि पुण्यातिरेकलब्धस्य पवित्रपरिचयस्य निदानम् ।

प्रथम—जैसे आपका आदेश !

मुख्याधिष्ठाता—(सस्नेह) कुमार इस स्थान को अपना ही समझो !

"सरस्वती तट निवासि महाशयों के,
विद्वज्जनाग्र पदश्रीश्रित पण्डितों के।
पाद स्थित प्रणत चित्र बनों प्रसन्न;
आशीष लाभ कर शास्त्र वरिष्ठ गण्य ॥५॥

(गुणेन्दु और चारुदत्त प्रवेश करते हैं)

चारुदत्त :—मित्र गुणेन्दु! अब से तुम मेरे सुख-दुःख के साथी मित्र हो गये हो। मुझसे जो अनजाने में अपराध हो गया है उसे भूल जाना भाई !

गुणेन्दु :—भैय्या ! ऐसा मत कहो. तुमने मुझे कहाँ सताया है ? और यह ता बचपन का गुण भो होता है चञ्चलता !

चारुदत्त :—तुमसे परिचय पाकर बड़ा सन्तोष मिला मुझे। और सभी छात्रों की स्वाभाविक चपलता भरी बुद्धि देख कर तो मैं मस्ती में आ जाता हूं।

गुणेन्दु ;—हां, हां मित्र! इसमें भी तुम्हारा ही पुण्य प्रताप है जो थोड़े समय में मुझे साथियों की प्रशंसा प्राप्त हो गई है और मैं सब के लिए हृदय जंसा बन गया हूँ।

चारुदत्त :—इसमें कुछ भी कहने की आवश्यकता है ? 'सर्वत्र ही गुण स्वयं चमके धरा में।' सच्ची बात तो यह है कि तुमने जिस प्रकार से वैदिक-धर्म, भारतीय -संस्कृति, सभ्यता, देशोद्धार, को सभी क्षात्रों के मनों में बिठा दिया इससे तुम्हारी सहज योग्यता का आभास मिल गया है। भले ही तुम अभी तक वेद शास्त्रों के परम्परागत पण्डित नहीं बने।

गुणेन्दु :—इसमें भी तुम्हारे ही पुण्य परिचय को श्रेय मिलता है।

चारुदत्तः—बन्धो ! वयं तु सततं क्लिष्टव्याकरणव्यवहारिणः कर्कशतर्कचक्रा भ्रमितचेतसो न जातुचित् एवंविधां नवीनां-भ्युदयभावनां शृणुमः, किन्तु न भवता परिशीलितं धर्मशास्त्रं न वा समधिगत श्रुतिरहस्यं, नवानुभूतं च भारतीयसाहित्य-परिशीलनसौभाग्यं परमार्थतस्तथापि भूतार्थं विवेचयसि, तत्कस्य महात्मनः सहवाससन्तानकस्य फलम् ? विशेष-तस्तादृक्षे विद्याव्यासंगवञ्चिते देशे स्थितस्य ते महदिदमा-श्चर्यम् ।

गुणेन्दुः—सत्यं, तथापि अनीदृशोऽयं परिणामः सौजन्यभूमेः। अस्ति मदीयः सहचरो मूलशङ्करः, स शास्त्रविशेषविधुरोऽपि नित्यमेवविधां दर्शयन् ।परमार्थप्रसिद्धि, मामपि स्वकीय-भावनाभाजनमकरोत् ।

चारुदत्तः—तत् किं तस्यापि महानुभावस्य नैसर्गिकीयं मनीषा !

गुणेन्दुः—अथ किम् ? उत्तरोत्तरं परिवर्धते च मन्ये तस्यापि समागमनमत्र सम्भवेत् तदा सौभाग्यमस्माकम् ।

चारुदत्तः—(सेर्ष्यं किञ्चित) अतिमुग्धोऽसि, किं न वयं निखिलाः सत्यसनातनपथमवलम्बमानाः सरस्वतीसारवेदिनः ?

गुणेन्दुः—सखे ! इत्थमहं न जाने निगूढगाम्भीर्य किन्तु परस्परं कलहायमानानां नानाविधानां शास्त्रव्यपदेशव्यायतानां धर्माणां श्रुतिरेव परमं प्रमाणम्—

विश्वक्षेमकरीमनन्तमहसः कल्याणपारंपरी-
खेलन्निर्जरिणीं पवित्रतरणिं संसारवारांनिधेः ।
भव्यां भानुविभामिव श्रुतिमघध्वंसाय संजाग्रतीं
पुण्यां प्राणभृतां गतिं मुनिवरैराधितां दध्महे ॥६॥

चारुदत्त:– बन्धो ! हम तो नीरस अकोमल व्याकरण शास्त्र एवं कर्कश तर्कशास्त्र से भ्रान्तहृदय बन चुके हैं। इस लिए ऐसी तीक्ष्ण अनुभूति हममें होती ही नहीं है। तो भी यह आश्चर्य की बात है कि बिना वेद धर्म एवं दर्शन शास्त्र पढ़े भी तुममें इतनी प्रतिभा भरी है कि तुम जो कहते हो, उसमें चमत्कार भरा होता है। किस महापुरुष के सम्पर्क से तुम्हें यह योग्यता प्राप्त हुई है ऐसे प्रदेशमें जहाँ पर विद्या व्यसनी विद्वानों का दर्शन भी दुर्लभ है।

गुणेन्दु:— सचमुच यही बात है। तो भी यह सब मेरे साथी मूलशङ्कर की पुनीत प्रतिभा का परिणाम है, भले ही उसने वेद शास्त्र नहों पढ़े हैं तो भी उसकी परमार्थ सिद्ध वृत्ति का मुझमें भी प्रवेश हों गया है।

चारुदत्त :—तो क्या उस महानुभाव की भी ऐसी पुण्य बुद्धि प्राकृतिक ही है ?

गुणन्दु :—और क्यों ? उसकी बुद्धि तो उत्तरोत्तर बढ़ रही है। चाहता हूं कि किसी प्रकार उसका आगमन यहाँ हो जाय तो बड़ा लाभ हो हमारा।

चारुदत्त :—(थोड़ी सी ई्र्ष्या करता हुआ) क्या हम सभी लोग सत्यसनातन मार्ग पर चलने वाले शास्त्रों का सार नहीं जानते ?

गुणेन्दु:—सखे ! इतनी गम्भीर बात तो मैं नहीं जानता, किन्तु विभिन्न मतभेदों को व्यक्त करनेवाले परस्पर विरोधी शास्त्रों में वेद ही सबसे अधिक पूज्य हैं और स्वत: प्रमाण हैं—

"विश्वक्षेमकरी, सुगौरवमयी ! कल्याण संचारिणी,
संसाराम्वुधितारिणी, सुखभरानौका जगद्भासिनी।
लोकाज्ञान निवारिणी रविविभाभव्या अघध्वसिनी,
विद्वद्वृन्दसुसेविताश्रुति हमें सन्मार्गसंदेशिनी ॥ ६ ॥

चारुदत्तः—सत्यं तथापि विश्वेषां निःश्रेयसे साधीयसी न केवलं श्रुतिसरस्वती, तदभिमतानामपि तन्त्राणां अविरोध-सामान्येन प्रामाण्यमादरणीयम् ।

गुणेन्दुः—मित्र ! तारतम्यं न जानामि, किन्तु मदीयस्तु दृढोऽयं निश्चयः सर्वथा श्रुतिरेव प्रामाणपदवीमारोहति । अथ सोऽपि मामेकदा व्याहरत्—

निःशङ्कं परिभूय पङ्कजभुवो वंशं विशिष्टं विधिः
कौतस्त्यः कलिकालकल्मषमषीव्यामिश्रतामश्नुते ।
यत्र श्रौतपथा मलीमसतमैः कीर्णा विभिन्नागमैः
क्लिष्टाः शिष्टधियः प्रनष्टगतयः पिष्टात्मनां पांसुलैः ॥७॥

चारुदत्तः—(स्वगतं) अहो ! भूतार्थव्याहृतिः (प्रकाशं) सखे ! नमस्तस्मै देशाय यत्र जगन्मङ्गलस्य सम्भवः वृथा खलु देशविदेशगौरवम् । (सर्वतो विलोक्य) अतिवेला व्यतीता, तद् आगच्छतु श्रीस्थलविहारमनुभूय त्वरितं प्रतिगच्छावः ।

गुणेन्दुः—एवं सखे ! सत्यमिदं श्रीस्थलम् ।

चरुदत्तः—एवं गुर्जरदेशतिलकायमान स्थानमिदन् । अत्र—

चारुदत्त :—यह बात यथार्थ है, तो भी वेदानुकूल सभी तन्त्र-शास्त्रादि भी तो हमारे प्रमाणभूत पूजनीय हैं।

गुणेन्दु :—भ्रातः ! तारतम्य तो मैं नहीं जानता, मैं तो केवल इतना ही जानता हूँ कि वेद ही एक मात्र प्रमाण ग्रन्थ हैं। मूलशंकर ने भी एक बार मुझे कहा था—

"निशंक ही विधि पितामह पद्मनाभि,
सन्देह भावभरता, कलिकाल आधि।
वेद प्रभाव रहित प्रतिपक्ष वक्ता,
नाना पुराण बर पुस्तक का नियोक्ता—
सर्वेष्ट बिश्व सुख साधन भूतदिव्य,
संसार सागर सुतारण में प्रसिद्ध।
वेदामृत प्रबल शक्त समस्त मेल—
प्रक्षालनामित बल प्रतिबोधशील—
लाभार्थं विश्वजन के यह देववाणी,
है सर्व शांतिसुख सम्पद भव्यदानी,
सर्वात्मना तज समस्त पुराण पन्थ,
वेदोक्त मार्ग गहना परमार्थं सन्थ॥७॥

चारुदत्त :—(मन में) ओ हो प्राणियों की हित वार्ता है यह तो (प्रकाश में) सुदृढ़ जहां पर विश्व कल्याण का सर्जन जगता है। उस दिव्य देश को सहस्र नमन हैं, देश देशान्तर गमन तो इस भूमि के सामने तुच्छ है। (चारों ओर देखकर) बहुत समय बीत गया, तो चलो सिद्धपुर विहार का सुखद अनुभव करके शीघ्र ही लौट आवें।

गुणेन्दु :—अच्छा मित्र ! बड़ा पवित्र स्थान है यह ?

चारुदत्त :—हां, हाँ, महान् गुजरात का शिरोमुकुट स्थान है यह—यहां पर—

श्रीमद्गुर्जरभारतीप्रणयिनीश्रीखण्डचर्चाकरः
सोलङ्कीक्षितिपालनन्दनयशःसन्तानसन्तानकः ।
उद्दण्डारिनिकायमुग्धवनितावक्षःशिलापाटन-
प्रोद्यत्प्रसरत् प्रतापदहनः श्रीसिद्धराजोऽभवत् ।।८।।

अत्राशेषविभूतिहासविलसत्सौन्दर्यसारैः कृतं
भव्यं धाम गिरीन्द्रजाप्रणयिनः श्रीरुद्रमाला भिधन्।
यस्यायं गलितस्य विष्वक्कुहरे कालाहिना दृश्यते
खण्डः खेलितलोकसकुल्ययशः स्तंभायतेऽद्यावधि ।।९।।

गुणेन्दुः—अहो ! परमरामणीयकम् ! इतिहास प्रसिद्धं स्थलमेतत् सिद्धराजनाम्ना परिवर्तितम् । खलु तस्य महासत्त्वस्य—

विलासिनः शारदाया सरागं
श्रिया सहासञ्च कटाक्षितस्य ।
द्वयं प्रियं तस्य धराधिपस्य
शशाङ्कमौलेः शरणं रण वा ।।१०।।

चारुदत्तः-(अन्यत्प्रदर्श्य) पश्यतु सरसगभीरनीरां विराजिततरलतुरङ्गतरङ्गां दुरितभङ्गापदानविलसत्प्रसंगां सरस्वतीम् ।

गुणेन्दुः—अहो ! पङ्कजासनवनया नयनानन्दं कंदलयति ।

हंसावली मन्डितमध्यभागा
सरोरुहश्रेणिविलोलवेणी ।
सरस्वती भूतलमीक्षमाणा
व्रजत्यसौ मुग्धपतिंवरेव ।।११

चारुदत्तः—पश्य—

तीरे तीरे विबुधसरितः स्वर्गनिश्रेणिकाया
ब्रह्मध्यानक्षपितदुरिताः सज्जनाः कल्पकल्पाः ।

"श्रीमान् गुर्जर भारती प्रणयिनि श्रीखण्ड चक्रालय,
सोलकी नृप लोकवल्लभ महान् कीर्ति प्रकर्षाश्रय,
स्वीयाऽसीमितशौर्य दर्शक सदा शत्रुप्रणाश स्वभु,
विज्ञाधार हुआ यहीं नरपति श्रीसिद्धराज प्रभु, ।।
आत्मश्लेष समृद्धदीप्ति करण प्रख्यात सिद्धागम,
सौन्दर्याश्रित दर्शित प्रथमता दुर्गादि निर्माणमे।
ऐसे भूपति वर्य के दिख रहे ये ध्वस ही कोट के,
लोभीराज शिरोमणि यश यहाँ सरुद्ध है आज लौं ।।११।।

गुणेन्दु :—वाह रे वाह ! क्या बढ़िया दर्शनीय स्थान बनाया है महाराजाधिराज सिद्धराज ने। तभी तो उस महाराज के—

"सरस्वती सेवा श्री इस भूपति की,
सदैव सेवारत हो चुकी थी,
इसे यही दो प्रिय थे धरा पै,
शिवस्तुति या रिपु सर्वनाश ।।१२।।

चारुदत्त :—(और दिखाता हुआ) देखो देखो सलिल सुखद पापपुंज बिनाशिनी भगवती सरस्वती को।

गुणेन्दु :—हाँ, हाँ, यह चतुरानन सुपुत्री सरस्वती का सहज सौन्दर्य कितना नयनानन्दकारी लग रहा है ?

"हंसश्रेणी सुशोभितासुसलिला अम्भोजराजीशुभा,
भक्तानन्दकरी मनोहर तटा, सत्संगसन्तोषदा,
पापध्वंसरता सरस्वती सुसरिता पृथ्वीगता दीखती,
जाती है, पतिकामनावशमुदा, कन्यासलज्जायुता ।।१४।।

चारुदत्त :—देखो—

इस दिव्यदेव सरितातट के निवासी,
त्यागे गृहस्थजन की सब सौख्यराशि।

येषां पुन्या प्रणयमधुरा भक्तिमुक्तिप्रदाना
पापं तापं श्रवणसुभगा शास्त्रचर्या निहन्ति ॥१२॥

गुणेन्दुः—अहो ! इतोऽपि पर मानसमोहावहं कमनीयकेलिकलित-कलकल मरालविलास विलोकयतु महाभागः—

लीलाखेलं ललितकमलामोदाय पक्षे-
भूदेवानामपहृतपरध्यानमभ्युक्षितानाम् ।
मंत्रारभं करविहरणैरेकतान समेत्य
मन्द मन्दं मुदितमनस. पश्य नृत्यन्ति हंसाः ॥१३॥

चारुदत्त.—एवमेव, इतः श्रद्धावबद्धसमाधयः परमपदनिवेशित-विशदधियः कलिकलुषविवशमनुजविपदपनयनपरमनय-विधयः श्रुतिस्मृतिनिनाद वाचालितभुवनत्रिवराः पंक्ति-पावना निखिलमनुजवृन्दवन्दनीयचरणारविदंद्वन्द्वा ब्राह्मणाः सन्ध्याविधिवैयुष्टयं विदधते । इतोऽपि नियमाभिषेकार्थ मागतो नगरनिलयजननिकायः प्रणतिप्रवणः परंमया भक्त्या परमात्मानं नि ध्यायते । इयमपि करुणाझरीव भगवती सरस्वती जननीव निरन्तरं पावयति पुरवासिनः ।

एषा सुधासाररसा जगन्ति
निःशेषपुण्यप्रसवा पुनाना ।
वहत्यसो भूमिसुरोपसेव्या
सरस्वती दिव्यसरस्वतीव ॥१४॥

ईशार्पित प्रसभनष्टकृताघ पुंज,
है शोभते नित अहो भव मार्गलंज ।।१५।।
श्रद्धाश्रुतप्रतिदिन प्रथतितायभाव,
आते अनेक जन दुःख निपात चित्त,
किन्तु श्रुतिस्मृतिमयी रुचिरामनोज्ञा,
वाणी विनाशन प्रभुं पीडितों की ।।१६।।

गुणेन्दु :—ओहो ! यहीं दूर से ही आप मन को मुग्ध करनेवाले कमनीय क्रीड़ा निरत मस्त मराल के विलास को देखिये।

"पंखों से ये ललित कमलों की सुगन्ध प्रसारे,
पुण्य ध्यानादृत द्विजवरों को सदा जो रिझावें।
मंत्रोच्चाराहृति नियत ही ब्राह्मकी की रचावें,
धीमे धीमे मुदित मन से नाचते हस देखो ।।१३।।"

चारुदत्त :—है तो ऐसा ही देखो न श्रद्धा बद्धसमाधिशील, परम पावन पद प्रतिनिहित बुद्धिधनी, कलिकलुषविवश मनुष्य-विपद अपनयनशील, श्रुतिस्मृति प्रगति नियमों से चतुर्दश भुवनों को मुखरित करने वाले, पंक्तिबद्ध बैठे थे मानव मण्डली के मूर्धन्य मुक्तामणि ये भूमिदेव, ब्रह्मयज्ञों में तल्लीन कैसे शोभायमान लग रहे हैं ? यहाँ पर अन्य भी अनेक आस्तिकजन स्नानादि से निवृत होकर बड़ी भारी संख्या में अभिवादन भावाभिभूत होकर ये महती श्रद्धा से भगवान् की भक्ति में डूब गये हैं ! और यह भगवती परम-पावनी सरस्वती सरिता भी तो प्रतिपल पुरवासियों को पवित्र करती ही रहती है।

"होती प्रवाहित नदी यह पुण्यशीला,
दैवी सरस्वती सभी प्रतिवेल दिव्य।
भूदेव पूजित समस्त अघौघ नाशी,
पीयूष शुद्ध सलिला हृदय प्रकाशी ।।१४।।

अपिच—

विधित्सवः श्रौतविधिं विधानतः
प्रपित्सवः पावनधामवैभवम् ।
करिष्णवो विश्वजनीनमाशयं
भविष्णवः सर्वहितैषिणश्च ॥ १५ ॥

चारुदत्तः—(विलोक्य) सखे ! एतत्पवित्रतम बिन्दुसरः पुराण-प्रसिद्ध यत्र भगवता महामुनिना कपिलेन स्वमातुः देवहुत्याः शोकशङ्कुरुन्मूलितः, अत्रैव पुराणप्रख्यापित भवति मातृ-श्राद्धमपुनर्भवाय ।

गुणेन्दुः—नमस्ते! भगवते सकललोकल्याणकारिणे जगज्जीवातवे महामुनये कपिलाय । यः किल—

शोकनाशाय लोकानां तापत्रितयभेषजम् ।
आदिविद्वान् जगद्वन्द्यः सांख्यशास्त्रं प्रणीतवान् ॥१६॥

(सर्वत्र दृष्ट्वा) वयस्य ! ललाटंतपस्तापः तत्सांप्रतं निवर्तावहे । पुनरपि यथाप्रसंग आगमिष्यावः ।

चारुदत्तः—यदादिशति वयस्यः ।

उभौः—नमः परमर्षये दिव्यचक्षुषे कपिलाय !

(इति निष्क्रान्तौ)

(स्थानं सिद्धपुरम्, सरस्वतीमन्दिरम्, करसनजी सौमित्रश्च)

करसनजीः—सौमित्र ! अपि वर्तते काचिदुपलब्धिर्मूलशङ्करस्य !

सौमित्रः—(सखेद) महाराज ! सर्वतः स गवेषितः, नास्ति क्वपि प्राप्तिनिदानम्; अद्य मयाऽत्र सिद्धपूरे समधिगता प्रवृतिः अस्ति च मदीयो मानससंकल्पः नियतमत्र विद्या-धिगमाय कृतागमनः मूलशङ्करः ।

यह भी देखिये :—

'वेदोक्त कर्म निपुण व्रतशील विप्र,
पुण्याम्बु पान-रसिक प्रणतात्म भाव।
सर्वार्थलाभ हित बद्ध उदात्तचित्त,
हैं धन्य भूमिसुर ये जनमान्यभूता ॥१५॥'

चारुदत्त :—(देखकर) मित्र ! यह रहा वह पुराण प्रसिद्ध बिन्दु सरोवर, जिसके निर्मल कूल पर बैठकर महर्षि कपिल ने निज माता देवहुती के शोक शंकुओं को निकाला था। इस स्थान पर पुराणोक्त मातृश्राद्ध किये जाते हैं, मोक्ष प्राप्ति के लिये।

गुणेन्दु :—समस्त संसार के श्रेय साधक विश्वबन्धु भगवान् महामुनि कपिल को शत सहस्र नमन हों। क्योंकि ये ही हैं—

"लोकके दुःख विध्वस्ता, तीन सन्ताप नाशक,
सांख्य शास्त्र विधाता हैं, जगद्‌बन्धु बुधाग्रज ॥१६॥'

(सबको देखकर) सखे ! अब तो सिर पर प्रबल ताप पड़ने लगा है, चलो लौट चलें अब ! समय आने पर फिर कभी आयेंगे।

चारुदत्त :—जैसा आप कहें मित्र !

दोनों :—परमदिव्य महर्षि दिव्यद्रष्टा कपिल भगवान्‌के चरणोंमें प्रणाम हो।

(दोनों चले जाते हैं)

स्थान :—सिद्धपुर का सरस्वती मन्दिर, करसनजी और सौमित्र)

करसनजी:—सौमित्र !कहीं कुछ पता भी चला है मूलशंकर का ?

सौमित्र :—(दुःख के साथ) महाराज ! सभी जगह ढूंढ लिया है खूब, पर कहीं भी सुराग नहीं चला ! आज ही सिद्धपुर में पता चला है। मेरे मन में भी संकल्प विकल्प हो रहे हैं कि मूलशङ्कर विद्याध्ययन के लिये यहाँ पर आया हुआ है।

कस्सनजी:—(सनि:श्वासम्) वञ्चितोऽस्म दैवेन, सौमित्र ! कम्पते मे हृदयं, इत: परं न भविष्यति तनयमुखदर्शनम्, हा! हतभाग्योऽस्मि। निरालम्बोऽस्मि संवृत्तः ! प्रभो, प्रभो!! किमिदमेकपदे वशविप्लवकारणं समुपस्थितम् ?

सौमित्र:—महाराज ! समाश्वसिहि, पर्यवस्थापयात्मानम्। न दैवं दुर्लङ्घनीयं; कं न विषमदशापरिणतिराकुली करोति? न तावदस्ति दु:खाकरं तनयवियोगादन्यन्नाम। तथापि धैर्यं धार्यताम्। अतिक्रान्ते किं परिदेवनै: ? अस्मिन् महोत्सवे ऽवश्यं भविष्यति मूलशङ्करस्य प्राप्ति:।

करसनजी:—(सखेद)

निःसीमशोकजलधौ पितरं गतस्य
स्नेहाकुलां च जननीं बत मज्जयित्वा।
चेतो न निश्चयमुपैति, जहाति धैर्यं
स्मृत्वा विपर्य्ययमिमं कुलपांसुलस्य ॥१७॥

अरेरे ! कति न जायन्ते जननीगर्भभारभूता: पापकारिणो निरुपकारिणः कुलकलङ्का: ?

आजन्मजीवनरसेन वपुर्व्ययेन
संवर्धितेषु हृदयार्पणलालितेषु।
हा। हा। जहत्सु पितरं कुटिलेषु तेषु
पुत्रेषु कुण्ठितगतिर्भगवन् कृतान्त ! १८॥

करसनजी :—(आह भर कर) भाग्य ने धोखा दिया है सौमित्र मुझे ! मेरा मन बुझा जा रहा है; लगता है पुत्र के मुख दर्शन नहीं हो सकेंगे 'अब ! मैं बड़ा अभागा हूं, मैं तो सर्वथा लुट गया हूं। अब मेरा सहारा ही कौन है ? विभो परमेश्वर ! यह क्या कर दिया तुमने ? एक साथ ही इतनी मुसीबतें गिरा दी हैं मुझपर ! मेरा तो वंश नाश ही हो गया है यह तो !

सौमित्र :—भगवन् ! धैर्य धरिये, घबराइये नहीं; आत्मा में शांति रखिये ! दैव को कौन मात दे सकता है ससार में ? कौन है ऐसा मनुष्य जिसको विपदाएँ नहीं सताती ? पुत्र विरह से अधिक ससार में और कोई दुःख नहीं है। तो भी धीरज थोड़े त्याग देना चाहिये ? व्यर्थ की हाय में क्या रखा है ? मूलशंकर इस महोत्सव में कही न कहीं अवश्य होगा।

करसनजी:—(दुखित हुए)

"माता और पिता दोनों को, शोक सिन्धु में मग्न किया।
हम दोनों के स्नेह पास को झुठलाकर अवसन्न किया ॥

मन तो नहीं मानता यह भी, धैर्य गया तज आज हमें,
बारम्बार स्मरण करने से, सब विरुद्ध यह हाय हमें।
उस सुतेजधारी व्रतधारी, श्रेष्ठ पुत्र का भाव हमें,
महाअशुभ बन रुला रहा है, हृदय अशांत हमें ॥१७॥

वैसे तो लाखों करोड़ों ही पैदा हो जाते हैं. संसार में जननी-यौवनहारिणी दुष्ट सन्तानें यहाँ पर—

"जीवन भर निज सर्वशक्ति से,
जिनका पोषण करते हम।
क्षण भर भी कुछ दुःख न मानें.
पुत्र प्रेम में रञ्जित हम।
ऐसे ही यदि शत्रु कुटिल बन,
माता-पिता को छोड़ चलें।
फिर तो निश्चित पितृजनों के,
बली हृदय भी घोर जलें ॥१८॥

(इति मूर्च्छति)

सौमित्रः--अरे कथं मूर्च्छितः पुत्रवत्सलः ? महाभागः ! समाश्व-सिहि, समाश्वसिहि । ननु कथयामि नियतमत्र भविता सुतसंगमः ।

करसनजीः—किं करोमि सौमित्र ? सर्वथा निःशरणोऽस्मि यदि अद्य न मनोरथसिद्धिस्तदागन्तव्यमेव गृहे सर्वथा तिला-ञ्जलिं वितीर्य; अरे । तस्य अपि मन्दभाग्याया अमृताया[1]-मूलशङ्करजनन्याः कीदृशी परिणतिः ? धिक्कष्टम् !

सौमित्रः—ननु विवेदयामि तत्र भवन्तं धैर्यं कृत्वा विवेकालम्ब विदधातु । अहं सर्वत्र गत्वाऽस्मिन् जनसन्निकाये गवेषयि-ष्यामि । भवान् अत्र सरस्वतीमन्दिरे करोतु स्थितिं, अहं सरस्वतीस्नानं परिसमाप्य यावत् प्रतिनिवर्ते ।

करसनजीः--अहमपि विधास्यामि स्नानम् ।

सौमित्रः-नहि भगवन् ! बहुलायासपीडितं ते शरीरं, व्यतीतानि त्रीणि दिनानि श्रीमता पानीयं विहाय न किञ्चिदपि भुक्तम् तन्न युज्यते पीडयितुमात्मानं सवनेन, अन्यथा पुनः कष्टमापतेत् ।

करसनजीः– एवं, यथा भवदभिमतम् । गच्छ स्नानाय तत्रापि घट्ट जीर्णे देवालये द्रष्टव्यं, तावदहमपि सरस्वतीमन्दिरे प्रतिपालयामि भवन्तं, साधय । (इति मन्दिरं गच्छति)

सौमित्रः--हन्त भोः ! कीदृशोऽयं दशाविपर्ययः ? न चेतना-मञ्चति चेतः । अप्रतिविधाना विपत्परंपरा, यदि नाम तेन विद्याधिगमाय कृत्यमाचरितमिदं तदा न दोषावहं

---

१. अमृताङ्कुर इत्यपरनाम ।

(इतना कहकर करसनजी मूर्छित हो जाते हैं)

सौमित्रः–ओ हो ! पुत्र प्रेम में तो आप मूर्छित भी हो गये ? धीरज रखिये भगवान् ! मैं कह रहा हूं कि यहाँ पर पिता-पुत्र की भेंट अवश्य होगी।

करसनजी:–भैय्या सौमित्र ! तू ही बता अब मैं क्या करूँ ? मैं तो सर्वथा लुट गया हूं, यदि आज मूलशंकर न मिला तो मैं टङ्कारा लौट जाऊँगा सदा के लिये मूलशंकर के नाम पर तिलांजलि देकर ! अरे ! उस वेचारी अमृतबाई का, मूलशंकर की माँ का तो और भी बुरा हाल हो गया है, कितनी अभागिनी है वह ?

सौमित्रः–मैं बारबार यही निवेदन कर रहा हूं कि आप धैर्याव-लम्बन कर विवेक से काम लें। अभी आप सरस्वती मंदिर में विश्राम करें और मैं सरस्वती में पुण्य स्नान करके अभी लौट आता हूं । मैं इस मेले में कहीं न कहीं ढूँढ ही लूँगा मूलशंकर को आज।

करसनजी:–मुझे भी स्नान करना है।

सौमित्रः–नही महाराज ! शरीर को अधिक कष्ट मत दीजिये इस समय ! तीन दिनों से आपने कुछ खाया पीया भी नहीं इसलिये स्नान करके शरीर को और कष्ट मत दीजिये। अब तो कहीं कोई रोग न दबा ले कोमल शरीर को।'

करसनजी:–अच्छा, जैसा तुम कहो। अच्छा, स्नान कर आओ और घाट पर पुराने मन्दिर में देख लेना, लोगों से पूछ लेना, तब तक मैं सरस्वती मन्दिर में तुम्हारी बाट देखता रहूंगा ! जाओ तो फिर (करसनजी मन्दिर की ओर जाते हैं।)

सौमित्रः–हाय रे ! क्या दशा हो गयो है यह ? मन में चेतना ही नहीं रही, विपदाओं की परम्परा कहीं टूटने का नाम भी तो नहीं लेती ! यदि मूलशंकर ने विद्याध्ययन के लिये ही

पितृपरित्यागप्रत्यवायपांसुलं प्रत्युत विद्यासंपादनाय विदेशाश्रयणेन गृहत्यागं विधित्सवः पुण्यशालिनः शिशवः सर्वदा सौभाग्यमावहन्ति सर्वेषाम् । कल्याणाभिनिवेशिनस्ते हि न केवलं कुलस्य स्वदेशस्यापि गौरवं विदधता जगन्मङ्गलं जायते जन्म ।

महाभागस्तावत्तिलकयति वंशं कृतमति-
र्यदीयः सर्वार्थः सुभगयति विश्वं गुणगणः ।
अटन्तस्त्रैसन्ध विविधविधिना कुक्षिभृतये
न वा के जायन्ते जनकजननीक्लेशकृमयः ॥१९॥

तथा च—

विद्याविवेकविकला ननु सन्तु पुत्राः—
स्तारागणैरिव पितुर्विविधैः किमेतैः ।
धन्यः स एव परमाभ्युदयी कलावान्
यो हर्षवर्षवसतिर्विधुवत् पयोधेः ॥२०॥

व्यामोह एव विद्यार्जनेगृहत्यागमनुशोचतां स्नेहपरवशानां गुरूणाम् । लोकाभ्युदयकरी संतानस्य सती गुणग्रहणकुतूहलिनी प्रवृत्तिः न निरोद्धव्या गुरुभिः, सर्वथा मूलशंकरस्यापि तथा सवृत्तम् । यदि नाम न स्यात् सद्वृत्ति तादृशविशिष्टगुणव्यासंगस्तदा विदेशाश्रये को दोषः ?

गृहत्याग किया है तो इसमें पाप की बात ही नहीं है, माता पिता को कष्ट पहुंचाने की बात ही नहीं उठती है ! विद्या ग्रहण के लिये गृहत्याग करने वाले बालक बड़े पुण्य-शील महात्मा कहलाते हैं, आगे चलकर। ऐसे सुपुत्रों से वंश ग्राम, जनपद और जननी जन्मभूमियाँ प्रशस्त तथा धन्य बनते हैं। ये ही बालक जगत् के मङ्गल जनक होते हैं।

इन्हीं वंश दीपों से कुल दीपता है,
इन्हीं से सदन कीर्तियाँ जीतता है,
इन्हीं के ही शुभकर्म जगको सजाते,
इन्हीं को चरणधूलि शिर पर चढ़ाते।
पिता और माता इन्होंके विनय से,
सुकृत से बहुत दूर ये हैं अनय से।
सफल कोख होती है माँ की इन्हीं से,
विफल कोख है दुर्नयी बालकों से" ॥१९॥

और भी तो—

"ऐसे कुपुत्र भव में बहुभारकों से,
तारा समूह सम वे नभ में चमकते,
वे ध्वांत गाढ़ हरते कब चन्द्रमा से
हैं धन्य तात जननी शुभ शावकों से" ॥२०॥

शुभ विद्याभ्यास के लिये गृह त्याग करने वाले सुपुत्रों के कारण शोक करना तो माता-पिता की लिप्सा का ही द्योतक होता है। गुरुजनों-पितरो को ऐसे भव्य बालकों की गुणग्राहकवंती प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन देना चाहिये, न कि विरोध, लगता है मूलशंकर भी इसी भावना का शिकार हुआ है। जब घर ग्राम में विद्याग्रहण की सुविधा न हो तो विदेश जाने में क्या दोष है ?

हन्त भोः । सरस्वतोविभ्रमजन्मभूमिः प्रतिसदनं सर्वशिक्षावदातं धाम मनीषमन्डित सकलकलानिकेतनमादिजन्मकन्दः प्रकृतिलतायाः निःशेषदेशसमाश्रितं यद् भारतं वर्षं तत्र विद्याकणिकापिपासवो भारतीयपुत्रा, हा हन्तः! विहीनगेहबान्धवाः पर्यटन्ति परितः—

मध्ये महान्वयमुदन्नदशावलम्बी
पात्रस्थितस्तिमिरमन्धमपाकरोति ।
सूते न कल्मषमशेषदिगन्तदीपी
धन्यः स एव कुलमङ्गलदीपकल्पः ।।२१।।

तथापि गरीयसी स्नेहवृत्तिः—

यस्याप्तये विविधधर्मविधानवंति
कर्माणि कष्टकलितानि करोति लोकः ।
अङ्काश्रितस्य तनयस्य च विप्रयोगात्
कस्य क्षणं न हृदयं शतधा प्रयाति ? ।।२२।।

भवतु, सरस्वतीस्नानमनुभूय मार्गणं कर्तव्यं मूलशंकरस्य। तद्गच्छामि, अथवा स्नानावकाशं सुखं पृच्छामि । (दृष्ट्वा) एष कोऽपि समायाति ।

(ततः प्रविशति चन्द्रशेखरः)

चन्द्रशेखरः—(सोत्कण्ठं) अहो ! किमिदं सत्यगुणेन्दुना निवेदित अत्र समागतो मूलशङ्कर इति ?

सोमित्रः—(समीपं गत्वा) महाभाग ! निवेदय स्नानावकाशं घट्टम्-

चन्द्रशेखरः—महाभाग ! कुतःसमागम्यते ?

सोमित्रः—अहं सौराष्ट्रदेशात् टंकाराभिधानात् ग्रामात् आगतोऽस्मि ।

हाय रे ! आज भारत की कितनी दुर्दशा हो गयी है? कभी यह देश था जिसके घर घर द्वार द्वार में भगवती सरस्वती की कीर्ति पताकाएँ फहराया करती थीं, ग्राम ग्राम, नगर नगर, विद्वन्मण्डली विभूषित थे, परमपावन पुण्य वेदमन्त्रों से जनपद समलंकृत और मुखरित थे. उसी देश के विद्याभिलषी शावक भूख प्यास से व्याकुल, अर्धनग्न विद्या की खोज में दर दर मारे मारे फिर रहे हैं-घरबार भाई बन्धुओं को छोड़कर।

" वे दीप धन्य उसकी शुभ ज्योति धन्या,
जो दूर शाश्वत करे घन अन्धकार।
सन्तान-दीपक यशोनिधि धन्य, धन्य,
आलोक जो भर रहा जग में नवीन" ॥२१॥
तो भी स्नेहभावना कहाँ बुझती है मानव की ?
स्वभाविक जो ठहरी यही।
"पुत्रार्थ सर्वविध कर्म करे मनुष्य,
कष्टातिष्कट सहता सुतदर्शनार्थ।
सौख्याश्रयी तनय के गृह त्यागने से,
है कौन जो व्यथित पीड़ित,
होगा न कौन जन दुःखित मग्न चेता" ॥२२॥

अच्छा प्रथम, सरस्वती में स्नान करलूं, फिर चलूंगा मूलशंकर को ढूँढने। नहीं तो पहले ढूंढ ही लूं उसे! फिर आराम से नहा लूंगा। (देखकर) यह कौन आ रहा है ?

(इतने में चन्द्रशेखर आता है)

चन्द्रशेखर:—(उत्सुकता से) क्यो भाई ! यह सच है कि गुणेन्दु के कहने से मूलशंकर यहाँ आया हुआ है ?

सौमित्र:—(पास में जाकर) हाँ स्नान करने के लिये अच्छा सा घाटतो बताइये।

चन्द्रशेखर:—कहाँ से आ रहे हैं आप ?

सौमित्र:—मैं सौराष्ट्र के टंकारा नामक गाँव से आया हूं।

चन्द्रशेखरः—(स्वगतं) हन्त ! सत्य सत्यं मूलशङ्कग्गवेषणमेव निदानम् (प्रकाश) ननु तर्हि यात्रिकः खलु महाभागः ?

सौमित्रः—नहि भूदेवदेव ! अस्माकं वयस्यस्य करसनजीविप्रवर्यस्य पुत्रः एकोनविंशवर्षदेशीयः गृह परित्यज्य निर्गतः, तज्जनकेन समं समागतः ।

चन्द्रशेखरः—किमस्ति तस्योपलब्धिवीजम् ?

सौमित्रः—आम् अस्ति ।

चन्द्रशेखर —(स्वगत) प्रभो ! वितर करुणाम् (प्रकाशं) ननु महाभाग ! तादृशाल्पवयस्कः स कथं गृहं परित्यज्य निर्गतः ?

सौमित्रः—अस्ति विशालं रहस्यं, स वाल एव विलक्षणमतिः प्रतिस्फुरदप्रतिमपाटव । शास्त्रव्यासंगकुशलः सदाचारचर्चाचञ्चुरेकदा शिवरात्रिमहोत्सवे पूतात्मा कृतोपवासः सह तातेन वसन्, चन्द्रकलापस्य कुबेरशिवालयं विभावर्यां शिवलिङ्गोपरि तण्डुलकणभक्षणार्थं भ्रमन्त मूषिकं विलोक्य, समुत्पन्ना व्याहृतज्योतिर्विवदमानस्तातेन तेन निबोधितोऽपि च मुहुर्मुहुरुपचितसदेहसदोहः 'तदेव न पिण्डपाषाणखण्डे परमात्मनो मूर्तिः, किन्तु पाषाणखण्डाद् विलक्षणः स चरा·

चन्द्रशेखर:—(मन में) हाँ, हाँ, मूलशंकर की खोज ही इलाज है अब तो। (प्रकाश में,) तो आप लोग तीर्थयात्री हैं ?

सौमित्र:—नहीं ब्राह्मण देवता नहीं ! श्री करसन जी त्रवाडी महोदय का उन्नीस वर्ष का युवा पुत्र घरबार छोड़कर कहीं चला गया है। उसका पता लगाने के लिये हो मैं अपने मित्र के साथ यहाँ आया हूं।

चन्द्रशेखर:—कहीं उसका कोई सुराग लगा ?

सौमित्र:—हाँ, लगा तो है।

चन्द्रशेखर:—(स्वगत—मन में ही) विभो ! करुणाकर करुणा कीजिये। (प्रकाश में) क्योंजी ! इतनी छोटी आयु में वह घर छोड़कर कैसे भाग निकला है ?

सौमित्र:—इसमें बड़ा भारी रहस्य है भाई ? वह बालक बहुत ही अप्रतिम प्रतिभावान है शास्त्रार्थं ज्ञानार्थी है और सदाचार विचारों में तो अनूठा ही है। एक दिन उसने महाशिवरात्रि के दिन उपवास रखा, शिवदर्शन एवं रात्रि जागरण के लिये पिता तथा अनेक अन्य जनों के साथ घर के समीप ही एक शिवालय में जा पहुंचा, वहाँ सभी भक्तजन तो भूख और आलस्य के मारे रात की अर्धरात्रि से पूर्व ही निद्रादेवी की गोदी में जा विराजे, पर इसकी आँखों में नींद का कहीं नामोनिशान भी था ? जैसे ही निशीथ वेला में रात के सन्नाटे में गणवेश वाहन मूषकों ने शिव पण्ड पर चढ़े अक्षतों मेवा मिष्ठान्नों फल फूलों को खाना आरम्भ किया कि इस किशोर के मन में विद्रोह के स्वर उठ पड़े· हैं ? यह भी कोई देव है, महादेव है, दानव सहारक दनुज दलभंजक देवता हो सकता है जो अपने पिण्ड पर कूदते मचलते चूहों को भी नहीं हटा सकता और भक्ति भावबा से भरे पुण्य प्रसाद को उच्छिष्ट होने दे रहा।' पिता को जगा कर पूछा तो यही उत्तर मिला: 'बेटा यह तो मूर्तिमात्र है, भगवान् शिवशंकर तो इससे भिन्न हैं चराचर के स्वामी

चरनियामकः प्रभुरस्ति" इति चेतसि निवेशयन्, भव्याश्च सर्वदा तद्रहस्यान्वेषणाय रहसि विहितावसथः शैशववशा- दुत्पन्नस्वाच्छन्द्यनिरर्गलस्वभावो न कुत्रचिन्मामसमरीरमत्।

चन्द्रशेखरः—(स्वगतं) फलित मनोरथसंतानकेग । (प्रकाशं) तत किं भूतम् ?

सौमित्रः—तदेकदा सहोदरायां कालधर्ममुपागतायां संजातविश्व- निर्वेदः पुनरपि कियत्कालान्तर पितृभ्रातृमरणमालो- सहसा समुद्वेल्लितः संकल्पसागरः ।

चन्द्रशेखरः—ततस्ततः ?

सौमित्रः—ततस्तद्दिने निर्वेदमापद्यमानं, लग्नशृङ्खलानिर्ग- तोऽतोऽयं न चापलं दर्शयिष्यति इति बन्धुजनबोधनामनु- प्रणयपरवशेन तातेन विधास्यमाने वैवाहिकमङ्गले सह- पलायितः, नाद्यापि तस्य समुपलब्धिः ।

चन्द्रशेखरः—हन्त । महान् व्यवसायः, भवतु, समाचारस्तु निय- विधिम् । कार्यातिपाताद् गच्छामि, एष पुरोवर्ती घट्टः खलु (स्वगतं) किमिदं शृणोमि, यथा मया पूर्वसङ्कल्पत तथै परिणतम् । अघटनापटीयसी विश्वनायकस्य क्रियापरिपाटी (विचिन्त्य) भवतु, एवं करिष्यामि । साम्प्रतं गच्छामि (इति निष्क्रान्तः)

सौमित्रः—अहो । एषा पुण्यप्रवाहा सरस्वती । तत् प्रविशामि (इति निष्क्रान्तः)

(ततः प्रविशति सरस्वतीमन्दिराभ्यन्तरं मूलशंकरः सकाषायवसनः

कैलाश पति परमेश्वर।' पर किशोर शंका समाहित न हुई वह बड़बड़ाता घर गया. भोजन किया और सच्चे कैलाश पति महादेव की खोज को मन विकल हो गया और कहीं लगता ही न था उसका मन।

चन्द्रशेखरः—(स्वगत) अच्छा तो फललाभ तो हो ही गया, (प्रकाश में) फिर क्या हुआ?

सौमित्रः—फिर तो एक दिन इस किशोर की सहोदरा बहन का निधन हुआ, यह मृत्यु की पहेली सुलझाने में रह गया, कुछ समझ न पाया, आगे कुछ समय के पश्चात् इसके दादाजी का स्वर्गवास हो गया तो यह बहुतही दुःखी हो उठा। सब लोक इनको चाचा चाचा कहते थे पर थे ये दादा ही। पर मूलशंकर को ये बहुत बहुत प्यार करते थे। इस मृत्यु ने इस किशोर के उलझे विचारों में चिनगारी लगादी, यह संकल्पों के सागर में डूबने उतराने लग गया था।

चन्द्रशेखरः—आगे फिर क्या हुआ?

सौमित्रः—तब उस दिन के बाद दुःखी मूलशङ्कर को विवाह की जजीरों से बाँधने की तय्यारी होने लगी; सब सोचते थे कि विवाह बन्धन में बंधकर यह सारी चंचलताभूल जायगा पर इस घटना के साकार होने से पूर्व ही मूलशंकर तो घर से भाग निकला अभी तक नहीं मिल रहा है कहीं!

चन्द्रशेखरः—ओहो! बड़ी विपदा आ पड़ी। यह तो! अच्छा आप अपनी विधि निबटाइये। मुझे विशेष कार्यवश होकर जाना पड़ रहा है, यह सामने ही तो घाट है। (स्वगत) यह मैं क्या सुन रहा हूं जेसा मैंने सोचा वही तो होते रहा है सदा। विश्वविधता की विविधताएं हैं। (सोचकर) रहने दो, ऐसा करूंगा, अभी तो चला चलता हूं। (चला जाता है)

सौमित्रः—कितनी पवित्र नदी है यह सरस्वती, तो नहा लूं अन्दर जाकर (चला जाता है)

(इतने में पीत वस्त्र पहने हुआ मूलशंकर सरस्वती के मन्दिर में प्रविष्ट होता है।)

मूलशङ्करः—जय जय विश्वनाथ ! जगत्पते !

नमस्त्रयीवाङ्मयबोधिताय ते
सनातनाय स्फुरदात्मसंविदे ।
जगत्त्रयस्थापितभिन्नमूर्तये
नमः परस्मै परमात्मने नमः ।। २३ ।।

समागतोऽस्मि सिद्धपुरं, अपि नाम दर्शयिष्यति फ
भूतभावनः । इमानि काषायवासांसि परिधाय मया ना
समञ्जसं विहितम् । यदि अत्रानेकसिद्धसेविते स्थाने संप्राप्ये
जनिमरणनिवारणाय संजीवनौषधिस्तापत्रयोन्मूलनी
भगवन् ! करुणां कुरुष्व । विधेहि साफल्यं जन्मनः (विलोक
अये ! एतत् सरस्वतीमन्दिरम् । अत्र गत्वा विलोकया
यदि नाम भवेत् निवासयोग्यं स्थानं, अथवा कस्या
महात्मनः संगतिः संभवेत् । (दृष्टवा) अहो विविक्तस्था
मेतत् । सम्प्रति विश्रमाय निजासनपरिग्रहं करोमि ।

[इति तिष्ठति एकान्ते, ततः करसनजी प्रविशति]

करसनजी:— अहो चिरार्थितं सौमित्रेण, किं क्वापि
भविष्यति ? कृतं पर्यन्वेषणेन । विपर्यस्ते दैवे को हि
कृतकृत्यो भवति ? [विलोक्य] अहो! रमणीयं वि
मन्दिरं तद् यावन्नागच्छति सौमित्रस्तावत् पर्यटामि ।

[ततः मूलशङ्करः श्लोकं पठति । पिता शृणोति]

मूलशङ्कर -जय जय विश्वनाथ ! जगत्पते !

'नमस्ते त्रयी वाङ्मयरूप को हो
अनन्तादि मध्यात्म शून्येश को हो
त्रिलोकीपते ! विश्व मूर्ते परेश !
शुभानन्द सन्तानकर्त ! महेश" ॥२३॥

सिद्धपुर तो आ गया है, यहाँ के आगमन का सुफल भी भगवान् शिवशंकर की कृपा से मिल ही जायगा। इन पीत वस्त्रों को पहनकर मैंने किया तो आश्चर्य ही है। हे प्रभो! तुम्हारी कृपा से इसी पुण्य भूमि में, सिद्धजन सुसेवित पुनीत धरती पर यदि जीवन मरण के बन्धनों को छुड़ाने वाली महौषधी मिल जावे तो! भगवान् अनुग्रह कीजिये देवदया-निधे! मेरे जन्म को सफल बना दीजिये (देखकर) अरे! यह तो सरस्वती का मन्दिर है। इसमें जाकर देखूं–हो सकता है यहाँ निवास की व्यवस्था स्यात् हो जाय किसी साधु महात्मा की सत्संगति मिल जावे (निहार कर) वाह वाह! यह तो बड़ा ही एकान्त स्थल है। अभी तो विश्राम करलूं यहीं पर।

एकान्त में आसन बिछा लेता है, इतने में करसनजी प्रविष्ट होते हैं)

करसनजी:– भले आदमी सौमित्र ने तो देर लगा दी है। क्या और कहीं चला गया है? नहीं कहीं ढूण्ढ रहा होगा। भाग्य के वाम होने पर किसको सुख मिला है? (देखकर) यह मन्दिर तो बड़ा भारी है, जब तक सौमित्र नहीं लौट आता तब तक घूम ही लूं मन्दिर में।

(तभी मूलशंकर श्लोक पढ़ता है और करसनजी सुनते हैं

मूलशङ्करः—जय जय निखिलनायक ! जय !

नमस्ते देवदेवाय दिव्यधाम्ने महात्मने ।
नमस्ते जगदानन्दहेतवे परमात्मने ।। २४ ।।

करसनजी:—[स्वगतं] कस्यायं स्वरसयोग: ? ननु खलु परिचित इव तर्कयामि । [विचार्य] आ: ज्ञातं, मूलशङ्करेण भाव्यम्।

[तत: मूलशङ्करसमीपं गच्छति । मूलशङ्करोऽपि तातं पश्यति सभयम्]

करसनजी:—[दृष्टवा] वत्स मूलशंकर !

मूलशङ्करः—[सभय] हा तात !

करसनजी:—[परिचित्य] हा पुत्र ! हा वत्स !!

[मूलशङ्कर: पादयो: पतति]

करसनजी:—(काषायवसनं विलोक्य, सक्रोध) आ: पाप ! वंश-विप्लावक ! कृतान्त ! पांसुल ! सूतापसद ! किमिदं व्यवसितम् ? नृशंस ! माता पितरौ जहत: क्रूरस्य करुणालेशोऽपि नास्पृशत्तव हृदयम् ? जाल्म ! किं दर्शयसि मुखम्? धिक् त्वादृशान् कुलकलङ्कभूतान् कुमार्गे पतितान् पुत्रकीटान् !

(इति शरीरात् वस्त्राणि उत्तारयति; मूलशशंकर: पुन: पितु: पादयो: पतति)

मूलशङ्करः—तात, तात ! क्षमस्व क्षमस्व !! दयस्व ! मर्षय बालिशताम् !!

मूलशङ्करः-जय जय भवनायक ! जय जय !

'देवाधिदेव भवनाथ नमो नमस्ते !
ये दिव्य धाम ! परमेश्वर विश्वकर्ता
तू ही समस्त सुखकारण दुःखकर्ता !
आनन्द मङ्गल विधायक विश्वभर्ता ॥१४॥

करसनजी:—(स्वगत-मन में) यह किसकी स्वर लहरी है ? लगता तो है यह परिचित स्वर है (विचार करके) ओ समझ गया, यह मूलशंकर है) वे मूलशंकर के पास जाते हैं भय-भीत मूलशंकर पिता को देखता है)

करसनजी:—(देखकर) पुत्र ! मूलशंकर !

मूलशङ्करः—(डरकर) हाँ, पिता जी !

करसनजी:—(पहचान कर) हाँ बेटा ! हाँ, मेरे लाल !

(मूलशंकर चरणों में गिर पड़ता है)

करसनजी:—(पीत वस्त्रों को देखकर गुस्से में) अरे पापी ! विप्र वंश ध्वंस पतित ! कुपुत्र ! अरे निर्दयी ! यह क्या किया तूने ! पुरुषाधम ! माता पिता को छोड़ते हुए तेरे हृदय में थोड़ी सी भी करुणा नहीं जागी ? अनार्य ! जालिम ! क्यों दिखा रहा है अपना मुख ? तुझ से कुलकलंकी कुसन्तान को धिक्कार है, धिक्कार शतवार।

(इतना कहकर मूलशंकर के शरीर से पीत वस्त्र उतारते हैं, मूलशंकर फिर से चरणों में लोट जाता है।

मूलशङ्करः—पूज्यपाद ! पितृचरण !! पितृचरण!!! क्षमा कर दीजिये एक बार प्रभो ? मेरी मूर्खता पर दया कीजिये पिताजी !

पापे निसर्गकुटिले मलिनस्वभावे
मुग्धे विवेकविकले विषमे विधेये ।
कारुण्यलेशरहितेमयि मन्दभाग्ये
हा, तात, तात ! करुणां कुरुष्व !! २५ ।।

करसनजीः—दूरं व्रज दुरात्मन् ! धमलुण्टाक !

(ततः प्रविशति सौमित्रः)

सौमित्रः—क्षमस्व, क्षकस्व; महाराज ! वत्सस्य दोषम् ।

करसनजीः—[विलोक्य] ननु एह्येहि सौमित्र ! एष वर्तते । पश्य पापपांसुलम् । [सक्रोध] पश्यति मूलशंकरम्]

सौमित्रः—[स्वगतं दृष्टवा] अहो ! नैसर्गिकमूर्जस्वलं । [प्रकाशं] भगवन् ! क्षन्तव्योऽयं शिशुः, न गतं शोचनीयं, भवितव्यताकं न खलीकरोति ? निरवग्रहो विधिः सज्जनमपि विडम्बोयति । मूलशंकर ! न त्वया समीचीन व्यवसित, दुःखाकर हि तनयवियोगः; शैशव एव स्वाच्छन्द्यं भाग्यवन्तमपि विनाशयति पुरुषम् ।

मूलशङ्करः—[सविनयम्] महाभाग ! क्षन्तव्योऽस्मि ।

करसनजीः—धूर्त ! ननु, पुनरपि गमिष्यसि ?

[इति ताडयितुं व्रजति, मध्ये]

सौमित्रः—भगवन् कोऽयं व्यामोहः ?

[इति निवारयति]

करसनजीः—[सौमित्रं दृष्टवा]सौमित्र ! अस्नात इव कथं लक्ष्यसे ?

सौमित्रः—अहमपि सरस्वतीतीरे कस्यचिन् मुखान्मूलशंकरस्यात्रागमन विदित्वा प्रत्यावृत्तः ।

"मैं पाप पंक गतदुर्मति पुण्य हीन'
सद्बुद्धि शून्य अघ मण्डित दीप्तिहीन।
मैं दुःख पापमय मंगल भाव दीन!
हे तात! आप करिये करुणा प्रवीन ॥१५॥

कर .नजी:—भाग न पापी यहाँ से धर्म लुटेरे!

(इतने में सौमित्र प्रविष्ट होता है)

सौमित्रः—महाराज। क्षमा कर दीजिये इसे, बालक ही तो है यह।

करसनजी:—(उसकी ओर देखकर) अरे भाई सोमित्र! यहाँ आ जाओ तुम मेरी ही पास; यह है वह कुल घातक देख लो इसे। (क्रोध से देखते हैं मुलशंकर को)

सौमित्र:—(मन में ही देखकर) क्या बढ़िया है स्वाभाविक तेजस्विता इसमें। [प्रकाश] भगवान्। क्षमा दे दीजिए अव तो इसे। भवितव्यता किसको बुरा नहीं बना देती है? यह तो बच्चा जो ठहरा, विधाता पर किसका वश चलता है? यह तो सज्जनों को भी छिलां कर देता है। मूलशंकर। यह तुमने अच्छा नहीं किया; सन्तान का वियोग अति दुःसह होता है। शैशव की स्वच्छन्दता भाग्यशालियों को भी तोड़ मरोड़ कर रख देती है।

मूलशंकर —(हाथ जोड़कर) महाशय। पितृपाद। क्षमा चाहता हूं।

करसनजी:—धूर्त! नहीं तू फिर भी जायेगा? घर से फिर भागेगा?

(मुलशंकर को मारने दौड़ते हैं बीच में)

सौमित्रः—महानुभाव। यह क्या कर रहे हैं? (रोकता है)

करसनजी:—(सोमित्र को देखकर) क्यों सोमित्र! विना स्नान किये ही लौट आये क्यों हो तुम तो?

करसनजी:—भवतु, अद्य अत्र स्थित्वा सरस्वतीस्नानपुण्यमनुभूय विभावर्य्यां तीरोपकण्ठे पथिकाश्रमे स्थातव्यम् । [मूलशंकर प्रति] पुरतो भव । मूढ !

सौमित्रः—एहि मूलशंकर ! एहि !!

[इति सर्वे निष्क्रान्ताः]

[स्थानं पथिकाश्रमः, मध्यरात्रिसमयः, चन्द्रशेखरः]

चन्द्रशेखरः—[सवितर्कम्] सरस्वतीमन्दिरस्य नेदिष्ठे मूलशंकरः सह जनकरक्षकाभ्यां रात्रिवासाय कृतस्थितिरिति गुणेन्दुना निवेदित; एष पथिकाश्रमः । अहो ! एकतानं विद्योपार्जने मूलशंकरस्य महान् विनिपातः संप्रति । जनकगृहीतस्य तस्य न भविष्यति पुनर्मोक्षः । अहो ! तादृक्षाणां स्वयंस्फुरितशेमुषीणां गुणार्जनसमूर्जितानां निग्रहो नाम निदानमधःपातस्य। एवं न जाने कियन्तो भारतीपुत्रा अन्धतामिस्त्रं चानुभवन्ति ... भवतु । तत्रैव गच्छामि । [विलोक्य] एतन्मन्दिरं, इयं धर्मशाला । प्रविशामि । कथं अपावृतं द्वारम् ? अहो ! सर्वत्र बलीयानन्धकारः, कथमुपलब्धिर्भवेत् ? [आकर्ण्य] हन्त कस्यापि पदध्वनिः श्रूयते । जाने, इत एवागच्छति। [तूष्णीमास्ते]

[ततः प्रविशति मूलशंकरः]

मूलशङ्करः—[सखेदं] हा ! धिक् ! निगृहीतोऽस्मि तातेन । अवश्यं नेष्यति गृहम् । किं करोमि ? उन्मूलिता समुलं दैवेन मे मनोरथलता । भग्नः समुत्साहः । भगवन् ! दर्शय, दर्शय दयामय ! पन्थानं मे ।

सौमित्र:--सरस्वती के तट पर मैंने मुलशंकर के यहाँ आने की बात सुनी तो विना नहाये ही लौट गया।

करसनजी:—अच्छा, चलो अभी तो सरस्वती के पुण्य सलिल में गोता लगा लें, और रात को सरितातीर की धर्मशाला में विश्राम करेंगे।

(मूलशंकर से) दुष्ट ! चल, आगे आगे !

सौमित्रः—इधर आ मूलशंकर ! इधर आ।

(सब चले जाते हैं)

(स्थान धर्मशाला, आधी रात का समय और चन्द्रशेखर)

चन्द्रशेखरः—(सोचता हुआ) गुणेन्दु ने बताया था कि सरस्वती के तीर के निकट कों धर्मशाला में ही मूलशंकर अपने पिता और रक्षक के साथ ठहरा हुआ है। यही तो है धर्मशाला ! अब तो बेचारे मूलशंकर का विद्योपार्जन की कामना समाप्त हो गयी ! पिता के बन्धन के क्या छूट पायेगा यह फिर से ? वस्तुतः ऐसे तेजस्वी पुरुषों का गृहस्थ बन्धन बड़ा ही पतन का कारण बन जाता है। इसी प्रकार से न जाने कितने कितने भारतीय सुपुत्र अन्धकार में भटकाये जाते हैं !------ अच्छा वहीं पर चला चलूं।

(देखता हुआ) यह तोमन्दिर है और यह रही धर्मशाला। अन्दर चलूँ। पर यह द्वार कैसे खुला है ? कितना घना अन्धकार है, कैसे मिला वह ? (सुनता हुआ) अरे ! यह तो किसी के पद चाप सुनायी पड़ रहे हैं। लगता है, इधर आ रहा है। चुपचाप खड़ा हो जाता है)

(मूलशंकर आता है)

मूलशंकरः—(दुखी होकर) क्या करूं, अब तो पिताजी ने पकड़ लिया है, घर जाना ही होगा, भगवान् सारी योजना धूल में मिला दी हैं। उत्साह मिट चुका है। भगवान् मेरा मार्ग दर्शन कर !

[इति चिन्तयति]

चन्द्रशेखर :–कथं स एव स्वरसंयोगः, व्यक्तं मूलशङ्कर ए
[समीपं गत्वा] शङ्कर ! मूलशंकर ! !

मूलशङ्कर :–[समयं] ननु को नामाह्वयति माम् ? समुत्थि
किं तातः [विलोक्य] नहिं, सौमित्रोऽपि निद्राति।
कोऽपि न दृश्यते ?

चन्द्रशेखर :–मूलशंकर ! शंकर !

मूलशङ्कर :–हन्त ! स एव शब्दः। को भविष्यति। ननु प
चितमेव मन्ये [प्रकाशं] कस्त्वं ईदृशे समये मूलशंकर
शं-करः ?

चन्द्रशेखर :–[समीपं आगत्य] महाभाग ! अहमस्मि
परिचितः पथिकः शिवरात्रिसमयस्य सिद्धपुरनिवासी।

मलशङ्कर :–कथं महामान्यः चन्द्रशेखरः किम् ?

चन्द्रशेखर :–अथ किम् ? वत्स !

मूलशङ्कर :–(सहर्षं) नमस्ते महात्मन् !

चन्द्रशेखर :–[ससंभ्रमं] शंकर ! निश्चितं ब्रूहि। कस्ते व्यवसा

मूलशङ्कर :–[स्वागतं] विदितोऽनेन वृत्तान्तः [प्रकाशं]
वदामि ? दोलायितं मे मानसं, न निश्चयम
गच्छति। तत्त्वमेव दर्शय मार्गम्।

चन्द्रशेखर :–विश्वचक्षुर्भगवान् दर्शयिष्यति तव सरणि
[इति कर्त्तव्यं चिन्तयति]

मूलशङ्कर :–[स्वगतं] हन्त ! अतिमुग्धोऽस्मि। किं करोमि

चन्द्रशेखर : यह तो वैसा ही स्वर लग रहा है मूलशंकर जैसा (निकट जाकर) शंकर ! मूलशंकर !!

मूलशङ्कर : (भयभीत हुआ) कौन बुला रहा है मुझे ? पिता जी क्या जग गये हैं ? (देखकर) नहीं तो, सौमित्र भी तो खुर्राटे भर रहा है। क्यों दीख नहीं रहा कोई भी ?

चन्द्रशेखर : मूलशंकर !

मूलशङ्कर : वैसा ही शब्द है यह, कौन होगा यह ? लगता तो कोई परिचित ही है। (प्रकाश में) महाभाग कौन हैं आप ऐसे समय में मुलशंकर के कल्याण करने वाले ?

चन्द्रशेखर : (निकट जाकर) महाशय मैं हूं तुम्हारा सिद्धपुर वासी परिचित पथिक जो शिवरात्रि के समय टंकारा में था।

मूलशङ्कर : क्या आप चन्द्रशेखर हैं ?

चन्द्रशेखर : और क्या पुत्र !

मूलशङ्कर : नमस्ते महाराज !

चन्द्रशखर : (सावधानी पूर्वक) शंकर ! क्या कर रहे हो तुम, सच सच बताओ ?

मूलशङ्कर : (मन में) लगता है इनको समाचार ज्ञात हो गया है (प्रकाश में) क्या बताऊं ? मेरा मन तो चंचल हो उठा है। कहीं चैन नहीं मिल रहा, कृपया आप ही कोई मार्ग सुझाइये !

चन्द्रशेखर : विराट् पुरुष भगवान् ही तुम्हारा मार्ग दर्शन करेंगे। (इस प्रकार कर्तव्य का चिन्तन करता है)

मूलशङ्कर : (स्वगतं) हाय राम ! मैं तो कुछ नहीं सोच सकता ! क्या करूं कहाँ जाऊं ?

अन्तस्तत्त्वं कलयति महामोहमभ्येति चेतः
चिन्ताचक्रं श्रयति, सकलोन्मेषशून्यं च चक्षुः।
प्रादुर्भावादुपहतविधेर्मुह्यतीवान्तरात्मा
प्रत्यालिङ्गत्यविरतमिदं ज्योतिरात्मीयमन्तः ॥२६॥

[इति चिन्तयति]

चन्द्रशेखर :—[मूलशंकरं विलोक्य स्वगतं] अहो ! कामं व्याकुलोऽयं शिशुः, अथवा किं करोतु मुग्धचेताः ? एकतो विनिपातः, परतः परव्यामोहः।

वारं वारं तिरयति मनस्येकतः स्नेहपाशः
संकल्पेन क्षिपति पटुतामन्यतः स्वार्थभावः।
योगस्तावत्तरलघटनोद्बोधसर्वंकषोऽयं
प्रत्यावृत्य प्रसरति बहुर्मन्दिमानं विधत्ते ॥ २७ ॥

[प्रकाशं] मूलशंकर ! ननु कां विकल्पनासोपानश्रेणिमारूढोऽसि ?

मूलशङ्कर :—किं भणामि ? महाभाग ! मम तावत्—

स्नेहाकुलः परमधर्मपरः पिता मे,
निस्पन्दिमानसमथ ज्वलतीव कायः।
वृत्तिर्विवेकविधुराऽम्बरचुम्बिनीच च
किं वा करोमि विषये ननु मन्दभाग्यः ॥२८॥

चन्द्रशेखर :—ननु द्रढीयान् संकल्पस्तव निजसाध्यसंपादनाय

मूलशङ्कर :—ओम्।

'अन्तस्सार बता रहा सुपथ तो, मोहान्धहै मानस,
चिन्ताचक्र चलायमान बहुधा है आँख अपि रुद्धसी।
दुर्भाग्योदय हो रहा है नित ही, आत्मा हुआ मुग्धभी,
तो भी ज्योति उभार से भर रहा शुद्धांतरात्मा मम।'

(सोच में पड़ जाता है)

चन्द्रशेखर : (मूलशकर को देखकर मन में) ओहो ! यह किशोर तो बहुत ही व्याकुल हों रहा है। परन्तु कर भी क्या सकता है कोई आत्मा का मारा ? एक ओर से पतन है और दूसरी ओर से भयंकर मोह।

स्नेह पाश बाँध रहा है बार बार इसके मन को,
सघन, विचार कथित करते हैं इस बालक के तनको
सकल स्वार्थं के भाव फेंकता यत्न शक्ति यह कितना है !
योग साधना निरत इसीका सिद्ध दशा में कितना है ?
आगे पीछे गमन करके मन्दिता को बढ़ाता,
जाने क्या २ लिखित करता जा रहा है विधाता ॥२७॥

(प्रकाश में) मूलशंकर ! किन सोच विचारों के चक्कर में फँस गये हो तुम ?

मूलशङ्कर : क्या कहूं श्रीमान् ? मेरा तो—

"स्नेहाधीन परार्थभाव मन में मेरे पिता के बसा,
मेरा देह सदैव अन्य सुख के हेत्वर्थं सन्नद्धसा।
प्राय: वृत्ति शुभापरार्थ-घटिका विज्ञान सद्भाविनी,
क्या बोलूं तज मैं कहाँ अब चलूं, दुर्भावविध्वंसिनी ॥२८॥

चन्द्रशेखर : क्यों तुम्हारा संकल्प साध्य प्राप्ति के लिये सुदृढ़ है न ?

मूलशङ्कर : हा जी,

चन्द्रशेखर :–ततः सर्वथा शिवतातिः, कल्याण करिष्यं जगन्नायकः; सम्प्रति विहाय पितरं मया स समागच्छ । फलिष्यति ते मनोरथः ।

मूलशङ्कर :–ननु वञ्चनाप्रत्यवायः ।

चन्द्रशेखर :-मा मोहमावह । नास्ति प्रत्यवायः सत्यपथपथिकस्य ते, तत त्वरितमेहि; आगच्छ ।

मूलशङ्कर :–क्व नेष्यति भवान् माम् ?

चन्द्रशेखर :–ननु वत्स ! सर्वं ज्ञास्यसि, अहं तथा करिष्ये यथा न त्वां पुनस्तातस्ते द्रक्ष्यति ।

मूलशङ्कर :–[स्वगतं]

किं गच्छामि विहाय पूज्यपितरं ? स्नेहावबद्ध मनो-
ज्योतिः प्रेरयतीव पुण्यपदवीं, भोगेन किं भूयसा ?
हेयं स्वार्थवशादिदं प्रणयिनां वृन्दं नृशंसात्मना ।
स्थेयं वा किमु कुत्सितान्धतमसः पादेन भग्नात्मना ॥२९॥

[प्रकाशं] महाभाग ! किं करोमि, मुग्धोऽस्मि ।

[इति अश्रूणि पातयति]

चन्द्रशेखर :–वत्स ! सर्वथा भव्यं विधास्यति भूतभावनः, क मोहावसार एष ते ? कथं, न विविदिषा सत्यस्य परात्मनः ? स्मर स्मर, शिवरात्रिमहोत्सवम् ।

मूलशङ्कर :–स्मरामि, स्मरामि, तदेव निदानं गृहत्यागस्य ।

चन्द्रशेखर : तब तो भगवान् शिवशंकर जगन्नाथ अवश्य ही तुम्हारा कल्याण करेंगे। चलो अभी मेरे साथ! पिता को छोड़ कर! तुम्हारा मनोरथ अवश्य फलेगा।

मूलशंकर : किन्तु विश्वासघात करना पाप जो लगेगा।

चन्द्रशेखर : मोह करने की आवश्यकता नहीं है। सन्मार्ग पर चलने वाले तुम्हें किसी प्रकार का पाप नहीं लगेगा। तो शीघ्रता करो, चले चलो मेरे साथ।

मूलशंकर:—कहाँ ले जाओगे मुझे?

चन्द्रशेखर:–देखो पुत्र मेरे साथ चल पड़ो, तुम स्वयं जान जाओगे कि तुम कहाँ जा रहे हो! मैं तुम्हें ऐसी जगह ले जाऊँगा जहाँ तुम्हारे पिता तुम्हें देख भी न सकें।

मूलशंकर:—(स्वगत मन में)

क्या मैं छोड़ चलू, महाजनक को यों, तुच्छ सा आज ही।
मेरा तो मन मोहशील अति है, है प्रेरणा दीप्त ही
भोगों से भव में न पुण्य मिलता, संत्याज्य है स्वार्थिता,
सच्ची केवल ईश लाभ करनी, भव्यतार्थं तेजस्विता ॥२९॥

(प्रकाश में) भगवान्! क्या करूं मोह मेरा पिण्ड नहीं छोड़ता।

(ऐसा कह कर रोता है)

चन्द्रशेखर—वत्स! भगवान् कैलासपति महादेव सब कुछ शुभ करेंगे। ऐसे समय मोह करना उचित नहीं है। याद करो न शिवरात्रि की स्थायी निशा का! क्या सत्य शिलरात्रि की इच्छा नहीं है अब?

मूलशंकर:—खूब स्मरण है मुझे! तभी तो गृहत्याग किया मैंने!

अद्यापि तिष्ठति दृशोस्तदमेयरूप
ज्योतिः पर चरमधाम मनःप्रविष्टम् ।
येन क्षण तिमिरपुञ्जमपास्य दिव्यं
चैतन्यमर्पितमहो हृदये मदीये ।।३०।।

चन्द्रशेखर :—एहि, एहि । मा निश्चय जहीहि ।

मूलशङ्कर :–[चिन्तयित्वा] प्रभो ! चराचरात्मन् ! एष ते शिशोश्चरणावकाशः [तातं प्रति] पूज्य ! मर्षय, मर्षय बालिशस्यापराधम् । गच्छामि, प्रियतात ! एष ते शिशोः पश्चिमः प्रणामाञ्जलिः; नहि तेऽतः परं मूलशंकरस्य मुखदर्शनम् ! हा मातः ! अमृते ! स्नेहतरले ! जहामि त्वां मन्दभागिनीम्; [साश्रुः] आः भ्रमति मे चेतः !

चन्द्रशेखर :—एहि, वत्स ! एहि ।

मूलशकर :– एष आगच्छामि । नमः परमात्मने नमः ।

[इति निष्क्रान्तौ ।]

इति महाभिनिष्क्रमणं नाम द्वितीयोंकः ।



"ज्योतिः प्रविष्ट मम मसस में—
अभी वो, जो भासती मुखर–सी असमान दिव्य।
मेरे बुझे हृदय में इसने जलाई,
सत्यार्थ लौ न बुझती हठ सेसुभव्या ॥ ३० ॥

चन्द्रशेखरः – इधर आओ इधर आओ, अपने सुनिश्चय को मत छोड़ो !

मूलशंकरः—[विचार करके] हे विभो परमेश्वर चर अचर के स्वामिन् ! यह रहा मेरा शिर आपके चरणों में ! [पिता के प्रति] पूजनीय ! क्षमा कीजिये, मुझ अभागे बालक को अपराध को ! हे श्रद्धास्पद गुरुदेव ! पितृपद ! आज्ञा दीजिये, मैं आपके चरणों में अन्तिम प्रमाण करता हूं। अब आपको मूलशंकर का मुख फिर देखने को नहीं मिलेगा। हाय री माँ ! पीमूषमयि ! स्नेहपूरित ! यह अभागा आपको भी छोड़कर जा रहा है।

आजा [आंसू गिरते हैं] हाय रे ! मेरा मन चकरा रहा है।

चन्द्रशेखरः—इधर आओ इधर आओ पुत्र !

मूलशंकरः—यह आया प्रभो ! परमात्मा को शत सहस्र नमन हों !

[दोनों चले जाते हैं]

द्वितीय अंक समाप्त



तृतीयोऽङ्कः ।

।। यद्भद्रं तन्न आसुव ।।

(स्थानम्—नर्मदातीरम्, ब्रह्मचारी-शुद्धचैतन्यः । समयः प्रातः)

शुद्धचैतन्यः—(प्रविश्य) जय, जय विश्वम्भर ! जगन्नायक ! समागतोऽस्मि सिद्धपुरात् । तत्र भवतश्चन्द्रशेखरस्य वेदविद्यालयं विहाय तदनुमतः सांप्रतमत्र जनिमरणभयध्वंसिनीं संजीवनौषधिं मृगयितुम् ।

श्रुतं मया कर्णपरंपरया यदत्र नर्मदातीरे प्रत्युत्पन्नविशुद्धधारणाः समाधिमन्तः समस्तयोगपरिकर्मपारदृश्वानः प्रतिवसन्ति । दुर्लभं ननु दर्शनं परमात्मतत्त्ववेदिनाम् । एतदर्थमेव मया निसर्गस्नेहबन्धुरं बान्धवजनं परित्यज्य समादृतो महान् आयासः । अथवा किमतिक्रान्तस्मरणेन ? हन्त ! सर्वथा दुरुच्छेद्याः स्नेहपाशाः, येषु निगडितो जन्तुर्न जातु तस्मान्मोचयितुं प्रभवत्यात्मानम् । सांप्रतं मया समूलमुन्मूलनीयास्ते संस्काराः । यतस्ते स्मृता अनुशीलिता वा कर्षन्ति निजपादमूले ।

मान्या हि ते जनकजननीसोदरसुहृदः, परं न हि ते मदीयमानसशोकशल्यमुन्मूलयितुं समर्थाः । आः किमिदं विकल्पयामि ? यत्सर्वथा न शोचनीयं तदेव स्मृतिपथं समागत्य पुनः पुनर्मामाकुलयति । अहो परमं सौख्यमासीच्चन्द्रशेखरस्य विद्यालये । महानुभावः स महात्मा । न तादृशा निसर्गकरुणामृतनिधयः सर्वत्र जायन्ते । ननु तेनैव पुण्यात्मना प्रतिपदं पावनशिक्षामृतसेचनेन तस्मिन्नवसरे मन्दीभूतो मम मनोरथाशांकुरः प्ररोहितः । किन्तु तत्रापि

"यद् भद्रं तन्न आसुव"

स्थान—नर्मदा का शान्त तट, ब्रह्मचारी–शुद्ध चैतन्य बैठा हुआ, समय प्रातः ९ बजे

शुद्धचैतन्य : जय हो, जय हो भगवान् विश्वनाथ तेरी ! मैं सिद्धपुर से आ रहा हूं, आचार्य प्रवर चन्द्रशेखर के वेद विद्यालय को छोड़कर, उन्हीं की आज्ञा लेकर अभी अभी तो चला आ रहा हूं, मैं जन्म मरण के सुदृढ़ पाशों को काटने वाली संजीवनी सुधा को खोजने के लिए यहाँ भगवती नर्मदा के पुनीत तट पर।

मैंने भी तो कर्ण परम्परा से वह सुन ही रखा है कि पतित पावनी भगवती नर्मदा के कान्तकूलों पर निवास करते हैं समाधि सिद्ध योगिराज ! ऐसे महात्माओं के दर्शन अति दुलभ हैं, इसी लिए तो मुझे अपने भरे पूरे परिवार को सदा के लिये अन्तिम नमस्कार करना पड़ा है। वैसे तो अब लाभ ही क्या है इस अतीत के स्मरण से ? सांसारिक मोहपाशों में मनुष्य इतना सृदृढ़ बंधा हुआ है कि छोड़ ही नहीं पाता अपने जन्म जन्मान्तरों के बन्धनों को, अब तो मुझसे ये मोहमाया के बन्धन नहीं सहे जाते।

माता पिता भाई बहन सगे सम्बन्धी सब हैं तो पूजनीय पर, मैं क्या करूं ? ये मेरे मानसशल्य को नहीं निकाल सके हैं। छी, मैं भी कहाँ कहाँ भटकने लग लया ? मुझे क्या लेना है इन सबसे अब ! छोड़ दिया। ओ हो ! सिद्धपुर में गुरुदेव चन्द्रशेखर के विद्यालय में बड़ा आनन्द आ रहा था, वे तो बड़े ही भले थे, ऐसे महानुभाव सर्वत्र कहाँ मिलते हैं ? ये ही तो थे महाशय, जिनकी महती कृपा से मेरा अध्यात्मोन्मुख मन अंकुर

दुर्घटः खलु परमात्मविद्यालाभः। अतस्तमपि विहा[illegible] पर्यटामि वात्ययेव जीर्णपत्रमहम्। भवतु गच्छा[illegible] नर्मदातीरम्। (दृष्ट्वा) मन्ये, दूरात् कोऽपि संन्यासी[illegible] दृश्यते।

शुद्धचैतन्य :—ॐ नमो नारायणाय।

संन्यासी—नारायण ! ब्रह्मचारिन् ! कस्मिन् मठे वससि ?

शुद्धचैतन्य :—भगवन् ! आगन्तुकोऽहं, नाहमत्र वसामि।

सन्यासी—किमागन्तुकः ! कस्ते योगपटः ?

शुद्धचतन्य :—शुद्धचैतन्य इति।

संन्यासी—अपि नाम कृतश्रमोऽसि शास्त्रे ?

शुद्धचैतन्य :—तिमहाराज ! जाने यथामति। अतः पर वर्त[illegible] विविदिषा परमात्मतत्त्वस्य येनाहममृतं स्याम्।

संन्यासी—आम्, अमृताय समुत्कण्ठते चेतस्ते ! ब्रह्मचारिन्! अवाङ्मनसगोचरं तत्तत्त्वम्। तत्प्राप्तये परमकुशला अपि खलायन्ते, मेधाविनोऽपि मन्दायन्ते, धर्मधुरंधरा अपि कुण्ठितायन्ते। ततः का कथा परेषां मन्दमनीषिणाम् ?

[शुद्धचैतन्यः तूष्णीं भवति]

शुद्धचैतन्य ! क्व ते मातापितरौ ?

शुद्धचैतन्य :—सौराष्ट्रे।

सूखकर भी हरा भरा हुआ था, परन्तु उनके पास लौकिक विद्या तो थी किन्तु परमात्म-विद्या नहीं थी। अब तो मैं उन्हें छोड़कर वैसे ही घूम रहा हूं इधर जैसे आंधी के झकोरे से पुराने पत्ते। अच्छा, सीधे नर्मदा के तीर पर चलूं, (देखकर) लगता है, दूरी पर कोई संन्यासी महात्मा है।

शुद्धचैतन्य : (प्रणाम करता हुआ ॐ नमो नरायणाय।

संन्यासी : नारायण! नारायण ब्रह्मचारिन्! कौन से मठ में निवास करते हो?

शुद्धचैतन्य : महाराज! मैं तो प्रवासी यात्री हूं अभी आया हूं यहाँ पर।

संन्यासी : आगन्तुक हो! तुम्हारा गुरुप्रदत्त नाम क्या है?

शुद्धचैतन्य : भगवन्! शुद्धचैतन्य है।

संन्यासी : शास्त्राध्ययन तो किया होगा?

शुद्धचैतन्य : थोड़ा बहुता, बुद्धि के अनुसार, अब तो एक ही जिज्ञासा है कि परमात्म-तत्व का बोध हो जाय, जिससे मैं अमृत बन जाऊं स्वामिन!

संन्यासी : ब्रह्मचारिन्! तुम्हारा मन अमृत-पान के लिए विकल हो रहा है। यह परमात्म-तत्व तो इन्द्रिया-गोचर है, ईश्वर प्राप्ति में तो बड़े बड़े पथ भ्रष्ट हो जाते हैं, बुद्धिमान् भी विमूढ़ बन जाते हैं, धर्म-धुरीण भी कुंठित हो उठते हैं। फिर सर्व-साधारण की तो बात ही क्या है?
(शुद्धचैतन्य चुप हो जाता है)
शुद्धचैतन्य? तुम्हारे माता पिता कहां रहते हैं?

शुद्धचैतन्य : सौराष्ट्र में।

संन्यासी–[स्वगतम्] दृढग्रहाः सौराष्ट्रवासिनः [प्रकाशम्] अस्ति नवात्र परिचयः ?

शुद्धचैतन्य :–न हि ।

संन्यासी–[विचिन्त्य] ततस्त्वं नर्मदातटनिवासिनां तत्रभवतः श्रीपूर्णानन्दसरस्वतीनां शरणमेहि । ते हि महात्मानो वेदान्तविज्ञानां प्रवीणाः परमात्मतत्वं तावद् नोपदेक्ष्यन्ति, यावत् त्वदीयं हृदयं तत्र तादृशां परेषामपि पूतात्मनां संगतौ विरजी भविष्यति । यथाऽहं मन्ये तथा सर्वमपि ते फलिष्यति । किन्तु...

शुद्धचैतन्य :–ननु आज्ञापयितव्यः ।

संन्यासी–तदेव यदि भवान् संन्यासदीक्षामङ्गीकुर्यात् ।

शुद्धचैतन्य :–अस्ति ममाऽपि वृत्तिर्भगवन् ! कर्त्तव्यमेव प्रेरितोस्मि । ननु क्वास्ति तेषां मठः ?

संन्यासी–अनेन पथा गच्छता दक्षिणहस्तरथ्यातिक्रमणं गन्तव्यं भवता, निवासस्थान खलु प्रसिद्धं तेषाम् ।

शुद्धचैतन्यः–अनुगृहीतोऽस्मि । ननु पृच्छामि तत्रभवतां भवतामपि कस्मिन्प्रदेशे निवासः ?

संन्यासी-[विहस्य] वत्स, अहमपि तमेव भगवन्तं सेवे । सांप्रतं कार्यान्तरं साधुयितुं गच्छामि । त्वमपि तत्र व्रज । नारायण, नारायण ! [इति गतः]

संन्यासी : (स्वगत) सौराष्ट्र निवासी होते तो बड़े जिद्दी हैं (प्रकाश में) यहां तुम किसी को जानते हो ?

शुद्धचैतन्य : नहीं तो महाराज !

सन्यासी : (विचार कर) तो तुम नर्मदा तट पर योगाभ्यासी माननीय पूर्णानन्द सरस्वती के चरणों में जा रहो। ये प्रकांड विद्वान् हैं वेद वेदांग के ! ईश्वर विषयक उपदेश तब तक नहीं देते जब तक जिज्ञासु के समस्त दोष दूर नहीं हो जाते। मेरी इच्छा यही है कि तुम वहाँ जाकर अपनी मनः कामना पूर्ण करो। किन्तु—

शुद्धचैतन्य : कहिये, कहिये ! सेवक को आज्ञा प्रदान कीजिये न !

संन्यासी : यह तभी सम्भव है जब कि तुम सन्यासाश्रम में दीक्षित होना स्वीकार कर लोगे।

शुद्धचैतन्त : भगवन्। मैं भी यही चाहता हूं। आपने मेरी ही बात मुझे सुनाई है महाराज ! बताइये तो कहां है उनका मठ ?

सन्यासी : सामने इस मार्ग से चलकर दाहिने हाथ को लांघ कर आगे चले जाना। उनका आश्रम सभी जानते हैं।

शुद्धचैतन्य : अनुगृहीत हो गया हूं महाराज मैं तो। मैं पूछ सकता हूं कि आपका मठ कहां है ?

संन्यासी : (हंस कर) वत्स ! मैं भी उन्हीं महाराज के चरणों में रहता हूं। कार्यवश थोड़ा बाहर जा रहा हूं। तुम वहीं चले जाओ; नारायण ! नारायण !

(संन्यासी चला जाता है)

शुद्धचैतन्यः–अस्तु, तत्रैव गमिष्यामि। [विचिन्त्य] अवश्यं संन्यासदीक्षाग्रहण कर्त्तव्यम्। कष्टा ब्रह्मचर्यचर्या। विद्याव्यासंगः स्वातन्त्र्यं च तिरस्करोति। भवतु। तत्रैव गच्छामि। जय भगवन्! जय!!

[इति निष्क्रान्तः]

[ततः प्रविशति श्रीपूर्णानन्दः सशिष्यः]

पूर्णानंदः—यस्मिन् व्योममरुन्महारसधराभूतात्मकं भूरिशः
सत्ताहीनमदोविवर्तमखिलं ह्याभासिकं दृश्यते।
तत्वं भाति समस्तभेदरहितं मायापरं पावनं
ब्रह्मेति प्रविदां पर परतर सत्यं सदा धीमहि॥१॥

पण्डित :–ॐ नमो नारायणः।

पूर्णानन्द :–नारायण, पण्डितराज! कथं चिरायितम्?

पण्डितः–स शुद्धचैतन्यः संप्रत्येव गतो मत्पार्श्वतः। भगवन्, पिपासुः स विज्ञानामृतं, प्रतिदिनमभिरुचिस्तस्य वर्धते। अथवा जन्मान्तरीयमान्तरं ज्योतिः शतशः संरुध्यमानमपि प्रज्वलति। को हि नाम निरवग्रहगरिमाणं निवारयति!

कश्चित्–पण्डितवर्य मयाऽप्यनुभूतम् न जातुचित् अस्मन्मण्डलमध्ये तादृशः कोऽपि दृष्टचरः। प्रतिभाऽपि नवनवोन्मेषशालिनी वेदान्तविज्ञानविचाररचनासु दुर्बोधास्वपि त्वरितं शङ्काग्रन्थि मोचयति।

पूर्णानन्दः–सत्यम्। अल्पीयान् तस्य समयः समागतस्य। इयति समये मनीषिजनकष्टानि तेन तंत्राणि स्ववशेमुषीप्रकाशेन विशदीकृतानि।

शुद्धचैतन्य : अच्छा तो वहीं चला जाता हूं। (सोचकर) संन्यास दीक्षा तो लेनी ही होगी। ब्रह्मचर्याश्रम की साधना तो बड़ी ही कठिन है। इस ब्रह्मचर्याश्रम से तो स्वाध्याय और स्वातंत्र्य दोनों नष्ट हो रहे हैं। चला चलूं उसी ओर, भगवन् ! शत सहस्र नमन हों, नमन हों ...

(चला जाता है)

[शिष्यों के साथ स्वामी पूर्णानन्द का प्रवेश]

पूर्णानन्द:—जो देव व्योमजल तेज मरुद् धरा के,
रूपस्थ है सकल विश्व विवर्तभावी।
पूतातिपूत परमेश विभेद हीन,
सत्य स्वरूप कवि वर्यं नमोस्तु तुभ्यम् ॥ १ ॥

पंडित:—ओम् नमो नारायण।

पूर्णानन्द:—नारायण, नारायण ! पंडित राज ! विलम्ब क्यों हो गया ?

पंडित:—वह शुद्ध चैतन्य ब्रह्मचारी अभी अभी गया है मेरे पास से। भगवन् ! उसकी विज्ञानामृतपान की प्यास दिनोंदिन बढ़ रही है। अथवा जन्म जन्मान्तर की आन्तरिक ज्योति कहाँ रुक पाती है शतसहस्र अवरोधों से भी ? कौन है ऐसा जो ऐसी वैराग्य भावना को रोक सके ?

एक पुरुष:—पंडितराज ! मेरा भी ऐसा अनुभव है। हमारी मण्डली में ऐसा कोई प्रतिभावान् है नहीं और कोई। वेदांत के कठिनतम शंकाग्रन्थियों को भी बड़ी सरलता से खोल देता है यह तो !

पूर्णानन्द:—सत्य है यह ! इसे आये हुये थोड़ा सा ही समय हुआ है, तो भी इस अवधि में वे सभी तन्त्र ग्रंथ बुद्धिगम्य कर लिये हैं, जिनके पढ़ाने में विद्वानों के दाँत खट्टे हो जाते हैं।

पण्डितः–धन्यास्ते शिष्या येषु गुरवः संस्निह्यन्ति । ! भगवन् ! अपि तस्य प्रार्थना भवन्तमनुकूलयिष्यति ?

कश्चित्–को दोषस्तत्र ?

पूर्णानन्दः–महाभाग ! सर्वं जानामि । तथापीदानींतनानां संन्यासमार्गप्रवृत्तानां संन्यासिनामुभयलोकगर्हितां दशामालोक्य न समुत्सहे तमपि तत्र गर्ते पातयितुम् ।

[पण्डितस्तूष्णीं भवति]

महाशय ! शास्त्रव्यवहारविदूषकैः केवलमात्मंभरिता-मात्रव्यापारपरायणैर्ज्ञानशून्यैः संन्यासिभिराकुलीकृतोऽयं भारतदेशः ।

आदाय दण्डं परमार्थवृत्ति
ध्रुवं पदं प्रापयितार एते ।
संसारपाथोनिधिकर्णधारा-
स्त्व एव नावं च निमज्जयन्ति ॥२॥

कुक्षिंभरिभ्रष्टजनावकीर्णं
विज्ञानशून्यं श्रुतधर्मशीर्णम् ।
कर्मन्दिवृन्दं हतपापयुक्तं
वेदान्तशास्त्रं कलुषीकरोति ॥३॥

पण्डितः–सत्यं भगवन् ! सत्यम् । कष्टा दशा वर्तते ।

लोपं लोपं वैदिकादर्शमेव
भञ्जं भञ्जं वर्णनिष्ठानिदानम् ।
नानावेशा दूषिताश्चार्थकल्पा
देशे देशे भिक्षुकाः पर्यटन्ति ॥४॥

पंडित —वे शिष्य भाग्यशाली हैं, जिन्हें गुरुजनों का प्रेम प्राप्त होता है। महाराज ! आपने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली है न ?

एक पुरुष —क्या हानि है इसमें ?

पूर्णानन्द —महाशय ! मैं सब जानता हूं ! तो भी वर्तमान समय में साधु-संन्यासियों की दुर्दशा देखकर मन नहीं होता कि इसे भी इसी गड्ढे में ढकेल दूँ।

[पंडित चुप हो जाता है]

श्रीमान् ! शास्त्रीय व्यवहार शून्य हैं ये आधुनिक साधु सन्यासी वर्ग, किन्तु स्वार्थसाधन में पूरे पूरे निपुण हैं, इन लोगों ने भारत को बिगाड़कर रख दिया है स्वार्थ पूरकों ने आज तो।

'जो दण्डधारी परमार्थकारी,
मोक्षाधिकारी करते हमें थे।
संसार अम्बोधि से पारकारी,
वे ही डुबाते तरणी हमारी ॥
वे आज उदरार्थ विभिन्न वृत्ति,
विज्ञान धर्मादि विहीन दम्भी।
उदात्त वेदान्त विकार हेतु,
पापिष्ठ हैं धूर्त विशिष्ट स्म्मी ॥

पंडित जी —यथार्थ कहते हैं भगवन् आप ! बहुत बुरी हालत है।

'घूम रहे हैं देश में ग्राम ग्राम में वंचक सारे,
भिन्न भिन्न रूपों में अगणित, राम शंभु के नाम पुकारे
दूषित चित्त मलिन विधिकारी,
वैदिक धर्म विनाशन—हारे।
वर्णाश्रम की प्रथा मिटाये,
कुक्षिम्भरि ये साँझ सकारे॥ ४ ॥

पूर्णानन्दः–एवं सर्वेषामपि धर्माणां, लौकिकानां व्यवहाराणां च विपर्यस्तः पन्थाः ।

[ततः प्रविशति शुद्धचैतन्यः]

पण्डितः–भगवन् ! इत एवागच्छति सः ।

पूर्णानन्दः–आगच्छतु ।

शुद्धचैतन्यः–[प्रविश्य] ॐ नमो नारायणाय ! नमो वाम् ।

पूर्णानन्दः–नारायण ! वत्स ! विदितं मया तवागमनप्रयोजनम् । परंतु तानि हीमानि दुरधिगमानि केवलं निरनुबन्धप्रसृतानि स्वैराशयोत्तम्भितानि वचांसि, वैषम्ये वा विषादगर्ते मानुषं पातयन्ति । वत्स ! क्षुरस्य धारेयं सन्यासदीक्षा । अनया लघिमानमारोप्यते बलादबोधजन्तुः । सर्वथा कल्याणिना त्वयाऽनुगन्तव्या लोकवृत्तयः । संसारधर्ममनुरुन्धानोऽपि नियमाभिनिवेशी परस्मै पदाय कल्पते । अथवा समये दीक्षाऽपि योग्या । [पण्डितं प्रति] अथवा किं मन्यते भवान् ?

पण्डितः–किं वदामि ? शुद्धचैतन्यस्य हृदयं मां...

पूर्णानन्दः–[विचार्य] भवतु युष्माकमभिलषितम् । नास्ति ममाऽपि निर्बन्धः ।

शुद्धचैतन्य :–अनुगृहीतोऽस्मि ।

पूर्णानन्दः-वर्णिन् ? शुभे मुहूर्ते ग्रहणीया दीक्षा । आगच्छतु सांप्रतमनुष्ठाननियममाराधयितुम् ।

पूर्णानन्द —हाँ, हाँ, यह दुर्दशा तो सर्वत्र हो रही है। क्या धर्म कर्म, क्या लौकिक वैदिक कर्म।

[इतने में ब्रह्मचारी शुद्ध चैतन्य प्रवेश करता है]

पंडित जी —महाराज वह तो इधर ही आ रहा है।

पूर्णानन्द—आने दीजिये उसे।

शुद्ध चैतन्य —ओम् नमो नारायण, आप दोनों को प्रणाम हो।

पूर्णानन्द —नारायण ! नारायण पुत्र ! मुझे तुम्हारे आगमन का कारण ज्ञात हो चुका है। परन्तु केवल कारण विशेष से जन्मी वैराग्य-भावना मनुष्य को बिचार भाववश, विषमता अथवा पतन के गर्त में गिरादिया करती है, इसके कारण ही तो प्राय: लघुता का संचार हो जाता है अज्ञान मनुष्य में। तुम तो पवित्रहो, शुद्ध हो, विशुद्ध भावना को लेकर इस आश्रम में प्रविष्ट हो रहे हो, गृहस्थाश्रम में सांसारिक व्यवहारों का परिचालन करते हुये भी परोपकार साधा जा सकता है। अथवा कोई हानि नहीं है, वैराग्यावस्था में कभी भी सन्यास की शिक्षा दीक्षा ली जा सकती हैं। (पंडित जी से) आप की क्या मर्जी है ?

पंडित जी—क्या कहूं स्वामी जी ! शुद्ध चैतन्य का हृदय तो मुझ··· ·····

पूर्णानन्द —(सोचकर) मुझे भी कोई आपत्ति नहीं है, आपकी इच्छा पूर्ण हो !

शुद्ध चैतन्य —बड़ी कृपा है आपकी।

पूर्णानन्द —ब्रह्मचारिन् ! शुभ मुहूर्त में ही दीक्षा दी जायेगी। अभी तो मेरे साथ चलो दीक्षा के नियमों का निर्धारण करलें।

[इति सर्वे गताः]

[स्थानं हिमालयः-टीहरी। शाक्तमन्दिरं, सन्ध्यासमयः]

शिष्यः-[प्रविश्य] हन्त भोः, विलक्षणोऽयं शाक्तमार्गः। प्रत्यक्षसौख्यावगमः स्वर्गवासः। संमदपूर्णा प्रथी सर्वेन्द्रियाह्लादिनी निरायाससाधिका मुक्तिः। अस्मद्गुरोः प्रभावः! येन समस्ता धर्माः शाक्तशर मताः। क्षुद्रजनक्षुण्णानां गगनारविन्दसदृशानां पक्ष परेषां मोक्षोपदेशः क्षेपीयान् क्षयिष्ठफलप्रदो न श्रेयसे क्षमते। परमः पन्थाः शाक्तस्य। यस्य महिम मुदाहरन्ति हरिहरहंसवाहनादयः।

[नेपथ्ये]

भो भोः शिष्याः! एष नो गुरुः समादिशत्यद्यवा महोत्सवः शाक्तानां परमो धर्मः। तत्सर्वे सावधानाः-

विश्रब्धं रचयन्तु पुष्पितलतासंतानसंमालिकां
सेकं चन्दनवारिणा च सरणिं मुख्याङ्गणे कौङ्कुमीम्।
सोत्कर्षं प्रलपन्तु गर्वसहितं शास्त्रार्थवादं परे
मुह्येयुश्च निशम्य यं परिगता दीक्षिष्यमाणा जनाः ॥

शिष्यः-(निशम्य) साधु संविधानकं प्रकल्पितम्। अयि किमस्माकं सत्यधर्मानुयायिनामाडम्बरप्रपञ्चेन, संसृतौ शाक्यसिद्धान्तः,

तथापि—

शुद्धेन लोकगतिनाऽपि जनेन कार्यं

(सबका प्रस्थान)

[स्थान —हिमालय का टिहरी नगर शाक्तमंदिर, सन्ध्याकाल]

शिष्य : [प्रविष्ट होकर] हाय रे ! यह शाक्त मत भी बड़ा ही विचित्र है, इस सम्प्रदाय में तो स्वर्ग सुख प्रत्यक्षीभूत ही है। कामुकता से भरी इन्द्रिय-लोलुपता से शक्ति मिल जाती इसमें, ओ हो ! हमारे गुरु का कितना प्रभाव है ? समस्त सम्प्रदायवादी विद्वान् इनके सामने निरस्त हो गये हैं। सभी तो परास्त हो कर शाक्तधर्म की शरणं में आ गये हैं। शाक्तधर्म के सामने इन सभी सम्प्रदायों की मुक्तियाँ आकाश कुसुम के समान ही क्षुद्र हो चुकी हैं। शाक्तधर्म का मार्ग ही सर्वश्रेष्ठ है। इसी शक्तिधर्म की महिमाएं हरिहर वामनादि गा रहे हैं।

(नेपथ्य में)

अरे ! अरे ! शिष्यो ! भक्तजनो ! महाराज ने आदेश दिया है कि आज शाक्तों का वार्षिक परमपावन दिन है, काम महोत्सव है; सभी को सज्जित हो जाना चाहिये—

'मार्गों पर छिड़काव चतुर्दिश सभी,
कुसुमगन्ध से भर उठें कक्ष ये,
सभी माग चन्दन जलों से भरो,
त्रिविधरंग की पंक्तियाँ शोभलें,
तुम्हें शास्त्रवादों की जीतें मिलें,
नये भक्त हृदयों पै हो वन्दना,
मिटा दो तमस साधलो साधना' ।।५।।

शिष्य : (सुनकर) अच्छा आदेश दिया गुरु महराज ने ! क्यों भाई ! इस संसार में सत्यधर्मानुयायी हमारे इन बाह्याडम्बरों से शाक्तमत का गौरव बढ़ गया है न ! तो भी—

'हो शुद्ध पक्ष फिर भी व्यवहारिता से,

युक्तं प्रपञ्चविधिना भवितव्यमत्र।
मुग्धामहो कुलवधूं परिहाय लोको
वारांगनां व्रजति दृष्टकलावताराम् ॥६॥

अथवा पापाचारः परमपि पाप गणयति।

यथा दृष्टं श्रुतं लोके, येन केनाऽपि वाभवत्।
तथा मत्वा परं सत्यं, लोकाचारः प्रवर्तते ॥७॥

(नेपथ्ये)

स्पष्टाष्टप्रतिमूर्तिवैधवकलं नृत्ये तवोच्चावच
ब्रह्माण्डप्रतिघातभीतदिविषज्जेगीयमानक्रमम्।
अत्यन्तोर्जितसत्वभुग्नभुजगाधीशावलीढं मुहु-
र्मञ्जीरध्वनिमञ्जु देवि ! करुणापूर्णं पदं नोऽवतात् ॥८॥

शिष्यः-(आकर्ण्य) अहो प्रवृत्तं भगवतीस्तोत्रम्। तथा चाद्यं
महोत्सव इति श्रुत्वा मोदते मनः,

अधुना—

रसाधीनान् मीनान् च्युतरसमदन्तश्च मदिरां
मुहुः पायं पाय मधुरबकुलामोदमुदिताम्।
अपारव्यापारैरशिथिलसमामर्दितकुच
प्रवेक्ष्यामः साकं युवतिभिरहो मोक्षनिलयम् ॥९॥

(इति गतः)

(ततः शैवः प्रविशति)

शैवः—भो भो जनाः !

जहित जगत्परिचरणं, शरणमुदारं व्यथाजलधितरणम्।
भजत पार्वतीरमणं शमितकृतान्तव्यलीकमहरणम् ॥१०॥

सारी प्रपचविधियां हित साविकाएँ।
रूपाढ्य मंजु वधुएँ तजते कुचाली,
बारांगना निरत हो उनको निहाली' ॥६॥
अथवा पापी मनुष्य सभी को पापी समझने लगता है :।
'जैसा देखा या सुना है किसी से,
सारे ही तो मानते सत्य ऐसा।
ये ही लोकाचार है, ग्राह्यभूत,
सत्थात्यन्ता धार सम्मान भूत,

[नेपथ्य में]

'देवि शक्ति सदाशुभाविजायिनी, दुःखादिसंहारिणा।
राखे भक्तजनोपसेवित दया अंबोधि सौख्याशया॥
ब्रह्मांडामितघातभीत जपनेच्छा पूरिता संगता,
मञ्जीर ध्वनि मंजु, नृत्यनिपुणा, शेषावलीढासदा' ॥८॥

शिष्य : (सुनकर] अच्छा हो गया है कि भगवती जगदम्बा का पूजा स्तोत्र गाया जाने लगा है। आज ही महोत्सव है यह जानकर बड़ा ही आनन्द हो रहा है मुझे।

इस समय तो—

'प्रवेशेंगे पी पी मधुर मदिरा आज हम भी,
मनोहारी योषायुवति जन के साथ मुदित,
स्तनाभाराक्रान्ता, नयन कमलाकर्षण शुभा,
महा निर्वाणाय विविध रति संभार सदने' ॥९॥

(चला जाता है)

शैव : अरे अरे। भाइयो !
'त्याग विश्व के सकल मोह पाशों को प्यारे !
'व्यथा जाल अंभोनिधि के उस पार सिधारो।
भजो पार्वती ईश्वर को, यम भीति भय भंजनको।
पाप ताप के हरण हेतु, भक्ति भाव वश भवरंजन को ॥१०॥

(दृष्ट्वा) एष शिलापट्टः अत्रोपविशामि । (तथा करोति)

(ततः वैष्णवः प्रविशति)

वैष्णव–अरे पाखण्डबहुलं जगत्, यद् भगवन्तं चराचरनायकं कमलापतिं विहाय तदतिरिक्तं देवं भजन्ते जनाः ।

नमः कमलसंभवस्तुतिजुषे जगद्व्यापिने
पयोधितनयापयोधरविहारिणे मायिने ।
शिवङ्करपदाय ते शिवनुताय कल्याणिने
नमो व्रजविलासिनीवदननीरजातालये ॥११॥

हन्त, अस्मिन् जडताप्राये प्रस्तरप्रचुरे देशे न क्वाऽपि वैष्णवमतस्य गन्धोऽपि विद्यते । निरन्तरं पामरपशुभिः पूरितः प्रदेशः । यत्र तत्रपाशुपतमिश्रितः शाक्तधर्मः स्वानुकूलो हि पर्वतीयानां मधुमांसभोजिनां धर्मः । आगतोऽहं पर्यटनाय । किन्तु यत्र यत्र गच्छामि तत्र तत्रोत्क्रामन्ति मे प्राणाः पूतिगन्धेन । अद्य विश्रामाय तदेकान्ते शिखरे वसतिं करिष्यामि । (विलोक्य) अयमत्रापि कोऽपि पाखण्डदण्डः । आः शैवः किमु ? हन्त, बीभत्सं दर्शनं दोषावहं च । (विचिन्त्य) अथवा क्व गन्तव्यम् ? अत्रैव स्थितिरेकदेशे कर्तव्या । (ततः शैवः पूजां कृत्वा वैष्णवं विलोक्य)

शैवः–भो जनार्दनप्रिय ! इत एहि ।

वैष्णवः–आः आह्वयति माम् ? (तं प्रति) किमस्ति भो रुद्रप्रिय !

(देखकर) यह पत्थर पड़ा है, चलो इसी पर बैठ जाऊं। (पत्थर पर बैठता है)

(एक वैष्णव प्रवेश करता है)

वैष्णव:—ओ हो ! इस संसार में कितना पाखंड भरा पड़ा है, मूढ़जन भगवान् चर-अचर के स्वामी कमलापति विष्णु को छोड़कर, न जाने कितने कितने देवों की पूजा करते रहते हैं !

नमोनम: महान् पद्मापति भगवति देव को,
विश्व व्याप्त चर अचर वश किये रमापति देव को,
पयोधिसुतारमण को, समस्तमायानिधि उपेन्द्र को।
परमपदाभिलाषव्रजवनिताविलासलासकेंद्र को ॥११॥

हाय रे ! जड़ता से भरे मूर्ति बहुल प्रवेश में तो कहीं भो वैष्णवों की गन्ध तक नहीं आती। सारे के सारे पामरों से भरा पड़ा है यह प्रदेश ! जहाँ देखो वहीं पर शैवधर्म से सम्पृक्त शाक्तमत का ही स्वानुकूल होने से प्रचुर प्रचार है पर्वतीयों मधमांसादि भक्षकों में। मैं तो घूमने फिरने आया हूं यहाँ पर। किन्तु जहाँ भी जाता हूं वहीं से इतनी दुर्गन्धि आती है कि प्राण निकलने लगते हैं। आज के विश्राम केलिये तो वह एकांत पर्वतशिखर ही ठीक रहेगा। (देखकर) यहाँ पर भी यह कोई पाखंडी दंडी दीख रहा है। क्या यह भी शैव ही हैं ? राम ! राम ! बड़ा बुरा दृष्य है पापजनक ! (सोचकर) अथवा जाऊं भी तो कहाँ ? यहीं कहीं ठहर जाऊंगा (पूजा से निवृत्त शैव वैष्णव को देखकर

शैवः—अजी भगवान् विष्णु के भक्तराज ! इधर पधारिये।

वैष्णव:—आप मुझे बुला रहे हैं ? कहिये महादेव भगवान् के भक्तराज !

शैवः–(स्वगतं) धिक्, सर्वदा परनिन्दाप्रवीणा वैष्णवाः (प्रकाशं) ननु किमरे ! शिवनामग्रहणेन ते जिह्वादलनं भवति, येन भगवतः शङ्करस्य नामापि न गृह्णासि ?

वैष्णवः–पिशाचप्रणयी नाम्ना केवलं शोभनः शिवः ।
अनिष्टफलसंदायी यथा व मंगलो ग्रहः ! ॥१२॥

शैवः–(सक्रोधम्) आः वञ्चकनन्दन ! पामरापसद ! करुणाकरं शङ्करं निन्दसि ? पश्य–

सर्वदा मुक्तसंगोऽपि यः शास्त्रैकसुलक्षितः ।
कर्ता भर्ता तथा हर्ता त्रयाणां जगतां शिवः ॥१३॥

वैष्णव :–अरे पशो ! किमरे जल्पसि ? न नाम पीता विजया ? शृणु रे ! प्रेतबन्धो !

शिरो जटालं वृषभश्च यानं
वासः श्मशानं सुहृदः पिशाचाः ।
दिशोऽम्बरं भस्म शरीररागः
कथं शिवस्ते जगतां निदानम् ? ॥१४॥

शैव :–आः तिष्ठ रे ! पापिष्ठ ! तिष्ठ, दर्शयामि ।

(इति हन्तुं गच्छति)

(वैष्णवः पलायते)

सदा पालयत्यत्र विश्वं विकीर्णं
कथं भोगिभोगाधिरूढः स विष्णुः ।
परं वञ्चनानायकं कामिनीनां
अहो, साधु चित्रं चरित्रं पितुस्ते ! ॥१५॥

शैवः—(मन में विचार कर) धिक्कार है इन वैष्णवों को जब देखो तब दूसरों की निंदा ही किया करते हैं। (प्रकट में) क्यों रे ! भगवान् शिव के नाम लेने से तेरी जीभ कट जाती थी ? जो मुख से भगवान् शिव शब्द का नामोच्चारण भी नहीं कर रहा !

वैष्णवः—'पिशाच भूत प्रेतों का प्रेमी नाम्ना, ही शंकर,
मंगलग्रहव्रत् नाम्ना सदा दुष्फल दायक ।। १२ ।।

शैव—(क्रोधी होकर) अरे पामराधम ! नीच कुत्ते ! भगवान् कैलासपति करुणामूर्ति शिवशंकर का अपमान कर रहा है, तू देख लेना इसका मजा !

सर्वदा मुक्त संसर्गी जो सत्शास्त्रत्वलक्षित,
कर्त्ता धर्ता संहर्ताश्शिव, तीन लोकों का रक्षित ।।१३।।

वैष्णव : ओ पशु ! क्या बकवास कर रहा है ? नहीं पी है न तूने भांग ? सुन रे सुन प्रेतात्मन् ।

'जटाजूट शिर है, वृषभ यान जिसका,
श्मशानालयी मित्र बन्धू पिशाव,
दिशाएं वसन, भस्म ही अंगराग
कहो यही विश्व का हेतु कैसे ? ।।१४।।

शैव : ठहर जा पापी, ऐसे दिखाता हूं तुझे,
(इस प्रकार मारने के लिये दौड़ता है वैष्णव भाग जाता है)

'सदा पालता है यहां सर्व जग को
समासीन है शेष पर कैसे विष्णू ?
अहो कामिनी भोग संसक्त देव,
तुम्हारा पिता कैसे आचारशील ।।१५।।

(नेपथ्ये)

गृह्णन्तु चन्दनरसं चषकेषु नव्यं
संभारमुत्तमजपाकुसुमानि केऽपि ।
शिष्यैः समं गुरुरुपार्जितदिव्यदीक्ष
एष त्रिवर्ग इव मूर्तिधरः समेति ॥१६॥

वैष्णव :-(आकर्ण्य सविनयम्) कथं कुपितो महाभागः ?

शैव :-नाहं कुपितः, त्वया कोपितः कालः ।

वैष्णव :-महाभाग ! क्षमस्व । अथवा नास्ति शिवगोविंदयोर्भेदः एकतत्त्वमेव परमावसानं भवतु । वयं धर्मबान्धवाः । भो किमयं कोलाहलः ?

शैव :-जाने, न भवतः संस्तवोऽत्रस्थितानां शाक्तानां मण्डलेन। शृणु—

आराधनाय जगतां जननींभवान्या
आवाधनाय जननीजनसूतिभीतेः ।
एते महोत्सवसुखं कलयन्ति शाक्ता
द्रष्टुं यदीच्छसि तदा सममेवमेहि ॥१७॥

वैष्णव :-एवं भवतु । एतदपि प्रत्यक्षीकरणीयं यदि न भवेदन्तरायः ।

शैव :-एहि, एहि ।

[इति गतौ]

[ततः प्रविशति दयानन्दः]

दयानंद :-ओ३म् नमस्ते पावनाय परमात्मने । विलोकितः पार्वतीयः प्रदेशः । अहो अत्र नामापि न श्रूयते वैदिकधर्मस्य । सर्वतः सनाटीकते काकमण्डलीव वराकी मदिरा-

(नेपथ्य में)

नव चषकोंमें लीजिये चन्दनाम्बु,
कुछ जन ले लो फूल हैं जो जपाके,
गुरुवर यह आते साथ ले शिष्यवर्ग,
त्रिगणसम समक्ष प्राप्त विघ्न प्रतिष्ठ ॥१६॥

वैष्णव : (सविनय सुनकर) महाराज, क्यों कुपित हैं ?

शैव : मैं थोड़े ही कुपित हूं ? कुपित तो तुमने किया है !

वैष्णव : महाभाग क्षमा करें, शिव विष्णु में कोई भेद नहीं है, दोनों का परमतत्व परमसमाप्ति में प्रतिष्ठित है, हम सब धर्मान्ध हो गये हैं, अरे, यह कोलाहल क्यों हो रहा है ?

शैव : लगता है आपका सम्बन्ध नहीं हो सका यहाँ के निवासी शाक्तों से, सुनिये—

आराधनार्थं जगकी जननी स्वरुपा
आराधनार्थं जननी जनसूनिभीति।
के हेतु शाक्तगण ऊत्सव हैं रचाये,
तो दर्शनार्थं चलिये अब साथ मेरे ॥१७॥

वैष्णव : अच्छा चलिये, इसका भी प्रत्यक्ष करना चाहिये, यदि कोई विघ्न न हो तो।

शव : आइये, आइये !

[दोनों प्रस्थान करते हैं]

[इतने में दयानन्द का प्रवेश]

दयानन्द : ओऽम् नमस्ते ! पावन परमात्मा को देख लिया है यह पर्वतीय प्रदेश, यहाँ पर तो वैदिक धर्म का कहीं नाम भी सुनायी नहीं देता, चारों ओर काक मण्डली के समान मदिरा मांस सेवी बेचारे शाक्त ही शाक्त

मिषविषादिनी शाक्तमण्डली। विद्वांसोऽपि कुक्कुरा इव पिण्डलोलुपाः केवल प्रलपंति प्रपञ्चवादम्। निक्षिप्ताः स्मार्तकाष्ठसमेधिते शाक्तभ्राष्ट्रे वेदाः प्रज्वलन्ति! अस्तमितं भूतार्थसत्यम्। प्रपञ्चितः कलिकालमहिमा। अत्र मया निरीक्षितानि निखिलानि तन्त्राणि। घृणाचारदूषितं शाक्तजालम्। [सर्वतो विलोक्य] इदं शाक्तमन्दिरं सर्वतः कृतसंमार्जनम्। आम्, श्रुतं मयाद्य किल निशीथिन्यां महोत्सवः। एतदपि द्रष्टव्यं शाक्तदर्शनम्। भवतु, इतो बहिर्गत्वा दूरादवलोकयामि।

[नेपथ्ये]

चुलुकयति यदीयो दुर्विधामर्त्यशत्रु-
प्रचयतिमिरवृन्द सत्कटाक्षप्रकाशः।
शिशिरकिरणभालव्यालभूषापिनद्धं
दिविषदभिनुतं वः शम्भुसर्वस्वमव्यात् ॥१८॥

दयानंद :—[आकर्ण्य] आगताः पिशाचाः। परिहरामि दर्शनपथम्।

[इति गतः]

गुरुः—या देवी सर्वभूतेषु कामरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यैः नमस्तस्यैः नमो नमः ॥१९॥

एकः शिष्यः—

देव! स्पर्धावलीढैरहरहरुदितस्फारगर्वप्रदीप्तै-
र्दैतेयैस्त्रासभाजः श्रितपुरमथनान् पाहि नः शंकरेण।
इत्थं श्रुत्वाऽमराणां वचनमिदमदोऽपायलोपाय मक्षु,
दृष्टा सव्याजमव्यात्पदनखलिखितक्ष्मातला पार्वती वः ॥२०॥

दीखते हैं, विद्वान भी तो पिण्ड के लोभी कुत्तों के समान असत्यवाद का प्रचार करते हैं—भों भों करते हुए ! चारों वेद तो स्मृति पुराणों से दहकाये गये इन शाक्तों के भाड में जल रहे हैं; प्राणियों का कल्याणकारी सत्यतिरोहित हो गया है, कलिकाल की महिमा गायी जा रही है। यहाँ पर रहकर मैंने सारी तंत्र महिमा को देख ली है। शाक्तों का आचार व्यवहार घृणा से भरा हुआ है, [चारों ओर देखकर] यह शाक्त मन्दिर चारों ओर से स्वच्छ किया हुआ है। हाँ, सुना तो मैंने भी कि आधी रात को यहाँ पर महोत्सव होने वाला है; यह महोत्सव शाक्तदर्शन का विशेष भाग है, अच्छा तो यहाँ से बाहर जाकर दूर से ही देखूँगा।

[नेपथ्य में]

रक्षा करे शिव समस्त जगत् सदैव,
व्यालौघ भूषित तनु प्रबलेन्दुमौली,
जो स्वीय भावेन दयालव से मिटाता,
गाढान्धकार-मनुजादि सुखायहन्ता ॥१८॥

दयानन्द :—[सुनकर] आ गये राक्षस, रास्ते से दूर हो जाऊ !

[चला जाता है]

गुरु :—जो देवी सर्वभूतों में रहती कामरूप से,
नमस्तस्यैनमस्तस्यैं नमस्तस्यै नमोनमः ॥१९॥

एक शिष्य :—देवस्पर्धाप्रवीण प्रतिदिन उदितस्कार गर्वोन्नतों से;
दैतेयों से विनीन त्रिदशागणक हे शैवादियों से
ऐसी देवोक्तियों से त्वरित विलय न हो, विश्वमाता
रक्षाकर्त्री बनो हे गिरिवर तनये ! पार्वतीवे ॥२०॥

गुरु :-[सर्वतो विलोक्य] रमणीयमहो भगवतीमन्दिरम् ! वत्स ! अद्यास्माकं शाक्तानां परमो दिवसः। गच्छ, मन्दिरस्य द्वारमपावृते कुरु ! ततः परं पूजां कुर्वन्तु सर्वे ।

[सर्वे देवीपूजनं विधाय गायन्ति नृत्यन्ति । केचित् मदिरापानमपि कुर्वन्ति, पुष्पमालां च धारयन्ति]

देवीस्तोत्रम्

जय, जय, जननि ! क्षिप्तदोषप्रदोषान्धकारस्फुरद्धास्यचन्द्रच्छविध्यायिभक्तव्रजामन्दसंफुल्लसत्कैरवव्रातसंपातिपादद्वये, अद्वये मोदरत्नाकरे सर्वदाभास्वरे, दर्पकाखर्वगर्वप्रहाणे शसन्मौलिमालानभोवाहिनीलोलकल्लोलविक्षिप्तपादद्वयाम्भोजधूलीप्रणालीरसाकृष्टसंहृष्टनागाभरग्रामणीशेखरव्राजसंचर्चिते, तर्पिते, भाविते, सर्वदेवात्मिके, सर्वमायात्मिके, सवकामात्मिके, सर्वविश्वात्मिके देवि ! तुभ्यं नमः ! मथितनिखिलदैत्यसंग्रामसंहारसंखण्डिताङ्गप्रतीकप्रसर्पद्घनास्त्रक्प्रवाहप्रभाशोणदिङ्मण्डलाकाण्डसंभ्रान्तसंध्यावधानोद्धुरक्ष्माभरव्रातदत्तांजलिस्नेहपूजात्मने, विश्वकल्याणसंपादनप्रस्तुते, संततोद्दीप्तदुर्वारमोहान्धकार व्यथानाशिके, सर्वदाभासिके, भक्तहृद्वासिके, दीव्यदीक्षात्मके देवि ! तुभ्यं नमः । जय, जय, जननापायसर्वङ्कषक्षेमकारामृतापूर्णचञ्चत्कटाक्षच्छटामोहितान्तर्व्यथासत्पथाकीर्णकारुण्यपीयूषतोषास्पदीभूतभूतावलीगीतदीव्यत्कथामञ्जरीरञ्जितश्रेष्ठकर्णे, श्रिया संमते, दिव्यरत्नावलीमंडितोरःस्थले, सर्व-

गुरु :—[सब ओर देखकर] अहो ! दुर्गामंदिर बड़ा सुन्दर है यह, वत्स ! आज हम शाक्तों का महान् दिन है, जाओ और मन्दिर के द्वार खोल दो ! तब पूजा कर सकेंगे भक्तभज !

[सब भक्त जन दुर्गाभवानीकी] पूजा समाप्त करके गाने नाचने लग जाते हैं। कुछ माला पहने हैं और मद्यपान कर रहे हैं।

देवीस्तोत्र

जयजय जगदम्बे ! सत्वर दोष संध्याकाल—
तमसा विकासमान शशि छविध्यानशील सा–
गणप्रभूत मोद प्रफुल्ल कैरव कुसुमनिचयीभूत चरणयुगे।
सन्तत भासमान अप्रतिनिधि अद्वैतानन्दोदधिम नन्त
अभिमानी जनगर्वनाशिनि !

विशस्त मुकुट माता गगननयन तरल वीचिविक्षिप्त द्विप-पंकजरजो जनित आकर्षण हर्षणोरगगणाधिष्ठिते तर्पणा-धिकारिणी ! भावना भरिते ! सर्वदेवात्मिके ! विश्वमायाविनि ! सकलकाममयि ! सर्वस्वसाधिके देवि !

नमस्ते नमस्ते !

मथित निखिल निशाचर संग्राम संहार से भेद प्रतिमा प्रतिक प्रचलनपटु रक्त प्रवाह प्रभाशोण दिक्मण्डल अकाण्ड संभ्रान्त संध्या वधानो द्धुरदेवगण कृतांजलि प्रेम पूजामये ! सकलसत्व श्रेय सम्पादन सज्जिते ! नि:शषेदुर्निवार मोहान्धकार कष्टाकर्षिके ! शाश्वसलोकिते !

साधक स्वान्तर्वासिनी दीव्य दीक्षादायिनी देवि !

तुझे नमन हो ! जय, जय हो ! जनगणदु:खापहरण कुल-कुशलमृतापूर्णं चचलकटाक्ष प्रभामोहितान्तर्व्यथासन्मार्गाकीर्णं करुणामृत पारितोष स्थानीय प्राणिमात्र गीत प्रकाशित कथा-कलिकारंजित राय श्रोत्रयसि !

दीव्यत्कले, कालिके देवि! तुभ्यं नमः। प्रकृतिनियम-संपूर्णविश्वपधिप्रेरणस्थैर्ययुक्ते महानन्दसंदोहसंदायिनी प्रेमतः सुक्ष्मे, दीक्षिते, पूरितालोकशेषप्रभे, पूजिते, सत्कृते, देवदैतेयनागेशयक्षत्किन्नरैः सर्वदा भव्यभूतिं च भुक्तिं च मुक्तिं ददातु क्षणं, देवि! तुभ्य नमो देवि! तुभ्यं नमः, पाहि नः, पाहि नः।

[सर्वे निषीदन्ति गुरुरुच्चासने तिष्ठति]

गुरुः—भद्राः, अद्य महाकाली प्रसीदति। तद्भगवतीपरितोषोपयिकं किमपि व्यवसितम्?

एकः शिष्यः—महागुरो! तत्र व्यापृतो महानन्दः।

स्त्री—महाराज! जानन्ति न वा नगरनिवासिनः समस्ता अस्मन्महोत्सववृत्तान्तम्?

गुरुः—आः किमुच्यते? प्रसिद्धः प्रतिष्ठितश्च शाक्तधर्मः। नास्ति कस्यापि शक्तिरस्य नामापि प्रतिकूलयितुम्।

द्वितीय शिष्यः—ननु भगवन्! परेऽप्यस्मन्मतविभिन्ना मोक्षक्षेमाय कल्पयन्ति प्रभूतं वेदशास्त्रविकल्पनाजालं कथङ्कारं प्रतीपं तेषां मतं स्वीकुर्वन्ति मानवाः? अथवा तत्राऽपि जातु संभवेत्तत्त्वम्?

एकः शिष्यः—अरे कुतस्तथ्यम्? भ्रान्तास्ते विविधवादवञ्चिता न शाक्तमतं प्रत्यक्षमोक्षप्रदं समाश्रयन्ते।

अनन्तैश्वर्यालंकृते ! अलौकिक रमणिरत्नमण्डित वक्षस्थले ! सर्वसम्पदाप्रदायिके ! समस्त लोकमान कान्तकलकान्ते ! मां, कालिके ! तुझे नमन हो ! प्रकृति नियमभरित विश्वनाथ प्रेरणाभूते ! नन्ददायिनी ! स्नेहसिक्तें ! सामर्थ्यशीले ! पटुतमे ! प्रदत्तप्रकाशरश्मिशोत्रे ! समर्चिते ! सुसत्कृते ! देवदानवनामाधिपतिसेविते ! हमें प्रदान करो सदा-सदा समृद्ध सम्पदैश्वर्यः समस्त भोग एव सर्वं दुःखशून्य अमरयोगके पलपल ! जगज्जननि ! जगदम्बे ! तुझे नमन हो ! हमारी रक्षा कर, हमारी रक्षा कर ।

[सब नीचे बैठ जाते हैं । गुरुदेव उच्चासन पर विराजमान होते हैं]

गुरु : भक्तों ! आज महाकाली प्रसन्न होने वाली है, क्या भगवती दुर्गा को प्रसन्न करने का कोई उपाय किया है ?

एक शिष्य : गुरुदेव ! महानन्द यही कार्य कर रहा है !

एक स्त्री : महाराज ! नागरिकों को पता भी है इस अलौकिक महोत्सव का ?

गुरु : क्या पूछ रही है ? कौन नहीं जानता इस प्रसिद्ध शाक्त धर्म को ? किसी में साहस नहीं है कि कोई शाक्त-धर्म के विरुद्ध जा सके !

द्वितीय शिष्य : और भी तो लोग हैं, जो मोक्ष प्राप्ती के लिये वेदादिशास्त्र अनुकूल मार्ग बतलाते हैं। ऐसे असत्य मतों को जनता क्यों अंगीकार करा करती है ? क्या अन्य मतोमें भी कुछ यथार्थता है ?

प्रथम अरे ! कहाँ से आयी अन्य सम्प्रदायों में सचाई ! ये सब शिष्य भ्रम में पड़े हुए हैं, अनेक विघ वादों में, शाक्त मतके समान अन्यत्र कहीं भी नहीं है प्रत्यक्ष मोक्षसुख !

गुरुः—एवं वत्स ! सत्यं प्रतिपादयसि पश्य—

के वेदाः के सुरेशाः सवनफलमतः स्वर्गसौख्यप्रपञ्चः
को लोको नाकपङ्केरुहवदभिमतः क्षेत्रनाशात्परस्तात् ।
का भीतिः कालपाशाद्, विशकलितजने भूतिभूतात्मवृत्ते-
र्जन्तोरन्यात्मलाभः परमिदमखिलं व्यर्थपाखण्डजालम् ॥२१॥

त्रयः—सत्यं प्रमाणं वचः !

[ततः प्रविशतः शैववैष्णवौ]

एकः शिष्यः—भगवन् ! समायाति कश्चित् ।

गुरुः—आगच्छतु, स्वस्था भवन्तु भवन्तः [सर्वे तथा भवन्ति]

शैवः—[प्रविश्य] अहो कमनीयं मन्दिरम् ।

वैष्णवः—महाभाग ! नन्वेते किं प्रमाणयन्ति धर्मतत्त्वम् ?

शैवः—तत्र गत्वा तमेव पृच्छतु भवान् । मम तु सर्वं समानम् ।

वैष्णवः—ननु भवानपि समागच्छतु ।

शैवः—को दोषः ? [इति समीपे गच्छतः]

वैष्णवः—भो भोः कोऽयमाकल्पः, का वा धर्मचर्या भवतां, किं नामधेयमिद तत्त्वं के वाऽधिकारिणः ?

एकः शिष्यः—[समीपं गत्वा] भोः किमेवं प्रलपसि ? न जानासि प्रसिद्धं पावनं शाक्तधर्मम् ?

शैवः—नन्वयं वैदेशिकः ।

शिष्यः—आम्, आगच्छ भोः गुरुनिकटे ।

[वैष्णवः शैवस्य मुखं पश्यति]

शैवः [जनान्तिकम्] अवश्यं गन्तव्म् । को दोषः ? समागता वयम् ।

गुरुवर्य हाँ, हाँ, बहुत ठीक कहते हो ! देखो न
नहीं वेद है देव है यज्ञ स्वर्ग, नहीं लोक हैं स्वर्ग आनन्द कोई
नहो देह के नाश के बाद मुक्ति नहीं मृत्यु की भाँति है सत्य कोई।
नहीं स्वर्गप्राप्ति प्रगल्भा प्रसक्ता ये पाखण्ड हैं दुख के द्वार होई
इन्हें त्यागकर मोक्ष का लाभ होता यही आत्म आनंदसं तोष सोई

तीनों : सत्यवचन हैं।

[इतने में एक शैव और एक वैष्णव प्रविष्ट होते हैं]

एक शिष्य : महाभाग ! कोई आ रहा है !

गुरु : आने दो ! ठीक बैठो सब !

[सब ठीक बैठ जाते हैं]

शैव : (प्रविष्ट होता है) कितना सुन्दर मन्दिर है ?

वैष्णव : श्रीमन् ! ये कौन सा धर्म मानते हैं ?

शैव : वहाँ चलकर उन्हीं से पूछिये, मेरे लिये तो सब बराबर है।

वैष्णव : तो भी आप साथ चलिये !

शैव : क्या हानि है ? [दोनों निकट पहुंचते हैं]

वैष्णव : अरे भाई, यह कैसा मेला है ? आप लोगोंकी धर्म चर्चा में क्या-क्या है ? आप के तत्व का क्या नाम है ? कौन-कौन से धर्माधिकारी हैं आपके ?

एक शिष्य : अरे, क्या प्रलाप करते हो ? तुमको पवित्र शाक्त-धर्म का पता नहीं है क्या ?

शैव : नहीं, यह तो परदेशी हैं।

शिष्य : अच्छा, तो आइए, गुरुदेव के समीप

[वैष्णव शैव के मुख की ओर देखने लगता है]

शैव : [निकट जाकर] अवश्य चलिये, गुरुदेव के समीप, क्या हानि है ? हम आये हुए तो है ही, यहाँ पर।

[सर्वे तत्र गच्छन्ति]

शिष्यः—भगवन्, गुरुवर्य ! इमौ ननु धर्मतत्त्वं श्रोतुमागतौ।

गुरुः—[नेत्रे उन्मील्य, स्यातुं संज्ञां ददाति, सर्वे तिष्ठन्ति] स्वागतं भवतोः किमु वैदशिकौ अत्रत्यौ वा ?

एकः—अयमस्ति वैदेशिकः। [सः सर्वत्र विलोकयति] [तं प्रति] भोः प्रष्टव्यं पृच्छ।

द्वितीयः—महाराज ! कोऽयं धर्मः ? किम् फलम् ? कीदृश ईश्वरः क्व मोक्षः ? के वाऽधिकारिणः ?

गुरुः—[विहस्य] नन्वतीवानभिज्ञः खलु त्वम्। श्रूयताम्। यः किल पुरा वृहस्पति-प्रतिष्ठितो लोकायतापरपर्यायः प्रत्यक्षमोक्षप्रदो धर्मशिरोमणिः शाक्तधर्मः

शैवः—[मध्ये] तदा कथं शक्तिः शक्तिरिति घोषयन्ति भवन्तः।

गुरुः—एवं नाम सौकर्याय। अथवाऽस्माकं मतमपि पुराणशास्त्र-संमतमिति जनमनोरंजनाय, सत्यं तत्त्व विलक्षणम्

वैष्णवः—अन्यत् किम् ?

गुरुः—नास्ति फलं परमानन्दभोगादन्यत् न वर्तते परमात्मा। नास्ति मोक्षः। सर्वेऽधिकारिणः अथवा श्रूयतां निगूढं रहस्यम्—

[सब वहाँ चलते हैं]

शिष्य : गुरुदेव ! ये दोनों धर्मतत्व जिज्ञासू हो कर आये हैं

गुरु : [आँखें खोलकर] बैठने का आदेश देते हैं, सब बैठ जाते हैं। स्वागत हो आप दोनों का ! क्या आप दोनों परदेसी है या यहाँ के निवासी ?

एक : महाराज, यह है परदेसी [वह सब ओर देखता है उसकी ओर देखकर] जो शंका हो पूछ लो !

दूसरा : धर्म क्या है आपका, जिसका फल क्या है ? ईश्वर कैसा होता है ? मोक्ष कहाँ है ? मौक्ष कौन होते हैं अधिकारी ?

गुरु : [मुस्कराकर] लगता है बहुत अन्जान हो तुम ! सुनो जो बहुत पहले बृहस्पति स्थापित लोकायल नाम का प्रत्यक्ष मोक्षदायी धर्म शिरोमणि धर्म भी वही है यह वर्तमान शाक्तधर्म !

शैव : [मध्यमें] तो 'शक्ति, 'शक्ति' की क्या बात करते हैं आप लोग ?

गुरु : यह तो सुविधा के लिए है अथवा हमारा मत भी पुराणशास्त्र समर्पित है, यह तो हम जनता के मनोरंजन के लिए कहते हैं, सत्यतत्व तो अत्यन्त विचित्र विलक्षण है।

वैष्णव : और क्या बात है ?

गुरु : परमानन्द भोग के अतिरिक्त और क्या फल है संसार में ?

परमात्मा नहीं है, मोक्ष भी नहीं है, सभी अधिकारी है अथवा यह सब रहस्य समझिये।

ईशः स्वर्गौ जनिमरणता वेदधर्मौ च मोक्षो
हंहो मूढैः कियदिह जटिलं जालमास्तीर्णमेतत् !
सत्यं तत्त्वं कलयत जनाः स्वर्गसौख्यं मृगाक्षा
पीयूषं तद्वदनमदिरा नीविमोक्षो हि मोक्षः ॥२२॥

[शैववैष्णवौ परस्परं मुखमवलोकयतः]

[शिष्यान् प्रति] अथवा किं मन्यन्ते भवन्तः ?

त्रयः—सत्यं प्रमाणं वचः !

शैवः—अयं भवानीरमणं शङ्करं न प्रमाणीकरोति ।

गुरुः—महाशैव ! शक्तित्वेन परिगृहीतः सः

शैवः—प्रियं नः प्रियम् । तदा भवान् मे धर्मबन्धुः ।

वैष्णवः—भो, ननु भवन्मते स्वर्गनिरयनिर्वाणप्रतिपादकाः सन्ति तन्त्रग्रन्थाः, किं तेषाम् ?

गुरुः—सन्ति न सन्ति च। सन्ति, परमतनिराकरणाय स्वमतस्थापनाय शिष्याचाराय च । न सन्ति, विदितेऽस्माकं निगूढे तत्त्वे !

त्रयः—सत्यं प्रमाणं वचः !

वैष्णवः—अरे, शास्त्रपुराणेषु पाशुपतवैष्णवादयः श्रूयन्ते मोक्षसाधनं धर्माः ।

गुरुः—पाखण्डजालं, जीविका सा जडानाम् । अवधारयत स्वधियाऽपि तत्त्वम् । किमस्ति शरीरनाशात्परं यत्कल्पते पुनर्भवाय ? मन्दास्ते प्रत्यक्षमोक्षमविगणय्य नानामतजुषो भवन्ति । आकर्णय—

ईशस्वर्गोद्भत्र मरण या वेदे या धर्ममोक्ष
मूर्खोनेही समझा इनका जाल विस्तार केलि
सच्चातत्व प्रबलत मतो 'वस्तुतः रूप आस्था
पीयूषोत्तम आननागतसुरा, 'नीत्रिखोल' ही मोक्ष है ! २२

[शैव और वैष्णव एक दूसरे का मुख देखते हैं]

[शिष्यों से] और तुम्हारा क्या मत है ?

तीनों : सत्य कहते हैं आप।

शैव : यह वैष्णव ता भवानीश्वर शंकर को भगवान नहीं मानता !

गुरु : महा शैव ! शिव को तो शक्ति ने पकड़ रखा है !

शैव : आपका प्रिय तो हमारा प्रिय है, तब तो आप मेरे धर्मबन्धु हुए !

वैष्णव : क्यों जी ! आप के मत में भी तो स्वर्गनरक मोक्ष प्रतिपादक तंत्रगन्थ है, तो उनका क्या होगा ?

गुरु : हम मानते भी है .यह सब और नहीं भी मानते ! अन्यमतखण्डनार्थं, स्वमतस्थापनार्थं तथा शिष्यों के आचार्य हैं। हमें सर्व ज्ञात है, अतः हमारे लिये व्यर्थ है।

तीनों : हाँ जी सत्यवचन है आपका !

वैष्णव : वैसे तो शास्त्रपुराणों में पशुपत, वैष्णादि मत सुने जाते हैं कि ये मोक्षदायक है।

गुरु : यह सब पाखन्डजाल है, जड़ों-मूर्खों की जीविका का साधन है, अपनी बुद्धि से भी कुछ विचारना चाहिये; तत्व शरीरनाश के अतिरिक्त और क्या है ? जिसका पुनंजन्म हो सकता है ? प्रत्यक्ष मोक्षधर्म को छोड़कर अज्ञानी ही तो विभिन्न मतान्तरों में भटक रहे हैं। सुनो,

ओकारार्थपुरःसरेण निगमस्वाध्याय आडम्बरः
नेवं पाशुपतादिवैष्णवमतं सच्छ्रेयसे जायते ।
निःसीमानमनन्तमोदमधुर सौख्यं दिशन्तो ध्रुव
मुद्रामैथुनमांसमीनमदिरा मोक्षप्रदा मन्महे ।।२३।।

त्रयः—सत्यं प्रमाणं वचः !

वैष्णवः-[जनांतिकं शैवं प्रति] इदमन्यथा श्रूयते । सर्वथा प्रत्यक्षप्रमाणाभिमता लोकायतपदवीयम् ।

शैवः—[जनान्तिकम] तर्हि भवतः का निर्वाणकरी पदवी? तदेव सत्यं मन्ये यत्प्रत्यक्षेणावगम्यते ।

गुरुः—भो, भोः ! किं विकल्पयथः ? वञ्चिताः सव मतान्तरः श्रयते मोक्षपथम् ।

एकः—अहं त्वधुनैव विहाय धर्ममिमं, श्रये शाक्तशरणम् । भोः त्वमपि कथं तिलकचक्रलाञ्छनैः कदर्थयसि कायम्? प्रविश, प्रविश पवित्रं पन्थानम् ।

त्रयः—सत्यं प्रमाणं वचः !

गुरुः—शृणुत । बहुशः पुरातना महर्षय इदमेव मन्यमानाः सत्यं धर्मं विदांचक्रुः—

अस्मन्मतस्य नियमाकुलगाधिजन्मा
मोक्षं विहाय परमस्ति च सूत्रधारः ।
तप्त्वा तपांसि मुनयो बहुशः पुराणाः
संलेभिरे मधुसुधां वनिताधरस्य ।।२४।।

प्रथमः—देहि मे दीक्षाम् ।

अन्ये:-अस्माकमपि ।

मुद्रा मैथुन मांसमीन मदीरा ही मोक्षदायी यहाँ
वेदोंका पठनादि ओऽम् कहके है, ढोंग ही सर्वथा,
नाही वैष्णव शैव धर्म शरणे श्रेय प्रशस्तादरी
मोक्षानन्द निधान केवल यहाँ है शाक्तधर्मोपरी ॥२३॥

तीनों ; यथार्थ वचन है आपका !

[शैव के निकट जा कर]

वैष्णव : यह तो आप कुछ अन्य ही सुना रहे हैं। लोकायत पदवी तो सर्वथा प्रत्यक्ष भूत ही है।

शैव : [समीप हो कर] तो आप ही अपना बताइए मोक्षदाता जो प्रत्यक्ष हो, हम उसे ही सत्य मान लेगें।

गुरु : अरे, क्या संकल्प विकल्प कर रहे हो? इन सम्प्रदाय वादियों ने जन-जन को ठग रखा है, तुम दोनों आ जाओ शाक्तधर्म में !

एक : मैं तो अभी के अभी अपने धर्म को छोड़ कर शाक्त धर्म की शरण में जा रहा हूं। अरे, तू ही क्या तिलक चक्र लांछनों से शरीर को कष्ट दे रहा है, तू भी प्रवेश कर इस पवित्र धर्म में।

तीनों : सत्य कथन है आप का !

गुरु : सुनो, सुनो ! बहुत से पुरातन ऋषियों ने तो इसी शाक्त धर्म को ही सत्य माना है !

मोक्षप्राप्ति के लिये घनघोर तज करके तपस्या
गाधि-सुतने शाक्त मत स्वीकार कर आनन्द पाया
और भी प्राचीन मुनियों ने तपस्या से विलग ही
पानकर रमणी अधरद्वय पा लिया निर्वाण पद हो ॥२४॥

प्रथम : मुझे दीक्षा प्रदान कर दीजिए गुरुदेव !

अन्य सब : हमें भी दीक्षा प्रदान कीजिए !

त्रयः—सत्यं प्रमाणं वचः !

गुरुः—जय भगवति ! अद्य अनुकम्पिता वयम् । यूयं स्नानविधानं कुरुत । [शिष्यं प्रति] गच्छ, आदेशय पन्थानम् ।

शिष्यः—यथादिशति गुरुः [इति गताः]

[ततो महानन्दः सस्त्रीकः प्रविशति]

महानन्दः—आगच्छतु भवती त्वरितम् ।

वनिताः—महाभाग ! क्व मां नयसि ? अथवा घोरा निशीथिनी अहं पुनः समागमिष्यामि धर्मालयम् ।

महानदः—ननु नेदिष्ठे तस्य धर्माचार्यस्य मठः ।

वनिताः—तथापीयत्यां रजन्यां मम गमनं तत्र न कल्याणकरम् । अहमबलाऽस्मि ।

महानंदः—का भीतिः ? अहमस्मि तव समीपे । अथवा मन्दा द्विषन्ति धर्मचर्याम् । आगच्छतु लघु लघु पश्य भवति ! एष तिष्ठति गुरुः ।

[उभौ प्रणमतः]

गुरुः—स्वस्ति भवत्यै । [सर्वे परस्परं विलोकयन्ति]

महानन्दः—धर्मस्वरूप ! एषा धर्मरहस्यं श्रोतुमागता ।

गुरुः—धन्यम् । प्राप्स्यते धर्मः भवति ! श्रूयतां धर्मतत्त्वम् पाखण्डपूर्णेऽस्मिन्, जगतीमण्डले विनष्टः सत्यः पन्थाः । तथापि तल्लेशोऽवशिष्यते शाक्तेषु ।

त्रयः—सत्यं प्रमाणं वचः ।

गुरुः—देवि ! वृथा जना धर्मविचाररचनासु मनः खेदयन्ति । को

तीनों : सत्यवान है !

गुरु : जय भगवति ! आज हम अनुगृहीत हो गये। तुम स्नान विधि से निवृत्त हो लो, (शिष्य से) जा, मार्ग बता दे।

शिष्य : गुरुदेव, जो आदेश दें ! (सब चले जाते हैं)

[इतने में एक स्त्री के साथ महानन्द प्रविष्ट होता है]

महानन्द—शीघ्र चलिये आप !

महिला—महाभाग ! कहाँ ले जा रहें मुझे ? देखो न यह रात कितनी घनघोर हैं, मैं दुबारा आऊंगी इस धर्म मन्दिर में !

महानन्द—अजी ! सर्वथा सन्निकट ही तो धर्माचार्य जी का मठ !

महिला—तो भी इतनी रात्रि में मेरा वहाँ जाना ठीक नहीं है, मैं अबला जो हूं।

महानन्द—किसका डर है ? मैं साथ में हूं न ! अभागे ही डरते हैं धर्मचर्या से ! चलो जल्दी-जल्दी, देखो न देवि ! सामने ही गुरुदेव उपस्थित हैं।

[दोनों प्रणाम करते हैं]

गुरु—तुम्हारा कल्याण हो [सब एक दूसरे को देखने लग जाते हैं]

महानन्द-गुरुवर्य ! ये देवी धर्मरहस्य जानने के लिये आई हैं।

गुरु—धन्य है, धर्मलाभ होगा देवि ! सुनो, सच्चा धर्मतत्त्व ! पाखण्ड भरे इस संसार में सत्यमार्ग तो नष्ट हो गया है, तो भी नष्ट धर्म का थोड़ा सा अंश अवशिष्ट है शाक्तधर्म में !

तीनों—सत्यवचन है महाराज !

गुरु—व्यर्थ ही लोग धर्म विचार रचनाओं में मन को क्लेश पहुंचाते हैं। कौन जानता है, किसने देखा है परलोक ?

जानाति केन वा दृष्टचरः संभावितो व परलोकः ? निर्णीतोऽपि सांपरायो न प्रतिभाति । मृतस्य नरस्य कथं तत्र सुखप्रतीतिः ? प्रत्यत्रतिष्ठन्ते ननु पामराः परमात्मतत्त्वप्रतिपादनाय परं प्रेरयताऽपि प्रमाणपदवीं मनो न मयाऽऽद्रियते ऋते भूतात्मनः शरीरादन्य ईश्वरः। स्वर्गास्वर्गविवेचना चातुरीमतां मतेऽपि मदिराक्षीपरिरंभणानन्दसंदोहादन्यं नावधारयामि परमुदन्तम् । को हि नाम मूढोऽपि जन्तुः प्रत्यक्षं सुखं प्रत्याचक्षाणः परस्मै जीवनात् सुखाय दृष्टलोकसमाहिताय दत्ताञ्जलिः स्यात् ?

त्रयः—सत्यं प्रमाणं वचः !

वनिता—[स्वगतम्] किमिदं शृणोमि, क्व पतिताऽस्मि ? [प्रकाशम्] महाराज ! ननु भवान् स्फुटं प्रतिपादयतु रहस्यम् ।

[गुरुः शिष्याय संज्ञां ददाति]

महानन्द—[कर्णे] एवमिव ।

वनिता—आः किमिदम् [इति मुखमाच्छादयति]

[सर्व परस्परं विलोकयन्ति]

वनिता—[स्वगतम्] सत्यं वञ्चिताऽहमनेन धूर्तेन । नियतं शीलभ्रंशनमत्र । किं करोमि ? कः सहायः ? [प्रकाशम्] भगवन ! न मया ग्रहणीयं धर्मतत्त्वम् । गमिष्याम्यहम् । प्रसीदन्तु भवन्तः ।

महानद—भवति ! स्वीकुरु धर्मतत्त्वम ।

वनिता – [सरोषम्] दूरमपेहि चाण्डाल ! धर्मकञ्चुकधारिणा मृगीव त्वयाऽहं प्रतारिता पाप !

परलोक मान न भी लें तो मुक्ति सिद्ध नहीं होती, भला मरे हुए मनुष्य को मुक्ति में सुख प्रतीति कैसे हो सकता है ? पापी पामर जन ही भगवान की बातें करते हैं, बतियाते हैं, तो भी परमात्मा तत्व के प्रतिपादन के लिये प्रेरित हुआ।

मुझे ईश्वर पर विश्वास नहीं होता। आत्मा तो मेरे विचारों से यह शरीर ही है, अन्य कुछ नहीं। स्वर्ग नरक की विवेचना करने वाले भी तो मदीराक्षियों के परिरंभण आनन्द के अतिरिक्त अन्य कुछ श्रेष्ठ नहीं मानते ! कौन ऐसा मूढ़ व्यक्ति होगा जो प्रत्यक्ष सुख को त्यागकर आगामी सुख के दृष्ट लोक समाधान को महत्व प्रदान करेगा ?

तीनों—सत्य कहते हैं आप !

महिला–[मन ही मन में] यह मैं क्या सुन रही हूं ? [प्रत्यक्ष में] महाराज ! कृपया स्पष्ट कहिये रहस्य !

[गुरु शिष्य को बुलाता है]

महानन्द—[कान में] ऐसा ही होगा।

महिला—अरे ! यह क्या है ? [मुख ढक लेती है]

[सब परस्पर देखने लगते हैं]

महिला—[मन ही कन में] सचमुच इस धूर्त ने मुझे धोखा दिया है। सतीत्वनाश सुनिश्चित है आज, यहाँ पर क्या करू ? कौन सहायता करेगा ?

[प्रकाश में] भगवन् ! मुझे नहीं चाहिये यह आपका धर्म-तत्व ! मैं जा रही हूं, कृपा करें आप !

महानन्द—भगवति ! धर्मतत्व स्वीकार क्यों नहीं करती ?

महिला—[क्रोध से] दूर हट जा चाण्डाल ! अरे पापी धर्म का वस्त्र ओढे तू ने शिकारी की भाँती फंसा ही लिया न ?

[इति गन्तुमिच्छति, महानन्दो गृह्णाति]

वनिता:—त्रायध्वं, त्रायध्वम् ! !

[नेपथ्ये] न भेतव्यं न भेतव्यं ! ! !

सर्वे—कोऽयं पाप: प्रत्यूह: संप्राप्तः ?

दयानन्द:–[प्रविश्य] अरेरे जाल्मा: ! पापा: ! (स्त्रियं रक्षति]

शिष्य:—[जनान्तिकम्] गुरो ! सोऽयं वैदिकधर्मोपदेष्टा दयानन्दः ! !

गुरुः—आ:. अयमेव किमु ? सांप्रतं प्राप्तो हस्ते; मा त्यजत एनम् । भो दयानन्द ! गच्छ, गच्छ, विहर यथेष्टं, नो चेत् कथावशेषो भविष्यसि ।

दयानन्द:–[सरोषम्] महापापा: ! कस्य शक्तिरस्ति नयानंदस्य केशमपि दूषयितुम् ? ज्ञायतां रे नराधमा: !——

मृत्युर्मह्यं परमसुखदो नारिमुक्तौ भवेच्चेद्
दंडाघाता अपि सुमसमा धर्मकृत्ये भवन्ति ।
धर्माह्वानात् प्रियतरमपि त्यक्तुकामोऽस्मि स्वेष्टं
धर्मार्थं मे भवतु निधनं तत्र जन्मापि भूय: ।।२५ ।

वनिता– त्राता ! इत: शीघ्रं गच्छाव: ।

दयानन्द:–महाभागे ! मा भैषीः । दयानन्दरक्षितां त्वां दूषयितुं शक्रस्यापि नास्ति सामर्थ्यम् । अये, वामाः ! कामाचारं विहाय धर्माचारं श्रयत ।

गुरुः–ननु शिष्या: ! किं पश्यथ ? कुरुत दयानन्दं समं वनितया पशुभूतम् । [सर्वे दयानन्दं ग्रहीतुमुत्तिष्ठन्ति । दयानन्दः सर्वान् पातयति]

[जाना चाहती है, महानन्द पकड़ लेता है]

महिला—बचाओ ! बचाओ ! !

[नेपथ्य में] मत डरो ! मत डरो ! ! मत डरो ! ! !

सबके सब—और कौन पापी बीच में आ गया है यह ?

दयानन्द—[प्रविष्ट होकर] अरे पापियों ! अत्याचारियों !

[महिला को बचाता है]

शिष्य—[समीप में आकर] गुरुदेव ! वही है न यह वैदिक धर्म का प्रचारक दयानन्द !

गुरु—हाँ, हाँ, वही है, आ गया है अब हाथ में, छोड़ना नही है इसे ! अरे, दयानन्द ! जा, चला जा यहाँ से, जहाँ जाना हो, अन्यथा नामशो रह जायेगा !

दयानन्द—[क्रोध से] पापियों ! किसमें ऐसी शक्ति जो दयानन्द का बाल बाँका भी कर सकें ? नराधमों ! समझ लो भलीभाँति :

नारीमोक्षण में मिले यदि मुझे मृत्यु परम भाग्य हो,
दण्डाघातभी सह्य है सुखकर, प्रायः सुकृत्यार्थं में।
धर्मार्थ छोड़ सकता सब सौख्य लाभ,
धर्मार्थं ही निधन हो अरु जन्म भूय:

महिला-महाराज, इधर से जल्दी चले चलें,

दयानन्द—देवि ! मत डरो, दयानन्द के संरक्षण रहते हुए तुम्हारा इंद्र भी कुछ नहीं बिगाड़ सकता ! अरे, वाम-मार्गियों ! विषयासक्ति छोड़ कर धर्माचरण करो !

गुरु—अरे शिष्यों ! क्या देख रहे हो टुकुर-टुकुर, इस स्त्री के साथ-साथ दयानन्द को भी वध्य पशु बना डालो !

[सब दयानन्द को पकड़ने के लिए आगे बढ़ते हैं। दयानन्द

वनिता—प्रभो ! शीघ्रं गच्छाव आवाम् ।

दयानन्दः-अवश्यं भगवति !

यतः—

शीलभ्रंशनमात्मनाशनमदः संभाषणं सर्वथा
दौर्जन्यं परदोषदर्शनपरीवादप्रवीणा कथा ।
मन्ये दोषमलीमसा हृतधियः किं किं न कुर्वन्त्यमी
पापानां निलये विशुद्धवसतिर्लोके कलङ्कास्पदम् ॥२५॥

एहि शीघ्रं त्वां गृहं नयामि ।

गुरुः-[उत्थाय] ननु गतोऽयं पापः । आगच्छत यावन्न निर्गच्छति तावत् प्रतिकारं कुर्मः ।

[इति सर्वे गताः]

[स्थानं ओखीमठः, अधिष्ठाता महन्तः, दयानन्दः, योगी, समयः-प्रभातः]

अधिष्ठाता-[प्रविश्य] अहो दृढनिश्चयो दयानन्दस्य । मया पुनः पुनः प्रलोभितोऽपि विभवाय न संमतिं दर्शयति । नियतं प्रतिष्ठितः संन्यासमार्गः कलावपि तादृशेन महात्मना । [दृष्टवा] ननु दूरात्स एवागच्छति । भवतु, पुनः प्रलोभयामि ।

...नन्दः—[प्रविश्य] अधिष्ठातृमहोदय ! अनुजानीहि मां गमनाय ।

...दयानन्द ! व्यर्थं कदर्थयसि कायम् ? अनुम... वचः ।

...म] पुनः पुनः निषिद्धा भवन्तः कथं प्रलो-

सब को जमीन पर पटक देता है]

महिला—भगवन्, चलो जल्दी चले चलें यहाँ से !

दयानन्द–हाँ, देवि, जल्दी चलो चलें ! क्योंकि—

शीलभ्रंशन आत्मनाशन् तथा संभाषणादि क्रिया,
अन्यों की बहु निन्दना ! पर गुणाख्याता रुचि प्रांजला
मानूं दोष मलीनता मतिघरे क्या कर्म करते नये,
पापी गेह निवास-पार्श्ववासनलया धर्मीभी दोषांकित ॥२५

आओ शीघ्र ही तुम्हें तुम्हारे घर पहुँचा दूं।

गुरु—[खड़ा हो कर] अरे, चला गया न, बच कर वह पापी, दौड़ी, पकड़ लो उस पापी को, जब तक वह हमारी पहुँच से दूर नहीं चला जाता !

[सब दयानन्द को घेरने चल देते हैं]

[समय–प्रातःकाल स्थान–हिमालय का ओरबीमठ, वहाँ के अधिष्ठाता महन्त, दयानन्द योगी,]

अधिष्ठाता—[प्रविष्ट होकर] अहो दयानन्द ! कितना दृढ निश्चयी है, मैं बारंबार जिसे धन वैभव बताकर थक गया हूँ, किन्तु यह प्रस्तुत नहीं होता महन्ती के लिये। इस घोर कलयुग में ऐसे महात्माओं ने संन्यास धर्म को— सुरक्षित रख छोड़ा है ! [प्रकाश में देखकर] अरे, वही आ रहा है, चलो, पुनः लोभ लालच दिखाऊँगा।

दयानन्द–[प्रवेश करता है] अधिष्ठता जी ! मुझे अब दीक्षा प्रदान कीजिये, यहाँ से प्रस्थान करना है।

अधिष्ठाता–क्यों दयानन्द ! व्यर्थ ही शरीर को पीड़ा पहुंचा रहे हो ! हैरा बात मान जाओ !

दयानन्द–[क्षुब्ध होकर] जब आप से अनेक बार निषेध कर दिया तो आप क्यों लोभ लालच दिखा रहे हैं मुझे ? आप

भयन्ति माम् ? ननु सत्या प्रतिज्ञा दयानन्दस्य प्रवर्तते न पुनर्धर्मध्वसाय। आखण्डलस्य वैभवमपि तृणाय मन्ये किं पुनर्भवताम् ?

अधिष्ठता—दयानन्द ! संतुष्टोऽस्मि ते धर्मश्रद्धामवलोक्य । तत् क्षमस्व मेऽपराधम् (इति अञ्जलिं करोति)

दयानन्दः—हन्त, किमिदमाचर्यते ? ननु पूज्या भवन्तः

अधिष्टात—पूज्या वयं वयसा । परं तपसा, महसा, ब्रह्मचर्येण, धर्मेण च त्वमेव सर्वेषां पूज्यः । तात ! धर्मवीर ! कलिकालोऽयं, ध्वस्तो धर्मः, गतं ज्ञानं, नष्टा श्रुतिः हृता करुणा ।

दयानन्दः—(सहर्षम्) भगवन् ! किं नास्ति कलेः प्रतिकारः ?

अधिष्ठाता—नास्ति । यः शिरश्चिकर्तिषुः स सर्वं कर्ता ।

दयानन्द—सज्जोऽस्मि वेदिकधर्मस्थापनाय ।

अधिष्ठाता—तात ! तथापि कः शृणोति संप्रति सत्योपदेशम् ? हास्यास्पदाय भवन्ति प्राचीना धर्मवक्तारः शङ्करादयः अधुना हि—

संप्राप्ते निधने सतां कृतिमतां काले कराले कलौ
ध्वस्ते धर्मकथाप्रवि[illegible] नष्टे न सन्मार्गके ।

को ज्ञात होना चाहिये कि धर्मोद्धार के लिए ही दयानन्द ने सत्यप्रतिज्ञा की है, धर्मनाश के लिए नहीं। मैं तो इंद्र के स्वर्गीय साम्राज्य को भी कुछ नहीं गिनता, आपकी महन्ती की तो बिसात ही क्या है ?

अधिष्ठाता—दयानन्द ! तुम्हारे धर्म प्रेम को देखकर मुझे अत्यन्त आनन्द हो रहा है, मैं क्षमा चाहता हूँ, अपनी बात के लिये !

दयानन्द—आप यह क्या कह रहे हैं, आप तो मेरे पूज्य हैं।

अधिष्ठाता—हम आयु में बड़े हैं, किन्तु तपस्या, तेज, ब्रह्मचर्य एवं धर्म में तो तुम्ही बड़े हो हम सबसे ! लाल ! धर्मवीर ! यह तो कलिकाल है, धर्म नष्ट हो चुका है, ज्ञान विज्ञान ध्वस्त हो गये हैं, वेदशास्त्र लुप्त हो गये हैं, करुणा मर चकी है।

दयानन्द—(प्रसन्न होकर) भगवन् ! कलियुग का कोई प्रतिकार नहीं है क्या ?

अधिष्ठाता—नहीं है ! जो मस्तक कटाने को प्रस्तुत हो, वही सब कुछ कर सकता है।

दयानन्द—मैं सन्नद्ध हूँ वेदिक धर्म की स्थापना के लिये !

अधिष्ठाता—महानुभाव ! तो भी कौन सुनता है अब सत्योपदेश को ? प्राचीन शकराचाय जेसे वेदोद्धारकों का उपहास उड़ाया जाता है आजकल !

इस समय तो :—

महाघोर कलिकाल में मृत्यु को प्राप्त होते हैं
उद्योगघी आर्यजन,
ध्वस्त धर्मादिवार्ता बने गेह है, नाश पाये
हुए हैं यहाँ तेजजन,

चाण्डालः श्रुतिवित्, कुविन्दकबटुः सांख्योपदेष्टा मुनि-
र्वन्दी किञ्च कविर्भविष्यति पुनर्हा कुम्भकारो मनुः ॥२६॥

दयानन्द ! सर्वथा धर्मविध्वंसिनी विपरीता व्यवस्था देशस्य। स्वाप्नायते सत्यमहिमा, दावायते वेदवादः, कारागृहायते वर्णाश्रमविधानम, शृंखलायते पूर्वजानुगमनम्, हालायते हितोपदेशः, विषायते च सज्जनजनः, पापायते साधुचरित जनानाम, सर्वथा कल्पद्रुमायते स्वैराचारः, चन्दनायते वाचाटता, मोक्षमन्दिरायते कामाचारः, मालायते परदोषदर्शनम्, पीयूषायते विषयसौख्यं, सज्जनायते चाटुकारो दुर्जनः, सर्वस्वायते च धर्मबन्धननिराकरणं सर्वेषाम्। पश्य—

घटानां पटानां च कर्ता स्वायम्भुः
गवां बा सगानां च हर्ता स शम्भुः।
खलानां छलानां च भर्ताऽस्ति विष्णुः
परं पापभागी कुरागी च जिष्णुः ॥२७॥

दयानन्दः—विरम, विरम। नातः परं श्रोतुं समर्थः। कथय, कथं केन प्रकारेण प्रतिविधानं भविष्यति।

योगी:—(प्रविश्य) सर्वं संपन्नं ते योगबलेन। केवलं कुतार्किकमतनिराकरणाय दर्शनरहस्यमाकलयतु।

दयानन्दः—सत्यं वचो भवताम्।

वेद विद्वान चाण्डाल सम है यहाँ, यहाँ मूर्ख
विख्यात है, सांख्यकर्ता मुनि,
बन्दिगण बन गये हैं कवि प्राज्ञ तो, बन गया कुम्भ-
कर्ता मनूप्रह्वघी ॥२६॥

दयानन्द ! राष्ट्र की वर्तमान दशा सर्वथा धर्महीन हो चली है, सत्य तो स्वप्नों की बात हो गयी है, वेद वाद प्रज्वलित हो चुका है, वर्णाश्रम धर्म कारागृह में बन्द हो गये हैं, पूर्वजों की परम्पराए भी जकड़ी जा चुकी हैं हितोपदेश का स्थान दुर्व्यसनों ने ले लिया है, सज्जन भी विषाक्त हो गये हैं, जन जनका साधुचरित्र कलुषित हो रहा है, गुरुवचन शीतल हो गये हैं, कामाचारों ने मोक्षमन्दिरों को विकृत कर दिया है, पर निन्दा एवं परदोष दर्शन वृद्धिगत हो रहे हैं, विषयतृष्णा अमर हो रही हैं, चाटुकार दुर्जन ही सज्जन बन गये हैं, सबको धर्मबन्धन निराकरण अनुकूल हो चला हैं। देखो—

'घटोंका पटोंका विधाता स्वयंभू
मखों धेनुओंका संहर्ता है शभु।
खलोंका छलोंका बिभर्ता है त्रिष्णु,
महापाप भागी कुरागी है जिष्णु ॥ २७॥

दयानन्द—मौन रहिये, मौन रहिये, मुझसे और अधिक नहीं सुना जा सकता, निर्देश दीजिये कि इसका निराकरण कैसे होगा ?

योगी—(प्रविष्ट होकर) सब कुछ तुम्हें योग बल से प्राप्त हो चुका है, कुतार्किको के, वाममार्गियों के पाखण्ड खण्डन के लिये केवल दर्शन रहस्य को सु-व्यवस्थित करने की आवश्यकता है।

दयानन्द—आपका कथन सत्य है भगवन् !

योगी:—संप्रति महात्मनाऽनेन सत्यं प्रतिपादितं, यदि न भविष्यति प्रतीकारस्तदा न चिरादेव भारते—

क्रोष्टारः पृथिवीभुजश्चलधियो घूकाः प्रधानास्पद,
क्रेंकारागपरास्तथा बलिभुजः काका वराकाः प्रजाः।
नित्य स्वार्थपरः प्रतारणपरो धूर्तो बको देशिको
मार्तारश्च समस्तशास्त्रचतुरो गृध्रः प्रजानायकः ॥२८॥

एवं भविष्यति। सांप्रतमेवागतोऽस्मि निखिलं देशं पर्यटन्। तत्र खलु—

गतं वेदज्ञान, प्रशममुपयातागमकथा
विनष्टा वर्णानां व्यवहृतिरतन्त्रा जनगतिः।
यथेष्ट वाचालाः प्रतिदिनमुशन्ति स्वसरणि
स्वतन्त्राचारोऽस्य पतनमनुकूलं कलयति ॥२९॥

तद् दयानन्द ! अवसरोऽयं तव योगबलस्य।

दयानन्दः—अनुकम्पितोऽस्मि। नमो वाम्। गमिष्यामि।

उभौ:—शिवास्ते सन्तु पन्थानः।

[इति निष्क्रान्ताः]

[अलखनन्दा नदी, समाधिस्थः स्वामी दयानन्दः]

दयानन्दः—(नेत्रे उन्मील्य) जय भगवन् !

जय जय विश्वनायक ! जगन्नियमानुगुणं
चरति तव प्रभावमहितं भगवन्निखिलम्।
हृदि विषमव्यथादलित ईश ! भवत्प्रयते
विहर हरन्नहोऽहसमुदारगुणप्रणयिन् ॥३०॥

योगी—सम्प्रति जिस महात्मा ने यथार्थ प्रतिपादन किया है। यदि पाखण्ड का—वामाचारका निरसन नहीं किया गया तो अतिशीघ्र सारे देश में—

'राजा गीदड होयेंगे चलमतिः प्राय: उलूक प्रभु,
क्रेंकाराव निसर्गलिप्त वायससमा वलिभुक् वनेगी प्रजा
स्वार्थीवंचकता लिये सदैव बकसे होयँगे धूर्ताग्रणी,
मार्जाराखिल शास्त्र पण्डित तथा हो गृध्र लोकाग्रणी ।।२८।।

ऐसा ही होने वाला है, मैं समस्त राष्ट्र भ्रमण करके आ रहा हूं। सारे क्षेश में तो

गया वेदज्ञान प्रशमन परा वैदिक कथा,
विनष्टा वर्णों की व्यवहृति अतंत्रा जनकथा,
यथेच्छा वाचाल प्रतिदिन चले स्वपथ में,
स्वतत्राचारों से पतन अनुकूल प्रकशित ।।२९।।

तो दयानन्द ! यह तुम्हारे योगबल के लिये शुभ अवसर है।

दयानन्द—बड़ी कृपा है आपकी, आप दोनों को अभिवादन करता हूं, अच्छा चलूं तो !

दोनों—कल्याणकारी मार्ग हो तुम्हारे !

[चले जाते हैं]

[स्थान—अलखनन्दा तट, दयानन्द समाधि में बैठे हैं]

दयानन्द—[आँखें खोलकर]
जय भगवन् !

"जय जय विश्वनायक ! जगन्नियमानुसारी,
चल चल रहा प्रभाव तव भगवन् निखिल,
हृदय विषम व्यथापीडित ईश ! प्रयतमान रहूं,
हर हर हराघ समूह उदार गुण प्रणयिन् ।।३०।।

दुरधिगमान्ततत्व मुनिदेवगणैर्विनुत
श्रुतिशतशोधिताशय शिवङ्कर ! शेषतया ।
करणकलापरोधविमला ननु योगजुषो
गतभयमादिशन्ति भवतो भगवान्निलयम् ॥३१॥

अकुशलसंगमोहितधियः सुखलेशसुरां
नहि कलयन्ति युष्मदुदयं परिपीय नराः ।
अकलितमाय विश्वसदसत्परमार्थदृश-
स्तव चरितामृतानि मुनयोऽभयवन्ति पपुः ॥३२॥

उरुमहिमव्यपोहितसमस्तनिसर्गभगं
जगदुदयस्थितिक्षपणशक्तितया लसितम् ।
विविधमतेन कलिकुहरे मनुजास्तमसा
ननु निपतन्ति हन्त भवदीयमहोऽकलनात् ॥३३॥

सदसद्बोधमूढहृदये, त्वयि वा चरत-
श्चरणमनन्यमागतवतो भवतः कुटिलाम् ।
विषमपथव्यथां परिहरन्नमृताय मयि
कुरु कुरु, देव ! देव ! करुणां भगवन् ॥३४॥

(सर्वत्र विलोक्य) अहो परमपावनो हिमालयप्रदेशः । इयं सरिद्वराऽलखनन्दा । असौ हरिद्वारमनुगतः पर्वतभागः । इयमितो दूरावलम्बिनी शिखरावली । ततः कैलासशैलपर्यन्तः शिखरप्रान्तः । अहो सर्वथा हिमालयो मन्दिरं प्रकृतेः, रंगस्थलीव हिमानी वसुंधरा; स्थाने-स्थाने विजितकरणाः परमात्मशरणा योगिचरणाः, दुरवगाहिन्यो वाहिन्यः, रञ्जितविश्वमनांसि सरांसि, गलितकंधरा निवासबन्धुराः कन्दराः, आलेखिताम्बरपथः शृंगसंचयः, सहोदरा इव

कठीनतमसारे ऋषि देवगणादि स्तुत,
श्रुति बहुसंस्कृतान्तर शिवकर! शेष रहे!
करणकलापरोध अमला, नहि योगिजन!
गतभय कहते भगवन् तेरा निलय॥ ३१॥
अनिपुणसंग मोहित मति, प्रमुदांश सुरा,
जन नितपान किये नहीं, तेरा ऊदय,
मुनिगण पीत तेरा निरतिशयामृत तव अहो,
अकृत जगत् सदसत् परमार्थ दृशो॥ ३२॥
उरुगुरुता तिरस्कृत समस्त निसर्ग तेज,
भव जननस्थिति विनशन् सामर्थ्य तमोपशुभ,
विविध गती कलिकुहरस्थ नरनारी भ्रमी,
बनते तब ईश न सगति प्रापण से ही॥३३॥
सदसद् ज्ञान मूढ मन में तव सेवा रत ही,
चरण कमलान्तर्मुखी कुटिलान व्यथा,
अवगत नित्य करते सुधामय तुझमें,
निखिल निराकृति, संस्थित कर कर करुणाकर देव॥३४॥

(सर्वत्र निहार कर) अहो हिमालय प्रदेश परम पावन है, यह देव नदी अलखनन्दा है, यह पर्वतमाला हरद्वार की ओर चली जा रही है, यह इधर से शिखरावली दूर चली गयी है। उधर कैलास मानसरोवर तक पर्वत शृंखलाएँ गगन चुम्बिनी चली गयी हैं, सचमुच हिमालय प्रकृति माता का मन्दिर है, हिमानी भूभागरंग भूमि सा है, पदे-पदे जितेन्द्रिय परमात्म मग्न योगीश्वरों की वास भूमि है! नदी-नाले दुस्तीर्ण है, मानवों के मनों का मोहने वाले सरसरोवर है, सुन्दर मनोहर गिरीगह्वर भरे पड़े हैं, आकाशस्पर्शी पर्वतपथ विस्तृत है, ये नन्हे नन्हे मृगशावक सहोदर जैसे हैं, शिष्यों के समान अनुशासित विहगावलियाँ हैं, लता पादप वल्लरियाँ बन्धुभगिनियों के समान

मृगशावकाः, शिष्या इव विहंगाः, बान्धवनिभा महीरुहाः, अहो किं न सुखकरं हिमालयस्य, यत्र नित्यं प्रसीदति मुक्तिः। नमस्ते विश्वविधायिने देवदेवाय !

(उत्तिष्ठति)

प्राप्तं मया प्राप्तव्यम् । अधुना भारते गन्तव्यम् । दर्शयितव्यो मया वेदसनातनमार्गः । किञ्च योगिना कुतार्किकनिराकरणाय विद्या समुपार्जनीयेति समादिष्टोऽस्मि । आः किं भयं परमात्मचरणावलम्बिनो मम ? (गच्छति) अहो आमर्षतीव हिमालयः स्नेहेन ।

भवतु, नमो जय जय !

(इति निष्क्रान्तः)

(स्थानं यमुनातीरम् विरजानन्दकुटी; भारतेन्द्रः)

भारतेन्द्र–हन्त, परिश्रान्तोस्मि सर्वतो भ्रमणेन । भूयान् कालो व्यतीतो वेदविद्यालयं प्रहीणवतो मम । तथापि सतीर्थ्यस्य न क्वापि मूलशङ्करस्य नामापि श्रूयते । हन्त कथमुन्मत्त इव भ्रमामि ! अथवा किं करोमि ? निराश्रयं मां संस्कार एव भ्रमयति । सांप्रतं तु विद्यालाभोऽपि परिहृतकल्पः। किन्तु विविधप्रान्तप्रवासेन देशस्यान्तर्व्यवस्था प्रत्यक्षीकृता।

ध्वस्तं मन्ये भारतस्य गौरवम् । अथवा किं करोतु वराकः विदेशसहायो देशः । आः अन्यदिव भारतम् । परिश्रान्तो- अत्रऽस्मि । मथुरामागत्य श्रुतं मया तत्र भवतो विरजानन्दस्य गौरवम् । तमेवमाराधयिष्यामि सांप्रतं

है; ओहो हिमालय का कण-कण तो सहज सौन्दर्य से भरा पड़ा हैं, अणु-अणु में मुक्ति मुखरित हुए हैं। यहां पर, नमन हो नमन हो महान् कलाकार विश्व के विधाताको !

[उठ खड़ा हो जाता है]

मुझे अभीष्ट मिल गया है, अब मुझे भारत में ही चलना चाहिये, वैदिक सत्यसनातन मार्ग का पुनः स्थापन करना होगा, और योगीश्वर ने तो मुझे कुतर्कोंके समुचित निराकरण करने के लिये सत्यविद्याग्रहण करने की आज्ञा प्रदान की हैं, भला प्रभुपरायण मुझे किसका भय है ? (चल पड़ता है) ओहो ! यह हिमालय तो स्नेहसे खींच रहा है मुझे ! इसे नमन हो, नमन हो !

[वहाँ से निकल पड़ता है]

समयः प्रभातवेला; स्थलः यमुनातट स्थानः विरजानन्द कुटीर,

भारतेंद्र—हाय रे, मैं तो थक कर चकनाचूर हो गया हूं, चारों ओर घुमने से, बहुत समय बीत गया है। वेदविद्यालय में आये हुए मुझे। तो भी मेरे सहपाठी मूलशंकर अभी तक नाम भी तो सुनाई नहीं पड़ता, मैं भी पागलों को भाँति क्या घूम रहा हूं ? अथवा करूँ भी तो क्या करूँ ? निराधार मुझे ये संस्कार ही तो घुमा रहे हैं। और अब तो विद्याभ्यास भी नहीं हो रहा है, किन्तु विविध प्रदेशों की यात्रा से देश की अन्तर्व्यवस्था समझ में आ गयी है।

लगता है भारत का गौरव नष्ट हो गया है अथवा क्या कर सकता है विदेशी—सहायता जीवित रहने वाला राष्ट्र ? यह तो दूसरा ही जैसा भारत लग रहा है। थक तो गया हूं, यहाँ मथुरा में आकर मुझे पूजनीय स्वामी विरजानन्दजी का नाम सुनने में

विद्यालाभाय । इयं नेदिष्ठा महात्मनः कुटिका । किं त्वेतदप्याकर्णितं यत्स महात्मा नाध्यापयति मन्दमेघाविनं शिष्यम् । [सरोषम्] अहो विद्यादंभः ! अथवा न दम्भः शुक्तिषु वर्षन्तः पयोघरा मौक्तिकानि जनयन्ति ।

संप्राप्य शिष्यान् विमलप्रबोधान्
वर्षन्ति विद्यां गुरवः प्रसन्नाः ।
न कर्दमे शारदचन्द्रबिम्बं
पदं विधत्ते कुमुदानुरागि ।।३५।।

तथापि तस्य महानुभावस्य दर्शनमवश्यं करणीयम् । निकटे च कुटिका । यावदत्र विश्रम्य गमिष्यामि । अहो श्रुतं मयाऽस्ति तत्र कोऽपि दयानन्दः संन्यासी तमेव सेवमानो यस्य गौरवं मथुरायां गीयते गृहे गृहे इति । अवश्यं

पुत्रः स्वभक्तः कुलमस्तदोषं
ज्ञानं विवेकोदयमात्मबोधम् ।
शिष्यः कृतज्ञो जगतीतलेऽस्मि-
श्चतुष्टयं दुर्लभमेव मन्ये ।।३६।।

ननु स मूलशङ्कर एतादृश एवाभवत् ।

[नेपथ्ये]

अपि मम वचः सत्यं करिष्यसि ? [श्रुत्वा] मन्ये स एव महात्माऽऽगच्छति किमपि वदन् । भवतु, एकान्ते तिष्ठामि । [तथा करोति]

[ततः प्रविशति श्रीगुरुदेवविरजानन्दः सदयानन्दः]

विरजानन्दः—अपि मम वचः सत्यं करिष्यसि ?

आ गया हैं, जिन्हीं की सेवा करके विद्याभ्यास करूंगा। अब तो पास में ही तो—महात्मा की कुटिया, परन्तु सुना तो यह भी है ये स्वामीजी मन्द-बुद्धियों को नहीं पढ़ाते (गुस्से से) हाय रे विद्यादम्भ ! नहीं नहीं, यह दम्भ नहीं है, सीपों में पड़ी हुई वर्षाकी बूँदें ही मोती बन जाती है।

'सद्बुद्धि शिष्यगण से गुरु मोद पाके,
ज्ञानाम्बु वर्षण सदा करते प्रसन्न,
क्या शारदेन्दु रखता पद पंकभू पें,
चाहे है चन्द्र कुमुदावलि वल्लभाति ॥३५॥

ऐसे महात्मा के दर्शन करने का पुण्य प्राप्त करना ही चाहिये, पास में ही तो कुटिया है, अच्छा थोड़ा सा विश्राम कर लूं यहाँ पर। हाँ हाँ यह भी सुनने में आया है, इन्हीं स्वामी महाराज की सेवा में रहकर एक दयानन्द नामका संन्यासी विद्याध्ययन कर रहा है, दयानन्द का घर घर में जय जयकार हो रहा है, ठीक है :—

पिताभक्त सन्तान कीर्तिशाली,
शुभ ज्ञान मण्डित हो आत्मबोधी,
कृतज्ञानुगामी सुशिष्यावली जो,
सुदुर्लभ ये चार संसार मध्ये ॥३६॥

अरे हाँ, वह मूलशंकर भी तो ऐसा ही था;

(नेपथ्य में)

तो मेरी बात सच्ची करोगे ? (सुनकर) लगता है वही महात्मा कुछ बोलता हुआ चला आ रहा है, अच्छा तो एकान्त में खड़ा हो जाऊं,

(एकान्त में ठहर जाता है)

(श्री गुरुदेव विरजानन्द के साथ दयानन्द प्रवेश करता है)

विरजानन्द—तो मेरी बात सच्ची करोगे ?

दयानन्दः—भगवन् गुरो ! सत्यं करिष्यामि ऋतं वदिष्यामि।

[भारतेन्द्रो दयानन्दं पश्यति]

विरजानन्दः—दयानन्द ! प्रसन्नोऽस्मि तव विद्यया। मम वाञ्छितां गुरुदक्षिणां दास्यसि ?

दयानन्दः—गुरुवर्य ! आत्मेरितेयं मे प्रतिज्ञा, प्राणदानेनाऽप्यहं भवतां वचः सत्यं करिष्यामि। आज्ञापयन्तु गुरवः।

विरजानन्दः—[सहर्षम्] वत्स ! दयानन्द ! पुत्र !

अज्ञानतिमिरे घोरे दुर्वारे मोहसागरे।
मज्जन्तं हा निरालम्बं वेदभानुं समुद्धर ॥३७॥

नानाधर्मघनध्वान्त-नष्टसत्यपथ पुनः।
वेदभानोः प्रकाशेन जगज्जीवय सांप्रतम् ॥३८॥

दयानन्दः—अनुगृहीतोऽस्मि। गुरुदेव ! प्राणार्पणेनाऽपि सर्वं करिष्यामि।

विरजानन्दः—विजयी भूयाः, वत्स ! अन्धस्य मे त्वमेव चक्षुरसि। एहि एहि परिष्वजस्व।

[दयानन्दः पादयोः पतति]

भारतेन्द्रः—[स्वगतम्] किमिदं भोः ! स एवायं लक्ष्यते, सैवाकृतिः स एव स्वरः। हन्त मूलशङ्करोऽयम्। अथवा मार्तण्डमन्तरा कस्तमो हरिष्यति ?

विरजानन्दः—वत्स दयानंद ! याहि कल्याणाय। जानासि दुर्दशां देशस्य। यं प्रतीकारं कर्तुमिच्छसि तं कुरु। विजयं दास्यति भगवान्। शिवाः सन्तु ते पन्थानः। शिवतातिरस्तु।

दयानन्द—गुरुवर्य, सच्ची करूँगा, सत्य बोलूँगा,

(भारतद्र दयानन्द को देखता है)

विरजानन्द—दयानन्द, तेरी विद्या से मैं प्रसन्न हूँ, मेरी अभीष्ट दक्षिणा दे सकोगे दयानन्द ? मुझे—

दयानन्द—गुरुदेव ! मेरी प्रतिज्ञा तो आत्मप्रेरित है। यह आपकी बात को मैं प्राण देकर भी पूरा करूँगा। महानुभाव, आदेश दीजिये !

विरजानन्द—वत्स ! दयानन्द ! पुत्र !

'अज्ञान अन्धकार दुर्निवार मोह सागर में
निमग्न निराधार वेद भानु को उबार ले।
नाना पन्थ सम्प्रदाय ध्वान्त नष्ट सत्यमार्गं
जीवन दे वेदज्योति से जगत को अब सुधार ले॥३७॥

दयानन्द—अनुगृहीत हूं, गुरुदेव ! प्राणार्पण करके भी सब कुछ करूँगा।

विरजानन्द—विजयी बनो ! वत्स ! मुझ अन्धे की आँख तू ही तो है, आ कर आलिंगन तो दे जा,

(दयानन्द चरणों में गिरता है)

भारतंद्र—(स्वगत) अरे, यह क्या ? यह तो वैसा ही लग रहा है, वही आकृति है, वही स्वर है, मूलशंकर है क्या यह ? अथवा सूर्य के बिना अन्धकार को हटा सकता है ?

विरजानन्द—(सहर्ष) पुत्र दयानन्द ! कल्याण के लिये यहाँ से जाओ, देशधर्म की दुर्दशा तो जानते ही हो, जैसा भी प्रतिकार करना चाहते हो वैसा करो, भगवान् विजयी बनायेंगे, शिवास्ते पन्थानः सन्तु' तुम्हारा मार्ग कल्याणकारी होवे, कल्याण ही कल्याण होवे।

[दयानन्दः प्रणमति, विरजानन्दो गच्छति]

दयानन्दः–जय भगवन् ! जय ! फलितो मे मनोरथः । एषोऽहं गुरुशासनं विधास्यामि । आ: किमिदमूर्जितमिब वपुषि ?

भारतेन्द्रः–[आगत्य] महात्मन्, नमस्ते ।

दयानन्दः–[साश्चर्यम्] अये, कः भारतेन्द्रः ?

भारतेन्द्रः–आम् मूलशङ्कर ! [इति प्रणमति]

दयानन्दः–उत्तिष्ठ सखे ! उत्तिष्ठ । चिराद्दृष्टोऽसि ।

भारतेन्द्रः–किमिदं शङ्कर !

दयानन्दः–यदुचितममृताय ।

भारतेन्द्रः–जितं संन्यासेन, श्रुता मया तव प्रतिज्ञा । धन्य भारतम् ।

दयानन्दः–प्रियं नः । कथय त्वं कथं पर्यटसि ? कुशली महानुभाव श्चन्द्रशेखरः ?

भारतेन्द्रः–[साश्रु] कुशलं तस्य । जानाति मां सखा । निरालम्बोऽस्मि ततोऽपि भवदीयपुण्यसंस्कारो मां व्याकुलयति ।

दयानन्दः–प्रियं. प्रियम् । किं किं कृतम् ? अहो त्वां दृष्टवा समतीतं प्रत्यक्षमिवालोकयामि ।

भारतेन्द्रः–भगवद्गमनादनन्करं मयाऽपि वेदविद्यालयं परिहरता देशे देशे ग्रामे ग्रामे यथाशक्ति धर्मोपदेशं कुर्वता प्राप्तमन्ते तव चरणम् ।

दयानन्दः–प्रियं प्रियम् । का कथा देशस्य ?

भारतेन्द्रः–दशमी दशा वर्तते ! विपर्यस्तं भारतं, अस्तमितं पुरातनगौरवम्, शेषितं साधुचरित्रम्, निर्मर्यादं वर्णानुचरणम्,

(दया नन्द प्रणाम करता है, विरजानन्द प्रस्थान करते हैं)

दयानन्द – जय हो भगवन् ! मेरा मनोरथ सफल हो गया है, यह मैं गुरु के आदेश का परिपालन करूंगा, यह शरीर में रोमांच क्यों हो रहा है ?

भारतेंद्र—[निकट आकर] महात्मन् ! नमस्ते !

दयानन्द—[आश्चर्य से] अरे, कौन भारतेंद्र है ?

भारतेंद्र—हाँ, मूलशंकर ! [कहकर अभिवादन करता है]

दयानन्द—उठ उठ मित्र ! चिरकाल के बाद दीख रहा है ।

भारतेंद्र—यह क्या है शंकर !

दयानन्द-अमृत के लिये जो उचित है,

भारतेंद्र-संन्यासी बनकर तुमने जीत लिया है, मैंने तुम्हारा प्रण सुन लिया है, धन्य है भारतवर्ष को !

दयानन्द—हमारा भला हो, बता तो सही तू क्यों घूम फिर रहा है ! महानुभाव चन्द्रशेखर सानन्द तो है न ?

भारतेन्द्र—(आँसू भरी आँखों से) हाँ कुशल है उसका, मुझे जानते तो हो तुम ! बेसहारा हूँ, तिसपर भी तुम्हारे शुद्ध संस्कार मुझे व्याकुल किये हुए हैं ।

दयानन्द—अच्छा, अच्छा, क्या क्या किया है ? तुझे देखकर तो अतीत प्रत्यक्ष हो गया सा लग रहा है मुझे !

भारतेन्द्र—तुम्हारे चले जाने के बाद मैं भी वेद विद्यालय छोड़ कर देश देश, ग्राम ग्राम में यथाशक्ति धर्मोपदेश करता हुआ तुम्हारे कदमों में आ पहुंचा हूँ ।

दयानन्द—अच्छा अच्छा ! क्या दशा है देश की ?

भारतेन्द्र—देश की दुर्दशा है, भारत बदल गया है, प्राचीन गौरव नष्ट हो गया है, साधुचरित्र समाप्त हो चुका है, वर्णाश्रम धर्म निर्मर्याद हो रहा है, दुर्भिक्षने खा

कवलितं दुर्भिक्षेण, निगलित दारिद्र्येण, भक्षितं भ्रष्टाचारेण, वञ्चितं शिक्षया, समास्कन्दितं पाश्चात्यावलेपेन, सर्वथा अभूतपूर्वं भारतं वीक्ष्य दूयते मे मानसम्।

अधीत्य शास्त्राण्यधमा यथाशयं
कथञ्चिदाविष्कृतलेशदुर्ग्रहाः।
ऋषिप्रणालीमतिशेरते सखे!
कुलं शुनामिच्छति सिंहरूपताम् ॥३९॥

दयानन्दः—श्रोतव्यं श्रावितोऽस्मि।

व्यर्था विद्या भवति सकला बंधनस्थे स्वदेशे
व्यर्थं सर्वं भवति सकल बन्धनस्थे स्वधर्मे।
व्यर्था शक्तिर्भवति विपुला बन्धनस्थ स्वदेशे
किं न व्यर्थं भवति भुवने बन्धनस्थ स्वधर्मे? ॥४०॥

सांप्रतं गुरुशासनं पालयिष्यामि। अतःपरं देशधर्मयोर्बन्धनानि छेत्तुं जीवनार्पणं करोमि। अपि नाम रोचते ममानुगमनम्?

भारतेन्द्रः—आः किमुच्यते? सर्वदा भवच्चरणसेवको भूत्वा विचरिष्यामि। किन्तु...

दयानन्दः—ननु वक्तव्यम्।

भारतेन्द्रः—दुःसाध्यमिदम्।

दयानन्दः—किं दुःसाध्य दृढग्रहेण?

भारतेन्द्रः—तथापि केचन स्वभावतः सपत्ना भविष्यन्ति। अवमानस्तु शिरस्येव स्थितः।

दयानन्दः—मा, मा, विकल्पय। न श्रोष्यामि ते वचः। यदि तव दृढा श्रद्धा भारतविपन्निरासाय, तर्हि शृणु—

लिया है, दरिद्रता ने देश को लील लिया है, भ्रष्टाचार ने खा लिया है, शिक्षण से वंचित होता जा रहा है, पाश्चात्य मिथ्याभिमान ने घर दबाया है, सर्वथा नवीन नवीन भारत देखकर मेरा मन मुरझा चुका है :—

पामर पढ़कर शास्त्र, यथाशय दुर्ग्रह शाली
करते अर्थ अनर्थ सर्वथा संशोधन मतिवश,
ऋषिमर्यादोल्लंघन करते हैं वे,
कुत्ता कुल में जन्म, सिंह बनने को तत्पर ।।३९।।

दयानन्द—सुन तो सही, जो मैं सुनाना चाहता हूँ—

बन्धन में निज देश, व्यर्थ सारी विद्याएँ,
बन्धन में निज धर्म, व्यर्थ सारी अभिधाएँ
बन्धन में निज देश, शक्तियाँ सारी व्यर्था
जग में है सब व्यर्थ, पाश में यदि हो धर्म ।।४०।

अब मैं गुरुदेव के शासन का परिपालन करूँगा, देशधर्म के बन्धन को काटने के लिए अब मैं जीवन समर्पित कर रहा हूं, क्यों तुम मेरे पिछे चलना चाहोगे ?

भारतेन्द्र—इसमें पूछने की क्या बात है ? सर्वथा तुम्हारे चरणों का सेवक बनकर घूमा करूँगा। किन्तु······

दयानन्द—कहो न, चुप क्यों हो गये ?

भारतेन्द्र—दु साध्य है यह,

दयानन्द—दृढाग्रह के सामने कैसा दुःसाध्य ?

भारतेन्द्र—तथापि कुछ तो स्वभावतः ही शत्रू बन जायेंगे, अपमान सिर पर बैठा ही समझो !

दयानन्द—नहीं नहीं ऐसा सोचना ठीक नहीं है, मैं तेरी बात नहीं सुनना चाहता, यदि सचमुच तुम भारत दुर्दशा नष्ट करना चाहते हो तो सुन :—

योग्यायोग्यविचारणां परिहरन् स्मृत्वा निजं गौरवं
कर्तव्यं परिपालय त्वमधुना मा मा विमोहं कृथाः ।
संप्राप्ते समये बिभीहि न परं कौलीनवादादपि
विश्वेषामुपकारसाधनरता मुख्या न मानैषिण: ॥४१॥

भारतेन्द्र:-[पादयो: पतति] अनुगृहीतोऽस्मि ।

उभौ :-नमस्ते, जगदानन्दाय परमात्मने ।

[इति निष्क्रान्तौ]

मति "गुरुदक्षिणा" नाम तृतीयोऽङ्कः समाप्तः ॥



आ जाये क्षण पै न भीति करना कौलीन वादों से भी,

ऊँचे मानव विश्वहेत नियत व्यापारवन्तोन्नति,
योग्यायोग्यविचारहीन सततं आत्मप्रशंसास्मृति,
ना मोही बन साम्प्रतं कर सदा कर्तव्य की पालना,
ना डरियों क्षण आपदे गृहयश त्यागार्थं संसाधना ।।४१।।

भारतेन्द्र—[चरणों में गिरता है] अनुगृहीत हूं,

दोनों—नमस्ते, नमस्ते संसारानन्द हेतु भगवान् को ।

[दोनों चले जाते हैं]

इति "गुरुदक्षिणानामक" तृतीय: अंक: समाप्त:



चतुर्थोऽङ्कः

।।असतो मा सद्गमय।।

(स्थानं हरिद्वारं; कनखलस्योपसीम, कुंभावसरः, प्रातः कालः, संन्यासिवृन्दं पश्यन्तौ प्रविशतौ महेन्द्रनिरंजनौ यात्रिकौ)

महेन्द्रः–निरञ्जन ! अपि नाम संकल्पिता भवता संस्थितिः? यात्रिकाणां कृते कनखलं प्रचुरावकाशं स्थानम् । यदि नाम तवानुकूलं स्यात्, तत् संश्रयतां मदीयं निकेतनम् ।

निरंजनः–महेन्द्र ! नास्ति प्रयोजनं चिरावासाय । अद्य श्वो वा जानीहि गमनाय माम् ।

महेन्द्रः–कथमिदं संकल्पितम् ! ननु द्रष्टव्यं न भवता दृष्टम् । आगतप्रायः कुम्भस्नानसमयः ।

निरंजनः–वयस्य ! नावशिष्यते द्रष्टव्यम् । आप्यायितोऽस्मि कुम्भदर्शनकुतूहलेन । अतस्त्वामाप्रष्टुमेवागतः । यदि रोचते भवते, स्थातव्यम् । अहं तु गमिष्यामि ।

महेन्द्रः–महाभाग ! न जाने, कीदृशं चञ्चलं ते चित्तम् ! ननु ग्रामे भवतैव पूर्वं महोत्सवं कुम्भदर्शनसौख्यमधिगन्तुं बलवती समुत्कण्ठा प्रदर्शिता मयाऽनिच्छताऽपि भवतः स्नेहवशादनुमतोऽयं व्यवसायः ।

चतुर्थो अंकः

।। असतो मासद्गमय ।।

स्थानं-हरद्वारं; कनखल के समीप, समय-प्रात:काल; कुम्भ का अवसर; महेन्द्र और निरजन साधु संन्यासियों का दर्शन करते हुए प्रविष्ट होते हैं)

महेन्द्र—निरंजन ! अपने लिये स्थान स्थिर कर लिया है। यात्रियों के लिये कनखल पर्याप्त स्थान है, यदि तुम्हें अनुकूल रहे तो मेरे स्थान में रह जाओ।

निरंजन—महेन्द्र ! कोई लम्बा समय थोड़े ही रहना है. ? आज या कल मुझे जाना पड़ेगा !

महेन्द्र—ऐसा क्यों कहते हो ? तुमने कुछ दर्शनीय तो देखा ही नही है; कुम्भ स्नान का समय सन्निकट है।

निरंजन—मित्र ! अब देखने की इच्छा नही रही। कुम्भ दर्शन की चाह से भर गया हूं; इसलिये तुम्हे पूछने के लिये आया हूं; तुम्हें यहाँ रहना जँचता हो तो रह जाओ, मैं तो चला जाऊँगा !

महेन्द्र—महाशय, न जाने तुम्हारा मन कितना चंचल है, तुमने ही तो गाँव में कुम्भ दर्शन की उत्सकता बतायी थी, नहीं तो मैं कब चाहता था यहाँ आना ? किन्तु तुम्हारे प्रेमवश आना पड़ा यहाँ !

निरंजनः—अनुभूतं मया समस्तम् । अवलोकितमवलोकयितव्यम्।

महेन्द्रः—किमनुभूतं किमवलोकितम् ? वयस्य ! श्रुतं मया कुम्भसमये सर्वं एते नग्नाप्राया अनेकसम्प्रदायानुयायिनः सन्यासिसाधवो गङ्गायां नग्नीभूय स्नास्यन्ति, तदर्थं देशादनेकशः श्रद्दधाना जना दर्शनकांक्षिणः प्रतिवासरं समागच्छन्ति । भोः स्थानमपि दुरापं भविष्यति । किं व्यतीतवासरे न भवता वीक्षित यत् जनरक्षाप्रबन्धव्यवसायव्याकुलाः सहस्त्र संचरन्ति रक्षकाः सर्वत्र । गमनागमनयोः पन्था विभिन्नः कृतः । पारेगङ्गमपि नूतनं जीवलोकमिव निवासित व्यवस्थया सैकते जनसमवायं समीक्ष्य चकितचकितमिव मदीयं चेतः शून्यमिव मन्ये । मित्रवर्य ! कियद्रहस्यं धर्मस्य ? (दृष्टवा) पश्य दूरात्कश्चिदवधूत-(नग्नः) साधुसघातः इत एवागच्छति । आगच्छ यथास्थानं स्थिरीभवावः ।

निरंजनः—हा धिक् भारतवर्षदुर्भाग्यदर्शनम् ।

महेन्द्रः—आः किमुच्यते ? ननु नमस्या एते सन्यासिनः ।

निरजनः—नैते सन्यासिनः परं धर्मध्वजिनः सत्यनाशिनः अवधारय रहस्यम् —

"नानाजातिभवाः कुपूयचरणा धर्मप्रथाध्वंसकाः
स्वाच्छन्धेन मलीमसाः कलिमलग्रस्ता भ्रमन्त्युत्पथाः ।
दोषावेशवशादवोधितनिजक्रूराभिधानक्रियाः
पापा भारतवर्षदुर्गतधराभाराय सन्यासिनः" ॥१॥

महेन्द्रः-(सक्षोभं) आः किमिदं न नमनकर्मीकरोषि धर्मशर्मपारगं देशोदयपरायणं सन्यासवृन्दम ?

निरंजन—मैंने सब अनुभव कर लिया है, दर्शनीय के दर्शन कर लिये हैं।

महेन्द्र—क्या अनुभव कर लिया है? क्या देखाभाला है? भैय्या! मैंने सुन लिया हैं कि कुम्भ के अवसर पर ये नाँगे आदि भाँति-भाँति के सम्प्रदाय वाले साधु महात्मा गंगा में नंगे होकर स्नान करेंगे, इसी के लिये समस्त देशके असंख्य दर्शनार्थी श्रद्धालुजन प्रतिदिन आ रहे हैं, ऐसे तो स्थान मिलाना ही मुश्किल हो जायेगा, क्या कल तुमने नहीं देखा कि जनता की रक्षा में सहस्त्रों राजपुरुष संलग्न है, आवागमन के मार्ग अलग अलग कर दिये गये हैं, गंगाके परले तटपर भी बालुकामयी भूमि पर नई नई सजीव सृष्टि साकार होते देखकर मेरा चकित मन सूना सा हो गया है, मित्रवर! कितना रहस्य है धर्म का? (देखकर) देखो, देखो, दूर से आती हुई नंगे साधुओंकी टोली इसी ओर आ रही है। चलो हम स्थान पर खड़े हो जाये!

निरंजन—हाय रे! अभागे भारत! तेरी यह दुर्दशा?

महेन्द्र—क्या कह रहे हो? अरे यह तो नमस्य साधु सन्त है।

निरजन—नहीं ये सन्यासी नहीं है, किन्तु धर्मध्वजी सत्यानाशी हैं। जानते हो इनका रहस्य?

'विभिन्नवर्णोद्भव पापचेता धर्मप्रथाध्वंसक ये समस्त,
स्वच्छंदता बद्ध मलीनवृत्त, प्रगल्भता पूर्ण फिरें कुपन्थ
अनेक दोषोपहत क्रियार्थ स्वपाप संदर्शित नीच भाव
संन्यासधर्मी अघओघराशी निमित्त ये भारत दुर्दशा के॥१॥

महेन्द्र—(क्षोभ के साथ) हाय रे, यह क्या निन्दा कर रहे हो? धर्म एवं कल्याणों के प्रदाता, देशोदय निरत महात्मा साधु संन्यासियों की?

निरंजनः–वयस्य ! विप्रलब्धोऽसि । न जानासि चरित्रमेतेषाम् । गतास्ते भारतसौभाग्यविधायिनः सन्यासिनः, येषां पुण्य-चरणरजोभिः पूतं भारतं स्वर्गायमानमिव दिव्यतामनुभवति स्म । दुर्लभं हि तेषां दर्शनम् । सांप्रतमधिकाधिकं धिक् क्रियते क्रूरकर्माभिधर्ममर्मप्रहारिभिर्बहुभिर्भारतकुक्षिम्भरिभिर्भारभूतैः सन्यासिभिः ।

नाधीत विधिवत्कुलक्रमयशोऽलङ्कारशंकाकरै-
रेभिः शास्त्रमशेषगौभवजुषः का वा कथा शर्मणः ।
सन्यस्ताखिलसत्यधर्मनियमाः क्रूरक्रियाः पांसुला
देशस्याभ्युदयावरोधनपरा एते तु संन्यासिनः ।।२।।

महेन्द्रः–आः किं कथयसि ? वयस्य ! अमङ्गलं साधुजननिन्दा-चरणम् । सांप्रतं विपरीतमिव पश्यामि भवन्तम् । ननु सा भवतः श्रद्धा स्वप्नायिता किमु ?

निरंजन –सखे ! सत्यं वदामि, न साधुजनविगर्हणं श्रेयस्करं, किन्तु सिंहचर्मावृताः शृगाला न योग्यतामर्हन्ति तेषाम् ।

महेन्द्रः–कथं एतेऽपि यथासंभवं निज निजं मण्डलं विधाय, सर्वासु दिक्षु सदुपदेशपीयूषपूरैरघतमांसि मानवानां क्षालयन्तः सर्वदा संचरन्ति भारते ।

निरंजनः–[विहस्य] मन्ये, न भवान्भारतीयः । न जानासि विषमपरिणतिमेतेषाम् । त्वं तु पुरातनगौरवस्य स्वप्न-सुखमनुभवसि । शृणु—

निर्मायाधमनीचधूर्तशबरप्रायं निजं मण्डलं
कुर्वाणाः कपटावलेपकुशला ग्रामे जनास्कन्दनम् ।

निरंजन—मित्र ! तुम बड़े सरल हो, इनका चरित्र नहीं जानते हो, वे सन्त साधु सन्यासी भी मर मिट चुके हैं, भारत के वे भाग्य विधाता, जिनकी पवित्र चरणरज से पवित्र यह भारत देश स्वर्ग से बढ़कर था, ऐसे महात्माओं के दर्शन अब दुर्लभ है, और इस समय तो पापपंकमग्न क्रूरकर्मनिरत, धर्म मर्म प्रहारक, पेट भरने वाले भाररूप अधिकांश ऐसे संन्यासियों को धिक्कार है।

'ये राष्ट्रोन्नति मार्ग बन्धन कर प्रत्यग्र दम्भाकर,
सन्यासी श्रुति शास्त्र सार रहित प्रायः प्रघृष्टाकर,
विद्या प्राप्त न की यथोक्त विधि से प्रज्ञा प्रकाशान्तर
क्ता आशा इनसे स्वराष्ट्रहितकी ये पापपंकाकर ॥२॥

महेंद्र—अरे क्या बकते हो ? सखे ! साधु संन्यासियों की निंदा अमंगल सूचक होती है, अब तो तुम विपरीत लगने लगे हो; वह श्रद्धा तो तुम्हारी स्वप्न सी हो गयी है।

निरजन—बन्धो ! सच कह रहा हूं, मैं भी यही मानता हूं, कि साधु महात्माओं की निन्दा अकल्याणकारी होती है, किन्तु सिंह की खाल ओढ़े हुए सियार, सिंह की योग्यता कैसे पा सकते हैं ?

महेन्द्र—क्यों ये साधुसन्त भी तो अपनी मण्डली बनाकर चारों दिशाओं में सदुपदेश अमृतवचन वारिसे मानवों के पापान्धकार को मिटाते हुए सर्वदा घूमते रहते हैं, भारत भर में !

निरंजन—(मुस्कुराता हुआ) लगता है तुम भारतीय नहीं हो ! तभी तो तुम्हें इन साधु सन्तों की भयंकर स्थिति का भान नहीं है, तुम तो प्राचीन गौरव की सुखनिद्रा का अनुभव कर रहे हो, सुनो :—

बनाते ये पापी निज-निज समूह भ्रमण को,
यों लीलाचारी नगर जन या ग्रामजन को, ।

हार हारमनन्तवित्तमधिकं मोदं दधाना इमे
लोकोल्लुण्ठनलम्पटा प्रतिपदं देशक्षयं कुर्वते ।। ३ ।।

तथा च—

नो शास्त्राध्ययनं न साधुचरण न धर्मकर्मस्पृहा
संसाराभ्युदयप्रशस्तपदवी दूरं समेषां गता ।
लंपाका: कुलकण्टका: कृतिमतां विद्वेषिणो दुर्गता:
स्थेमानँ कलयन्ति भारतधराभाराय संन्यासिन: ।।४।।

महेन्द्र:—वयस्य, वयस्य ! विलक्षणं तव हृदयम् । साम्प्रतं बहु प्रष्टव्यं वर्तते ।

निरंजन:—यथेच्छं पृच्छ महेन्द्र !

महेन्द्र:—ननु किमु सर्वेऽपि संन्यासिनस्तादृशा धर्ममर्मविघातका:?

निरंजन:—शान्तं पापं शान्तं पापँ, वयस्य ! साधुजनविरोधेन क: श्रेय: समेति ? नहि निखिला एकधुर्यवाहिन: । शृणु-

प्रतिपदमुपकारस्फोतसौभाग्यकीर्त्या-
तिलकितमवदानैर्गौरवं भारतस्य ।
सरणिमुदयदिव्यां शीलशिष्टां दिशन्त:
परमपथनिविष्टा: सन्ति सन्तो महान्त: ।।५।।

महेन्द्र:—ननु यदि तादृक्षा. कल्याणभूमय: सन्ति परेऽपि साधव-स्तदा कथमेतेषां प्रचारो दृश्यते भारते ?

निरंजन—सखे ! बहूनि निदानानि । अन्धंकरणं जनानां पाखण्ड-जालम् । यत्र पतिता उचितमनुचितं नावधारयन्ति मनुजा: । साधुचर्या-विधानमपि दोषपक्षे निक्षिपन्ति पापभाज: । हृतकालबलादधर्म: श्रेयसे संमत: सर्वेषाम् ।

फबें मोदाभारी तन मन धन प्राप्ति करके,
करें नित्यं सत्यं निरसन ही ये देशहित के ।।३।।

और भी

नहीं शास्त्राभ्यासी, नही सुजन सेवी सुभमति,
नहीं लोकोद्धारी, परजन हितैषी शुभगति,
महाभ्रष्टाचारी कुलयश विघाती अरि सताम्
अरे ये संन्यासी घनमलनिवास क्षरकृताम् ।।४।।

महेंद्र—मित्र, तुम्हारा हृदय बड़ा विचित्र है, अभी तो बहुत कुछ पूछना है ।

निरंजन-यथेच्छ पूछो महेन्द्र !

महेंद्र—क्यों जी ! क्या सभी साधु संन्यासी ऐसे ही धर्म मर्म विधातक है ?

निरंजन-शांतं पापम् मित्र ! साधु सन्तों के विरोध से कहीं भला होता है ? सभी महात्मा एक ही धुरा धारण करने वाले नहीं है सुनो :—

'प्रतिपद उपकार स्फीत सद्भाग्य कीर्ति,
तिलक कृत सुशस्त प्रांजलत्व प्रकाशी,
सुपथगमन शाली, धर्मबोधी समस्त,
सुभग भारतखण्डे है यतीश प्रशस्त ।।५।।

महेन्द्र—हाँ, जब अन्य भी अनेक परोपकारी सन्तमहात्मा हमारे देश में विद्यमान है, तो इन धूर्तों का इतना सफल व्यापक प्रभाव क्यों है ?

निरंजन-सखे ! इसके अनेक कारण है, पाखण्डी जाल में फंस-कर जनता अन्धी हो गयी है, इस जाल में फँसे नरनारी सत्य असत्य का विवेक खो बैठते हैं; पापी तो सदाचार को ही दोष बताते हैं, दुर्भाग्यवश जनता अधर्म को ही कल्याणकारी मानने लगती है। स्वदेश के स्वतंत्रता आभास से विदेशियों के शासन की नकल करने से

तथा च स्वदेशस्य स्वातंत्र्याभासेन वैदेशिकशासनानुकरणादवधीरितधर्मविधानेषु यथेष्टं प्रवर्तमानेषु जनपदेषु च शिक्षादक्षेष्वपि स्वार्थपरायणेषु विमुखतामधिगतवत्सु च स्वदेशोदयसंपादने साम्प्रतं विषमदशापरिपाकोन्मुखं भारतवर्षम् ।

महेन्द्रः--[सखेदं] हन्त दुखःकरं देशदुर्दशाश्रवणम् [विचार्य] सखे ! इमे साधवः किं न जानन्ति समाजपरिस्थितिम् ?

निरंजनः--[विहस्य] स्वप्नेऽपि न जानन्ति किमपि ।

कोऽध्यक्षः कियती प्रजा जनपदे, देशस्य का वा दशा,
का नीतिर्जनताहिताय रचनासौख्यावहा कीदृशी ।
को वा लोकपरोपकारनिरतः केषामभीष्टं च किं
हन्तेत्थं सुविचारशून्यहृदयो भाराय साधुव्रजः ।।६।।

महेन्द्रः—आः, आकुलं हृदयम् । नातः परं श्रोतुं समर्थः स्वदेशदशादुर्भाग्यम् ।

निरंजनः—अतो गन्तुमिच्छामि गृहम् ।

महेन्द्रः—भवतु । आगच्छतु अद्य कनखलादारभ्य हरिद्वारप्रदेशमवलोकयावः ।

[ततः परिक्रामन्ति पटपरिवर्तनम्]

निरंजनः—पश्य, एते जाह्नवीसैकते विशाले पटकुटीरसंनिवेशे नानाजातिभवा पर्यटनपरायणाः साधवः श्रीरामचन्द्रस्य नाम मुहुरारटन्ति । [विहस्य] सर्वेषां शिरोजटालं मृल्लाञ्छितं कपालं, श्यामं गात्रं, विशालं वक्षःस्थलं, भूरि-

भारतीय संस्कृति एवं धर्म की उपेक्षा से शिक्षण क्षेत्र में पर्याप्त शिक्षा विदों के होने पर भी हमारा राष्ट्र-भव्य भारत देश दिनों दिन अवनति के गर्त में धंसता चला जा रहा है !

महेन्द्र—[सखेद] हाय रे देश की दुर्दशा ? [सोचकर] मित्र, ये संन्यासी नहीं जानते होंगे देश की अधोदशा को ?

निरजन–[फीका मुस्कुराकर] स्वप्न में भी नहीं जान पायेंगे ये !

कौन है राजा हमारा कौन जनता है।
कितनी संख्या है प्रजा की, देश की कैसी दशा है ?
नीतियाँ जनता हितैषी, या विरोधी दुःखदायी
कौन है परम लाभकारी कौन अभिलाषा किसी की
जौन जनजनतापहारी कष्टवारी शान्तिचारी
देश सुखवर्धक हैं ये, विपरीत संन्यासी विकारी ॥६॥

महेन्द्र—हाय रे ! मेरा मन तो व्याकुल हो रहा है, मैं अधिक नहीं सुन सकता भारत की दुर्दशा को !

निरंजन—मैं तो अब घर लौट जाना चाहता हूं।

महेन्द्र—अच्छा ! आओ, आज कनखल से लेकर हरद्वार तक सब देख आवें।

(इतने में पटाक्षेप होता है)

निरंजन-देखो, भागीरथी की बालु के विशाल प्रदेश में बने डेरा तम्बुओं में भिन्न-भिन्न प्रदेशों और वर्णों में जन्में ये घुमन्तू साधु सन्यासी बारबार श्रीराम का नाम रट रहे हैं, [हँसकर] सब के सिरों पर जटाएँ, मिट्टी पुते मस्तक, साँवला शरीर, विशाल वक्षःस्थल, खूब सारी लकडियाँ तापने के लिये, तपे हुए शंखचक्रों से चिह्नित भुजाओं से एवं कन्धों से विकराल विकृत वेशभूषा से भयकर बने, ये

सन्निधापितकाष्ठमालं, तप्तशङ्खचक्रलाञ्छनजालं, भुजास्कंधस्थल करालं चेति वेशविक्रिया श्रीरामचन्द्रस्य गौरवं घोषयन्ति !

महेन्द्रः—(विहस्य) अहो रमणीयं दर्शनम् ! किं च महासभारोऽयं मस्करिसंघः ।

निरंजनः—एतत्पश्य । नीलधाराख्यापिते गङ्गातटे नीलगिरितले च सर्वत्र यात्रिकरक्षाविधानाय संचरद्भी रक्षकैर्निमिता स्थानसमारचना सुव्यवहितसाधना । एते वयं संप्राप्ताः कनखलप्रदेशमतिक्रम्य हरिद्वारं, एतद्धि पुराणप्रसिद्धं तीर्थम् ।

महेन्द्रः—(दृष्टवा) सखे निरञ्जन ! विलोकय, विलोकय। अस्मिन्विशाले सद्मनि साधूनां मण्डलम् । अहो महती समारम्भरचना । आः किमिदं राजकुलम् ?

निरंजनः—देवाधिदेवकुलं सखे ! पश्य दुर्भाग्यं स्वदेशस्य, अथवा अवहेलना सनातनधर्मस्य । हा कष्टं, कष्टम्—

आसूर्योदयमाचरन्ति विविधं कष्टं मितान्नाप्तये
दीना वेश्म विना च कुक्षिभृतये हीना महीजीवनाः ।
एते मोदकमोदिता दृढतरग्रावौघसंघट्टिते
वासं रम्यमठालये च्युतधियः साधुब्रुवाः कुर्वते ॥७॥

महेन्द्र—वयस्य ! त्वया देशपरिभ्रमणेन महत्पाण्डित्यमधिगतम । आपातबुद्धिर्मादृशो जनो यथादृष्टं न्याय्यं गणयति। [विलोक्य] अरे, पश्य, पश्य अस्मिन् स्थाने गजा, वाजिनः, क्रमेलकाश्च बद्धाः किं कोऽपि भूपतिरत्र भविष्यति ?

निरंजनः—[विहस्य] नहि मित्र ! सर्वमेतेषाम् । एते कुम्भस्नानसमये हस्तिवाजिक्रमेलकादिवाहनान्यारुह्य विचित्रवरणाभरणा गङ्गास्नानं कर्तुं गमिष्यन्ति एतेषु केचन नग्नाः, केचित् कमनीयनेपथ्यधारिणः, परे वाद्यवादन-

सब ऐसे ही श्रीराम के गौरव को उद्घोषित कर रहे हैं।

महेंद्र—क्या सुन्दर लगते हैं ये ! कितना बड़ा भारी है यह पाखण्डियों का एकत्र यह मेला !

निरंजन-यह देखो, नील धारा (गंगा के) तटपर तथा नील शैल के नीचे सर्वत्र यात्रियों के सुरक्षा के लिए घूमते फिरते ये रक्षादल उनकी बनायी स्थान आदि सुन्दर व्यवस्था को। हम लोग कनखल को छोड़कर हरद्वार में आ पहुँचे हैं, हरद्वार पुराण प्रसिद्ध तीर्थ स्थान है।

महेंद्र—(देखकर) मित्र निरंजन ! देखो देखो इस विशाल प्रासाद में साधु सन्तों का बड़ा भारी जमघट। कितना बड़ा भवन है ? क्या यह राजप्रासाद है ?

निरंजन—देवाधिदेव का कुल है मित्र ! देखो स्वदेश का यह दुर्भाग्य, अथवा सनातनधर्म की अवहेलना। बड़ा कष्ट है यह :-

श्रमिक किसान दीन हीन उदरपूर्ति हेतु सुखविहीन,
क्षुधादाय मुट्ठी भर अन्न काज, दिवस रात श्रम निलीन
और सन्त ये महन्त मोदक मिष्टान्न स्वाद में विलीन
महलों में वास, श्वास श्वास में विलास, नष्ट बोध
साधु है मलीन।

महेंद्र—सखे ! तुमने तो देशभ्रमण से बड़ी जानकारी प्राप्त कर ली है। आपात बुद्धिशाली मुझ ऐसा व्यक्ति तो यथोचित न्याय की ही बात करता है (देखकर) अरे निहारो तो जरा, इस स्थान पर हाथी, घोड़े और ऊँट बन्धे खड़े हैं, क्या कोई राजा होगा यहाँ पर ?

निरंजन—नहीं मित्र ! सब इन्हीं साधु सन्तों के है ! कुम्भ स्नान के समय ये महात्मा हाथी, घोड़ों, ऊँटों पर आरुढ होकर चित्र विचित्र आभूषण धारण करके गंगास्नानार्थ जाते

तत्पराः, अन्ये रक्षभट्टाश्च भूत्वा प्रातर्गमिष्यन्ति। संमिलितो जननिकायो दर्शनमेषां कृत्वा भाग्योदेयं गणयिष्यति। अाः-

ये विश्वेषामुपकृतिहिते कर्तुमभ्यस्तदीक्षा
येषां लोकाभ्युदयदयिता शस्यत पुण्यशिक्षा।
तेषां दृष्टवा निरयविषमां दुर्दशां दोषजुष्टां
कष्ट कष्ट विधिविलसितं मानस दन्दहीति ॥८॥

महेन्द्रः-एवम् पदे पदे पदमापदाम् (विलोक्य) निरीक्षस्व गङ्गातीरम्। शीतवेपिताङ्गाः केचन परान् स्नानाय प्रेरयन्ति। (अन्यत्र) अहो दृष्टव्यं कश्चिज्जटिलः सलिलमवतीर्णो नग्नीभूय निःशङ्कं बहिरागच्छति। पश्य—

निरंजनः—धिक् धूर्त्तान् पाखण्डपिण्डान्। अस्मिन् निषिद्धाचारे धर्मधी रेतेषाम्।

अधिस्त्रीसन्दोह रुषिततमभस्माङ्गकरणाः।
परं नग्नीभूय प्रकटितमहाधर्मचरणाः।
विशुद्धं गङ्गाया ननु कलुषयन्तो जलमिमे
न लज्जन्ते मूढा व्यसनशतधूम्राकुलधियः ॥९॥

(दृष्टवा) पश्य। एते वयं ब्रह्मकुण्डविभागादविदूरे पवतीयपथेन सप्तस्त्रोतसः पन्थानमाश्रिताः। अत्रापि तेषामेव वसतिः। अयमितो मार्गः ऋषीकेशाभिधानं स्थानमुपतिष्ठते। पश्य, एतत् "भीमगोडा" इति प्रसिद्धं स्थानम्। [नेपथ्ये]

भो, भोः सामवायिकाः, श्रद्धालवः! शृणुत। निःशेषविश्वशुभयुना वेदमार्तण्डस्य महर्षिदयानन्दस्य जीवनेन समं समस्तपुराणमतध्वंसाय मया स्थाप्यते—

हैं, इन साधुओं में कुछ नागे हैं, कुछ सुन्दर वस्त्रधारी हैं, कुछ विविध गाजेबाजे वाले हैं और शेष रक्षा सैनिक होकर प्रातःकाल जायेंगे। हाय रे!

अत्यन्त दुख उपजे अवलोक ऐसे,
सम्भ्रान्त लोकहितसाधक दुर्दशा से,
जो प्राणिमात्र हित में नितरांनिमग्न,
लोकोपकार विधि में सुतरां अभिन्न ॥८॥

महेन्द्र—ऐसा, कदम कदम पर विपदाओं का घर हैं, (देखकर) देख लीजिये यह गंगा का तीर ही। शीत के मारे कुछ लोग दूसरों को स्नान के लिये प्रेरित कर रहे हैं। (अन्यत्र) ओहो। ये देखो वह जटाधारी साधु गगाजल में उतरा और नंगा होकर निःशंक बाहर आ गया है।

निरंजन—धिःकार है ऐसे पाखण्डियों को! इन्हें तो पापकर्मों में भी धर्मबुद्धि हैं!

नारीवृंद सुसेविताधनिरतात्मा श्लाघाय विद्यारिपु
भस्माच्छादित अंग अंग वसनत्यागी स्वधर्मच्युत,
गंगानीर मलीमसाहत मति प्रच्छन्नमायाधना,
लज्जा ये नही मानते व्यसनधी पाखण्ड भूषानना ॥९॥

(देखकर) निहारो तो! अब हम लोग ब्रह्मकुण्ड के निकट ही पर्वतीय पथ से होकर सप्तधारा के मार्ग में आ चुके है। यहाँ पर भी साधु सन्तों के डेरे पड़े हैं। और यह सीधा मार्ग ऋषिकेश चला गया है यहाँ से! देखो, यह 'भीमगोडा' नामक प्रसिद्ध स्थान है। [नेपथ्य में]

अरे, अरे, श्रद्धालु भक्तों सुनो, वेदभानु महर्षि स्वामी दयानन्द के मानवकल्याणकारी जीवन से प्रेरणा पाकर मैंने यह निखिल पुराण मत विध्वंसन कार्यक्रम के रूपमें यह केसरिया ध्वजा स्थापित की है—

धुनाना पारसधातं दिशन्तो शमंसंततिम् ।
पताका धर्मवीरस्य सर्वपाखण्डखण्डिनी ।।१०।।

महेन्द्रः—(आकर्ण्य) किमिदं वयस्य ! किमिदम् ? अस्ति किमपि लोकनिरीक्षणार्थं कौतुकम् ?

निरंजनः—नहि मित्र ! एवमेव यत्र यत्र जनसंघातस्तत्र तत्र धर्मप्रचारार्थं भ्रमन्ति केचन । किन्तु...

महेंन्द्रः—किमिदं किन्तु...इति ?

निरंजनः—एतद्यत् 'सर्वपाखण्डखण्डिनी पताका' इति श्रुत्वा किमपि नूतनं वरीवर्त्ति कौतुकम् ।

महेंन्द्रः—एवम् (दृष्टवा) पश्य, तस्मात् स्थानात् केचन रक्षका आयान्ति । तान् पृष्टवा तत्त्वं जानीमः । [ततो रक्षका प्रविशन्ति]

नायकः—अरे ! प्रेषिता वयं मुख्येन प्रबन्धकर्त्ता जनरक्षणार्थमुदयपुरतः तन्माभूत्कस्यापि अवरोध इति प्रयतितव्यम् । अथच कश्चिद्वेदशास्त्र-संपन्नो दयानन्द पुराणमतखण्डनाय समागतो हरिद्वार, तद्विभीषिका दातव्या तस्मै इति नगरनिवासिभिर्विप्रैः संदिष्टम् । तदहं पुनस्तत्रैव गमिष्यामि । यूयमपरेऽपि सावधानाः सर्वत्र भवन्तु । प्रत्यासीदति पर्वसमयः । गच्छ रे गच्छ (इति रक्षका गच्छन्ति) आः किमिदं धर्मखण्डनम् ? व्यर्थमेव तादृशाः कोलाहलं कुर्वन्ति, येन रक्षाप्रबन्धे महान्प्रत्यूहः ।

महेन्द्रः—त्रयम्य ! अयं रक्षकनायको मम मित्रम् । चिराद् दृष्टोऽयं मया । आह्वयामि । अथवा अहमेव तत्र गच्छामि ।

बताती भद्र मर्यादा पापसंघातनाशिनी
श्री दयानन्द स्वामी की ध्वजा पाखण्डखण्डिनी ॥१०॥

महेन्द्र—(सुनकर) मित्र ! यह क्या हो रहा है ? लगता है लोगों के कुतुहल के लिए कोई तमाशा होने जा रहा है।

निरंजन—नहीं भैय्या जहाँ जहाँ जनता होती है वही पर धर्म प्रचारार्थ कुछ लोग भ्रमण करते रहते हैं। किन्तु ..

महेन्द्र—किन्तु क्या ? आगे कहो न !

निरंजन—यह ऐसा है कि 'पाखण्डखण्डिनी पताका' का नाम सुनते ही लगता है कि कोई नयी बात होने जा रही है।

महेन्द्र—ऐसा है (देखकर) देखो उस स्थान से कुछ रक्षक आ रहे हैं, उनसे पूछकर मालूम करते हैं कि क्या बात है ?

(रक्षक प्रवेश करते हैं)

नायक—अरे, हमारे मुखियाने हमें उदयपुर से जनता की सुरक्षा के लिये भेजा है, इसलिये यही प्रयास करो कि अव्यवस्था न होने पावे। और कोई वेदशास्त्र दयानन्द पुराण मत खण्डन के लिये हरद्वार में पधारे हैं, तो उन्हें डराना धमकाना है, ऐसा नगर के निवासी ब्राह्मणों ने हमें कहा है। तो मैं वहीं चला जाता हूं, तुम भी सभी रक्षक सावधान होकर सर्वत्र घूमते रहो। पर्व वेला आ रही है। जाओ रे जावो (रक्षक चले जाते हैं) हाय रे यह धर्म का खण्डन कैसा ? व्यर्थ में कोलाहल किया जा रहा है यह ! इससे तो रक्षा व्यवस्था में महान् विघ्न होगा।

महेन्द्र—यह रक्षकों का नायक तो मेरा मित्र है। चिरकाल बाद दीखा है, बुलाता हूं अथवा मैं ही उसके पास जा रहा हूं।

निरंजनः-प्रियं नः गम्यताम ।

[तत्र गत्वा]

महेंन्द्रः—ननु विजयसिंह ! विस्मृतोऽसि मां किमु ?

नायकः—[ससंभ्रम] आः कथं प्रियवयस्यो महेन्द्रकुमारः ? एह्ये हि मित्र !

महेंन्द्रः—मित्र ! भाग्येन दृष्टोऽसि । [निरञ्जनं प्रति] अयं विजयसिंहः सममेव मया नगरे विद्यालये शिक्षामग्रहीत् । साम्प्रतमुदयनगरे सेनानायकः संवृत्तः [नायक प्रति] अयं च महानुभावः स्वदेशभक्तः समुपजातपरिचयो मां कुम्भ-महोत्सवं दर्शयितु मानीतवान् ।

नायकः —शुभं कृतम् । अत्र जनबाहुल्येन भवद्भयां मदीये निवासस्थाने स्थितिः कर्त्तव्या ।

महेंन्द्रः—नास्ति प्रयोजनम् । संकल्पितं रुचिर निकेतनमस्माभिः ।

निरंजनः—[मध्ये] ननु महाभाग ! साम्प्रत या श्रुता घोषणा सा किं वेदयते ?

नायकः—महानुभाव ! अस्ति कोऽपि दयानन्दः संन्यासी यः पण्डितम्मन्यः सनातनमतखण्डनाय प्रवर्तते । ननु भो नाटकं, नाटकम् !

निरंजनः—[स्वगतं] परुषा प्रकृती राजसेवकानाम् । [प्रकाशं] मैवम् । धर्मोऽयं सत्यदानाय संन्यासिनाम् ।

महेंन्द्रः—ननु गन्तव्यमवलोकनाय ।

नायक.—आगन्तव्यम् ।

निरंजनः—अवश्ययं द्रष्टव्यम् ।

निरंजन—यह हमें भी जँचता हैं, चले जाओ।

(वहाँ जाकर)

महेन्द्र—क्यों विजयसिंह मुझे भूल तो नहीं गये हो ?

नायक—(हड़बड़ाकर) प्यारे मित्र महेन्द्रकुमार ? आओ प्रिय मित्र !

महेन्द्र—मित्र ! भाग्य से दर्शन हो गये [निरंजन की ओर] यह विजयसिंह मेरे साथ ही नगर के विद्यालय में पढ़ता था, इस समम तो यह उदयपूर में सेनानायक है, (नायक की ओर) और ये सज्जन हैं स्वदेश भक्त, नवीन परिचित, मुझको कुम्भ मेला दिखाने के लिये यहाँ ले आये हैं।

नायक—अच्छा किया, यहाँ पर तो बड़ी भीड़ है, तुम दोनों मेरे स्थान पर चलकर रहो।

महेन्द्र—अब कोई आवश्यकता नहीं है, हमने सुहावना स्थान प्राप्त कर लिया है, रहने के लिये !

निरंजन—(बीच में ही) क्यों जी अभी अभी जो घोषणा सुनी है उसका क्या मतलब ?

नायक—श्रीमन् !दयानन्द नामक कोई पण्डिताभिमानी संन्यासी सनातन धर्म का खण्ड़न कर रहा है। नाटक ही तो है यह !

निरंजन—(मन ही मन में) राजपुरुषों का स्वभाव कठोर होता है। (प्रकाश में) ऐंसा तो नहीं है, यह तो संन्यासियों का धर्म है।

महेन्द्र—देखने के लिये चलना चाहिये न।

नायक—चलिये।

निरंजन—अवश्य दर्शनार्थ चलना चाहिये।

महेंन्द्रः-वयस्य विजयसिंह ! चिराद् दर्शनेन हृदयं स्निह्यति। ननु भवता कदापि न स्मृतः।

नायकः—कथं न स्मरिष्यामि ? परं विलक्षणोऽयं सेवाधर्मः।

महेंन्द्रः—सखे निरञ्जन ! विजयसिंहः पुरा मम जीवनमासीत्। अहो, भाग्येन दर्शनं जातम्।

निरंजनः-कथं न ? स्नेहः परस्परं विना वैभवं स्वर्गसाम्राज्यम्।

यस्यानुस्मरणेऽपि जीवनरसस्वादानुभूतिः परा
सर्वस्वायितमस्ति येन च गुणव्यासंगसंकीर्तने।
उत्कर्षः स च सौमनस्यमधुरे दृष्टे जने प्रयसि
सस्नेहप्रसरं सहर्षरसिकं सोल्लासमास्ते मनः ॥११॥

नायक.—(स्वगतं) अहो प्रियवदो महानुभावः (प्रकाशं) ननु गन्तव्यम्। (इति गन्तुं यतन्ते, ततः प्रविशति रक्षकः)

रक्षकः—(ससंभ्रमं) नायक, नायक ! आगच्छतु, तत्र सहस्त्रं जनाः समागतास्तत्र महात्मनः सदुपदेशं श्रोतुम्। एकतो विप्रा अपि कोलाहलं कुर्वन्ति, न कोऽपि शृणोति !

नायकः—एष आगतोऽस्मि।

महेन्द्रः—निरञ्जन ! सत्य गतानुगतिको लोकः यत् सर्वं कर्तव्यं विहाय तत्र गताः, यदि श्रोतव्यं नाम व्याख्यानं तदा क्व गतास्ते कथाकाराः ?

निरंजनः—मैवम्। सत्यासत्यविचारः स्वभावो धीमताम्।

महेंन्द्र — मित्र विजयसिंह ! चिरकाल के बाद दर्शन होने से हृदय प्रेम विह्वल हो उठा है ? क्यों तुमने तो कभी याद भी नहीं किया ?

नायक—क्यों नहीं याद किया ? किन्तु सेवाधर्म बड़ा विलक्षण है।

महेन्द्र —निरंजन भैय्या ! यह विजयसिंह मेरी जिन्दगी था कभी, अहो भाग्य से दर्शन हो गये हैं।

निरंजन-क्यों नहीं, प्रेम तो विना वैभव के भी स्वर्गीय साम्राज्य।

'स्मरणमात्र से जीवन उसका जिसका अनुभव सुखकारी हो,
परम, सर्व स्वायत्त गुणों का कीर्तन जिसका मुदकारी हो,
प्रिय जनके मीठे दर्शन से मनकलिका विकसित हो जाती,
स्नेहपुरस्सर हर्षभावना भरे हृदय में गति बो जाती ॥११॥

नायक—(स्वगत) यह बहुत मधुरभाषी है (प्रकाश में) तो चलना चाहिये।

(इस प्रकार चलने का प्रयास करते हैं, इतने में रक्षक प्रवेश करता है)

रक्षक—(हड़बड़ायासा) नायक ! नायक ! आइये, आइये, वहाँ पर तो हजारों व्यक्ति उस महात्मा के उपदेश सुनने के लिये आये ! दूसरे ब्राह्मण लोग भी कोलाहल कर रहे हैं, कोई भी नहीं सुनता।

नायक—यह आया मैं।

महेन्द्र—निरंजन ! सचमुच संसार गतानुगतिक हैं, भेडियाँ समान है, सारे कार्य छोड़छाड़ कर लोग वहाँ गये हैं यदि ऐसे व्याख्यान सुनने लायक हैं, तो वे कथावाचक है जो बुरा मानते हैं ऐसे व्याख्यानों को !

निरजन:-ऐसी बात नहीं है सत्यासत्य निर्णय ही बुद्धिमानों का स्वभाव होता है।

वितथमवितथं वा जानतां सर्वकालं
खलवचनविनोदे नादरः सज्जनानाम् ।
व्यतिकरमथ काकाः क्षीरनीरप्रभागे
यदि नहि विवेदन्तां सन्ति दक्षा मरालाः ॥१२॥

(रक्षकं प्रति) भो रक्षक ! कीदृशः स संन्यासी ?

रक्षकः—महाभाग ! अहं किं जानामि ? परमेव मया कर्णाकर्णिकया श्रुतम्—

वाणी श्रियां परममायतनं पवित्रा
लोकत्रयोज्ज्वलकरं परमस्य तेजः ।
आश्वासनाय जगतः श्रितयोगिमूर्ति-
राविर्बभूव किमु पुण्यपरोपकारः ॥१३॥

नायकः—आगच्छन्तु त्वरितम् ।

सर्वे:—यथाऽऽदिशति भवान् (इति गताः)

(ततः प्रविशति गुणेन्दुना सह दयानन्दः)

गुणेन्दुः—भगवन् ! धर्मोद्धारक ! यद्यपि यथावदवस्थितं, पराजिताः परे पुराणावलम्बिनः, निराशीभूय निर्गता अपि, संहतिमङ्गीकृत्य पुनरपि प्रत्यवस्थास्यन्ते भवन्तमिति तेषां प्रत्युद्योगपरामर्शेन किञ्चदुपलक्ष्यते । क्षणमात्रक्षुण्णोऽपि परां रूढिमागतोऽयं राजयक्ष्मेव पुराणन्यग्रोधो न सहसा भूमिसाद्भवति । न जाने विधिवैमुख्यं कियतीं कष्टपरंपरामेवं दर्शयिष्यति ?

दयानन्दः—बन्धो ! अनुन्मूल्य पापमूलं दयानन्दः सुखं स्थास्यतीति त्वया स्वप्नेऽपि न स्मरणीयं प्रतिदिनं प्रौढिमश्नुतेऽन्तरात्मा।

वितथ अवितथों को जानते सर्वदा है,
न खलकथन से ये मानते मान विज्ञ,
सलिल पय विभागी शक्ति क्या वायसों में,
विदित सब किसी को हंस-सामर्थ्य यामें ॥१२॥

[रक्षक से] अरे सिपाही भैय्या ? कैसा है वह साधु ?

रक्षक—श्रीमन् ! मुझे स्वयं तो कुछ पता नहीं है, किन्तु कानों कानों यह सुना है ।

वाणी पवित्र शुभ लक्षण युक्त श्रीला,
लोकत्रयोज्वल सशक्त यतीश तेज ।
संसार हेतु घृततापस पुण्यकाया,
साक्षात् अवश्य यह पुण्यपरोपकार ॥१३॥

नायक—चलिये न शीघ्र !

सब—जैसा आपका आदेश (सब चले जाते हैं)

[इतने में गुणेन्दु के साथ दयानन्द का प्रवेश)

गुणेन्दु—महाराज ! धर्मोद्धारक ! भले ही आप विजयी हो गये और पौराणिक पराजित हुए हैं, निराश होकर चले भी गये हैं, तो भी वे लोग मिल मिलाकर आपको घेरना चाहेंगे, ऐसा लग रहा है उनकी गतिविधियों से ! राजयक्ष्मा की भाँति यह पौराणिक मतरूपी वटवृक्ष, योंही थोड़ी देर के प्रयास जड़मूल से नहीं उखाड़ा जा सकता । कौन जानता है भगवान की विचित्र लीला को, वह कितकितना कष्ट देगा ?

दयानन्द—बन्धो ! जब तक दयानन्द पापकी जड़ों को मूल से नहीं उखाड़ें फेंकेगा तबतक आराम से बैठ जाएगा, तुम्हें यह स्वप्न में भी नहीं सोचना चाहिये । मेरा आत्मा अहो रात्र चिन्तित है इसके लिये ।

गुणेन्दुः—देव ! सूत्रधारस्त्वमसि देशोदयस्य । त्वदीयं पन्थानमारुरुक्षवः सर्वेऽपि भारतीया न कदापि परमुखप्रेक्षिणो भविश्यन्ति । तथा च सत्यसंधाविधायिना समभिप्रेतप्राणार्पणेन भवता समभिप्रणीतः सनातनतत्वोत्कर्षविभावसुः समस्ते भारते भस्मसाद्विधास्यति पाखन्डकाननम । मन्ये प्रस्पन्दते सौभाग्यलाभाय भारतस्य हृदयम् ।

दयानन्दः–करुणासिन्धुः श्रयो विधास्यति ।

गुणेन्दुः–योगिप्रवर ! अन्धा अमृतमपि त्यजन्ति । प्रतिक्षण प्रस्तुतनानाधर्मकूटकोटैः परिक्षीणं भारतोद्यानम । आस्तथापि भवता समुपदिष्टं सत्यमवजानानाः पुराणप्रियाः पन्डिताः प्रत्यर्थिनो भवन्ति । अथवा अलमलं तैः प्रयुक्तया विडम्बनया ।

दयानन्दः–वयस्य ! सत्यं दृष्टवानसि । सांप्रतं न जानन्ति स्वार्थावलेपव्याकुलास्ते परमतः स्वीकरिष्यन्ति वैदिकमेव पन्थानम् ।

गुणेन्दुः—भगवन् ! अनेन प्रकारेण भविष्यद्धर्मप्रचारः प्रत्यहं विघ्नबाहुल्यमात्मनं लघिमानमापादयति ।

दयानन्दः—सिद्धो नास्ति संशयः, परं प्रत्यूहप्राया सत्यसंकल्पना किन्तु पुष्करस्थानादत्र विशेषं विलोकयामि

गुणेन्दुः–ओमेवम् ।

दयानन्दः–इतः परं गङ्गातटे कियत्कालं बिहर्तुमिच्छामि ।

गुणेन्दुः—किमर्थं, किं परिहाय धर्मप्रचारम् ?

गुणेन्दु—देव ! आप ही तो हैं देशोदय के सूत्रधार ! आपके पथपर चलने वाले सभी भारतीय कभी परमुखापेक्षी नहीं होंगे और सत्यप्रकाशन के लिये सर्वस्व समर्पित करने वाले आपने जिस सनातन तत्वानल को प्रज्वलित किया है, वह समस्त पाखण्ड कानन को भस्म सात कर देगा। मुझे लगता है कि सौभाग्य लाभ के लिये भारत का हृदय उछल रहा है।

दयानन्द—करुणाकर सत्यनारायण कल्याण करेंगे।

गुणेन्दु—योगेश्वर ! अन्धे तो अमृत भी छोड़ देते हैं, प्रतिक्षण ही इन विविध प्रकार से प्रकटित धर्माकूट किटों ने तो भारत उद्यान को खा लिया है, तो भी आपके बताये सनातन वैदिक धर्म की अवज्ञा अपमान करने वाले ये पुराणपन्थी दूर आप के विरोधी हुए हैं, वेंसे इन पण्डितों के तिरस्कार से घबराने की आवश्यकता नहीं है।

दयानन्द—मित्र ! तुमने सत्य जान लिया है, भले ही इस समय ये सब स्वार्थं वश विरोध करें, किन्तु निकट भविष्य में तो ये भी वैदिक धर्म को ही स्वीकार करेंगे।

गुणेन्दु—भगवन् ! इस प्रकार से तो प्रतिदिन होने वाले विघ्न बाहुल्य से आत्मा में हीनता की भावना आ जायेगी !

दयानन्द—सिद्धी तो निर्विवाद है, तो भी सत्य संकल्प में विघ्न होते ही है, इस स्थान पर मुझे कुछ विचित्रता लग रही है।

गुणेन्दु—सच्ची बात है,

दयानन्द—मैं तो इसके बाद कुछ समय गंगातीर परिभ्रमण करना चाहता हूं।

गुणेन्दु—क्यों ? धर्मप्रचार छोड़ देंगे क्या ?

दयानन्दः–किं ब्रूषे बन्धो ! ननु जीवनेन समं धर्मस्यावसानं दयानन्दस्य; तेन पथा गन्तव्यं काशीनगरम् ।

गुणेन्दुः—[स्वगत] हन्त दीप्यते पवित्रमान्तरं ज्योतिः, स्फूर्जितं महसा । [प्रकाशं] यथादिशति देवः ।

[इति निष्क्रान्तौ]

दृश्यं तृतीयम्

[स्थानं कर्णवासः गङ्गातटः, गुणेन्दुः]

गुणेन्दुः–नमस्ते परमात्मने । नमो वैदिकधर्माय । अहो उत्तरते प्रतिक्षणं वैदिक ज्योतिः । सर्वत्र वैदिकधर्ममर्मविकासनाय पर्यटनं कुर्वता श्रीदयानन्देन साम्प्रतमत्रापि साफल्यमापि । (विलोक्य) अहो ! मूर्तिमता श्रुतिसारेणेव समुपदिश्यते भगवता दयानन्देन कुटीराजिरे धर्मरहस्यम् । अहमपि महात्मनः सेवया जन्मासाफल्यं करोमि ।

—नेपथ्ये—

इत इतो महाराज ! इयमेव कुटी तस्य । (आकर्ण्य) किमिदमवहेलनासंमिभं वचनम् ? (विचार्य) आं स्मृतम् ! स एव रासक्रीड़ादर्शनप्रत्याख्यानेन तिरस्कारेण कोपनः कर्णसिंहः । कतिपयनिजपरिवारप्रायः प्रतीकारं कर्तुकामः श्रीदयानन्दस्य नेदिष्ठ गन्तुं व्यवस्यति ।

आः कीदृशोऽयं व्यामोहो राजन्यानाम् ? अथवा राज्यवैभवविलासमदिरोन्मीलतमदाघूर्णिता न कलयन्ति हितमहितं वा !

अहो महनीयं गाम्भीर्यं श्रीदयानन्दस्य ! यश्च पामरपुरुषदंत्तदूषणोऽपि महोदधिरिव न मर्यादामतिक्रामति ! सत्यं

दयानन्द–क्या कह रहे हो ? यह धर्म प्रचार तो दयानन्द के जीवन के साथ ही बन्द होगा, इस परिभ्रमण के साथ मैं काशी पहुँचना चाहता हूं।

गुणेन्दु–(स्वगत) ओहो, इसके तो अन्तर में पवित्र ज्योति जलने लगी है, सहसा (प्रकाश में) जो आज्ञा हो देव !

दृश्य-तृतीय

[स्थान गंगा तटवर्ती कर्णवास तीर्थ ग्राम]

गुणेन्दु—नमस्ते परमात्मा के लिये, वैदिक धर्म के लिये नमन हो, अहा प्रतिपल यह वैदिक ज्योति प्रतप्त होने लगी है, वैदिक धर्म की स्थापना के लिये घूमने वाले श्री दयानन्द तो सर्वत्र सफलता प्राप्त कर रहे हैं। (देखकर) ओहो ! साकार से वेदमर्म का ही उपदेश दे रहे हैं, ये महानुभाव स्वामी दयानन्द महाराज अपनी कुटियों के आँगन में। इनकी सेवा करके मैं भी अपना जन्म सफल करूँ।

नेपथ्य में—

इधर इधर महाराज ! यही कुटिया है उसकी (सुनकर) यह मैं अपमान जनक वचन कैसे सुन रहा हूं ? (विचार करके) हाँ, स्मरण हो आया, रासक्रिडा के दर्शन के निषेध से अपमान मानने वाला यह वही क्रोधी कर्णसिंह है। अपने ही पारिवारिक जनों को साथ लेकर, यह स्वामी दयानन्द के समीप जाना चाहता है।

अरे क्षत्रियों में यह कैसा व्यामोह है ? अथवा राज्यवैभव विलास में मदिरापान से यह घहराती राती आँखों के कारण इन्हें हित-अहित नहीं सूझता।

यतिवर दयानन्द का गांभीर्य प्रशंसनीय है, पामरों से घोर अपमान पाकर भी ये समुद्र के समान गंभीर मर्यादा का अति-

स्वभावगंभीरा: साधव: । सत्यमेव जयति नानृतम् । तथापि परदोषवीक्षणपटूनां कुलक्रमोऽयं सज्जनजनास्कन्दनम् ।

लोकोपकारनियतेषु जनापवादाद्
भीतेषु शीलचरणाय पदे पदेऽपि ।
स्वच्छेषु कोमलतरेषु च सज्जनेषु
पश्यन्ति पापमतयः स्वचारित्रचित्रम् ॥१४॥

(ततः पुरुषैः सह कर्णसिंहस्य प्रवेश.)

एक:पुरुष:–(गुणेन्दुं दृष्टवा सावज्ञं) ननु रे क्वासौ दयानन्द: ?

गुणेन्दु:–(स्वगतं) आ: सावलेपं वच: ? (प्रकाश) किमस्ति रे किङ्कर ! किमस्ति प्रयोजनम् ?

द्वितीय:–अरे न पश्यसि किं महाराजम् ?

गुणेन्दु:–अरे को महाराज: ?

तृतीय:–आ: मूढ ! किं वृथा प्रलपसि ?

गुणेन्दु:–आः किङ्करापसद ! किं करिष्यसि त्वम् ?

प्रथम:–ते शिरश्चूर्णयिष्यामि ।

गुणेन्दु:–अहं त्वां गङ्गायां पातयिष्यामि ।

द्वितीय:–अरे ब्रह्मबटो ! अद्य त्वां तव स्वामिना समं गङ्गायां पातयितुमागता वयम् ।

गुणेन्दु:–[सक्रोधं] अरेरे पामरापसद ! राजकुक्कुर !

दुर्दान्तसिन्धुरव्रातगण्डखण्डनपण्डितः ।
केसरी किं शृगालेन सटाकर्षणमर्हति ॥१५॥

कर्णसिंह:–(प्रविश्य) ननु भो: किमनेन, भो ब्रह्मबटो ! क्व संन्यासी दयानन्द: ?

क्रमण नहीं करते। वस्तुत: साधुपुरुष सहज गंभीर होते हैं, 'सत्यमेवजयते' नानृतम् 'सत्य ही जीतता है, असत्य नहीं, परदोषदानेभिपुणों का यह कुलक्रम ही है सज्जनों का तिरस्कार करना।

लोकोपकाररत मीत जनापवाद से
सच्च जनों का शुभ-शील पदे पदे तो,
स्वच्छों चरित्र विमलोन्नत सज्जनों का
हैं देखते निजसमान अघी चरित्र ॥१४॥

(अनेक पुरुषों के साथ कर्णसिंह प्रवेश करता है)

एक पुरुष—(गुणन्दु को सापमान देखकर) कहाँ है रे वह वेद निन्दक ?

गुणन्दु—(स्वगत) कितनी अपमान भरी वाणी है ? (प्रकाश में) क्या बात है रे नौकर ? क्या चाहता है तू ?

दूसरा पुरुष—क्यों रे महाराज को नहीं देखता ?

गुणन्दु—अरे कौन महाराज हैं ये ?

तिसरा पुरुष—ओ मूर्ख ! क्या बकता है व्यर्थ में !

गुणन्दु—अरे दुष्ट नौकर ! तू क्या करेगा ?

प्र. पुरुष—तेरा सिर चूर चूर कर दूँगा।

गुणेन्दु—मैं तुझे गंगा में डुबो दूँगा।

दूसरा व्यक्ति—ओ ब्राह्मण पुत्र ! आज तुझे तेरे स्वामी के सामने ही गंगा में डूबाने के लिये आये हैं हम।

गुणेन्दु—(सक्रोध) अरे रे अधमाधम ! राजा के कुत्ते !

दुर्दान्त हस्ति प्रति गण्डखन्डन शंसित,
केसरी क्या सियारों से, जटाकर्षण चाहता ॥१५॥

कर्णसिंह—(प्रवेश करके) अरे इसमें क्या प्रयोजन है ? ओ ब्राह्मण पुत्र ! वह संन्यासी दयानन्द।

गुणेन्दुः–एष पुरतः कथां कुर्वन्नध्यास्ते श्रीदयानन्दः। आगच्छ दर्शनार्थं महाभाग !

कर्णसिंहः–एवम् ।

(सर्वे परिक्रामन्ति । दयानन्दः कथां करोति)

गुणेन्दुः–(उपसृत्य) नमस्ते भगवन् ! एष कर्णसिंहः सराजपुरुष आगतः ।

दयानन्दः–(विहस्य) आगच्छतु

(कर्णसिंहस्य प्रवेशः) तं विलोक्य—

दयानन्दः-ननु आसनपरिग्रह कारयतु महाराजेन ।

(सर्वे यथास्थानं तिष्ठन्ति)

दयानन्दः-अनामय महाराजस्य ?

(कर्णसिंहः सक्रोधं न वक्ति)

एकः पुरुषः–आम्, अनामयं महाराजस्य, ननु महाराज! भवद्भी रासक्रीडा दर्शनं कथं तिरस्कृतम् ?

दयानन्दः–महाभाग ! नाह भारतदुर्भाग्यलीलादर्शनं करोमि।

कर्णसिंहः–(मध्ये) ननु कः प्रत्यवायो भवताम् ? परेऽपि संन्यासिनः पण्डिताश्च यथावसर दर्शनाय समागच्छन्ति ।

दयानन्दः–सत्यं, तथापि पापावहं वामावेषधारिणोऽनुकरणकारिणः पुरुषस्य दर्शनं शास्त्रेषु संन्यासिनाम् ।

कर्णसिंहः–ननु मया श्रुतं, भवता प्रतिमापूजायाः तीर्थस्य च विधियेत विरोधः ।

दयानन्य:–यथाश्रुतं भवद्भिः ।

कर्णसिंहः–साम्प्रतमह निषेधयामि, न भवता क्वापि विरोधः कर्तव्यः ।

गुणन्दु—वे रहे सामने कथा कहते हुए श्री दयानन्द महाराज ! आइये महाराज, दर्शन करले चलकर ?

कर्णसिंह-अच्छा !

(सब चल देते हैं, दयानन्द कथा सुना रहे हैं)

गुणन्दु—(निकट जाकर) नमस्ते भगवन् ! ये राजा कर्णसिंह, अपने भृत्यों के साथ पधारे हैं।

दयानन्द-(मुस्कुराकर) आइये पधारिये। [कर्णसिंह का प्रवेश] [उसे देखकर] अरे महाराज को आसन प्रदान करो।

[सब यथा स्थान बैठ जाते हैं]

महाराज ! सब कुशल है न् (कर्णसिह क्रोधवश कुछ नहीं कहता]

एक सेवक-हाँ जी ! महाराज सर्वथा कुशल है, स्वामी जी ! आपने रासक्रिडा दर्शन का तिरस्कार क्यों किया ?

दयानन्द—महाशय ! मैं भारत के दुर्भाग्य का दर्शन नही करना चाहता ?

कर्णसिह—(बीच में ही) किन्तु महाराज ! ह ता बतलाइये कि आपको क्या आपत्ति है इसमें ? और भी तो है साधु महात्मा एवं पण्डितवर्य, जो समय-समय पर दर्शन के लिये आते रहते हैं।

दयानन्द सच है यह, किन्तु शास्त्रों में स्त्री वेषधारी तथा अनुकरण करने वाले पुरुषों का दर्शन संन्यासियों के लिये वर्जित है।

कर्णसिह-मैंने तो सुना है कि आप मूर्तिपूजा और तीर्थस्थान का विरोध करते हैं।

दयानन्द—आपने ठीक ही सुना है।

कर्णसिह-इस समय तो मैं ना कर रहा हूं कि आप कहीं भी विरोध ना करें।

दयानन्द –राजन् ! सत्यधर्मस्थापनाय जन्म दयानन्दस्य, तत्कि भवतां निषेधेन ? अथवा महाराज ! भवतैव व्रीडितव्यम्।

क्षेमंकरैर्निगमचरणैर्नीतिशौर्यप्रतिष्ठा
ये राज्यस्य स्थितिनियमनादात्तदण्डाः प्रपन्नाः।
उत्कर्षाणामचलगिरिभिर्यैश्च राजन्वतीभू-
स्ते राजानो विषयविषय नाटकं क्रीडयन्ति ॥१६॥

राजन् ! राज्यधर्मविरोधः परमापदां पदं, धर्म्यण कर्मणा प्रजारञ्जन राज्यन्यकुलक्रमः। ततः प्रजापालनतत्परो भूः।

कर्णसिंहः–(मध्ये सक्रोधं) नाहं धर्मकथां श्रोतुमागतः। ननु आज्ञापयामि न खण्डनं कर्तव्यम् ।

दयानन्दः—ननु अहमपि प्रतिज्ञां करोमि। कल्पान्तेऽपि न सत्यं त्यक्षामि। तथा च अद्यैव गत्वा कर्णराज ! भवता रास-क्रीडा दूरीकरणीया।

(कर्णसिंहः तूष्णीं भवति)

एकः पुरुषः—स्वामिन् ! अत्र न गन्धोऽपि दोषस्य। केवलं मनोरञ्जनं महाराजस्य। अथवा पूर्वसुकृतवशात् प्राप्तेन धनेन यदि महाराजेन नानुभूयते बिलासानुभवस्तदा केनापि मितंपचेनानुभूयते ?

गुणेन्दुः—अरे किं वृथाऽपृष्टं ब्रूषे ? न वित्तेन बिलासानुभवः परं जन्मलाभः श्रीमतः—

दयानन्द—राजन् ! सत्यधर्म की स्थापना के लिये ही दयानन्द का जन्म हुआ है ।

तो आपके ना करने से क्या होता है ? अथवा आपको लज्जित होना चाहिये, कर्णराज ! इस घृणित कार्य से !

वेदोक्त भद्रभव सौख्य विधान नीति,
स्वीकार थी जिन नरेंद्र महेश्वरों को
राजन्वती सतत थी धरिणी जिन्हों से,
वे ही नरेश विषयीं इन नाटकों से,
ये आत्तदन्ड जनता सुख हेतु बद्ध,
उत्कर्षता गिरी शिखरासन सन्निनद्ध ॥१६॥

नरेश ! राज्यधर्म विरोध, असीमित आपदाओं का कारण हो जाता है । धर्म पूर्वक कर्तव्य पालन से क्षत्रिय कुलकीर्ति बढ़ती है । अतः आप प्रजापालन कार्य में तत्पर हो जावें !

कर्णसिंह—(बीच में ही क्रोध करते हुए) मैं धर्मकथा सुनने नहीं आया हूं, मेरी आज्ञा है कि खन्डन नहीं करना ।

दयानन्द—तो मेरी भी प्रतिज्ञा अच्छी प्रकार से सुन लो—मैं कल्पान्त तक भी सत्य नहीं छोड़ूंगा और कर्णसिंह अभी जाकर रासक्रिडा को बन्द करा दो ।

[कर्णसिंह चुप हो जाता है]

एक सेवक–स्वामीजी, इसमें दोष की गन्ध भी नहीं हैं, यह तो महाराज का मनोरंजन मात्र है । अथवा पुरबले पुण्यवश प्राप्तधन से यदि महाराज विषय सुख का अनुभव न करें तो कौन कंजूस है जो फिर अनुभव करेगा ?

गुणेन्दु—ओ क्यों बिना पूछे ही बीच में बोलता है ? धन वैभव से विलास का अनुभव नहीं, किन्तु मानव जन्म लाभ है श्रीमान् का,

दीनानां परिरक्षणं सुकृतिनां सत्कारचर्चादरो
लोकक्षेमकरासु साधनकृते शिक्षाकलासु व्ययः ।
धर्मस्यायतने च दाननियमः प्रीत्या प्रजारञ्जनं
कर्मेदं द्रविणेन कीर्तिजनकं सौभाग्यसंभूतये ॥१७॥

एकः पुरुषः–भो ब्रह्मचारिन् ! यावन्न प्राप्यते तावद्रुचिरं सर्वम्-

लीलाविलासचतुराणि मनोहराणि
चेतोऽतिकर्षणमनोभवमञ्जुलानि ।
पुण्यं विना न भुवि जन्मवतां भवन्ति
मुग्धाङ्गनाविलसितानि तथा धनानि ॥१८॥

दयानन्दः—अलमलं व्यर्थप्रपञ्चन, अयि राजसेवक ! त्वयापि स्वात्मानुरूप नृत्यते । (कर्णं प्रति)

महाराज ! राजन्यवंशावतंसेन भवता रासलीलादर्शनमनुभूयत इति हा प्रजानां दुर्भाग्यमेव । महाभाग ! एतया महामोहमलीमसया पापिन्या राजश्रिया परिगृहीताः पदे पदे दुर्विनीतदुर्दान्तचेतसः क्षत्रिया निजकुलकलङ्कमातेनिरे। राजन् ! प्रजापालनमन्तरेण स्वप्नेऽपि कामचाराचरणं निरयाय संमतं भूपतीनाम्, द्राघीयसि राज्यमदपङ्के पतिता अपि स्वात्मानं नोद्धरन्तः स्थेमानमाभजन्ते दुर्यशसः। महाभाग ! क्षत्रियोऽसि ! आलम्बनमसि भारतस्य ।

कर्णसिंहः—हं हो कथङ्कारमुपदेशकष्टं सहसे ?

गुणेन्दुः—(स्वगतं) आः पाप ! अतिक्रान्ता धर्ममर्यादा ?

'दीनों की परिरक्षण सुकृतियों की अर्चना मानना,
लोकक्षेम विधायिनी वरकला चारार्थिता सुव्यय।
धर्म स्थापन में सदा धनगति प्रेम्णा प्रजारंजना,
द्रव्याधीन यशस्कर यही सौभाग्य सम्वर्धना ॥१७॥

एक व्यक्ति—हाँ, हाँ, ब्रह्मचारिन् ! जब तक नहीं मिलता तभी तक सुन्दर है यह सब !

लीला विलास चतुरान्तर शोभना ये,
चित्तातिकर्षण मनोभव मंजुला ये,
पालने पुण्य विन मानव विश्व में ये।
मुग्धांगना विलसन द्रविणादि सौख्य ॥१८॥

दयानन्द—वन्द करो ये व्यर्थ की बातें! ओ राजसेवक ! तू भी अपने आत्मा के अनुसार नाच रहा है! (कर्णसिंह से) महाराज, क्षत्रिय वंशालंकार आप जो रासलीला देख रहे हैं, यह आपकी प्रजा का दुर्भाग्य ही है ! महानुभाव ! इस महा मोहमलिन पापिनी. राजलक्ष्मी से जकड़े हुए दुर्विनीत दुर्दान्त चेता राजन्य गण निजकुलको ही कलंकित करते रहे ! नरपते ! प्रजापालन के अतिरिक्त स्वप्न में भी कामाचाराचरण, क्षत्रियों के नरक के लिये ही होता है। दीर्घतम कर्दम में निमग्न ये क्षत्रिय निज उद्धार तो नहीं कर पाते, किन्तु अपयश के भागी बन जाते हैं ! महाभाग ! क्षत्रिय हो, प्रजा रक्षक हो, भारत के महान् आलम्बन हो !

कर्णसिंह—अरे रे ! क्यों व्यर्थ में उपदेश का कष्ट उठा रहे हो !

गुणेन्दु—(स्वगत) हाय रे पाप ! मर्यादा का अतिक्रमण हो गया है यह तो !

कर्णसिंहः--श्रूयताम् । अत्र वैष्णवमतखण्डनं न भवता कर्तव्यम् अथवा सर्वस्यैव सनातनधर्मस्य ।

दयानंदः—राजन् ! ननु वैष्णवोऽसि ?

कर्णसिंहः—अथ किम ? न पश्यसि मदीयभाले श्रियम् ?

दयानन्दः—(स्वगतं) आः कर्णराज ! दयानन्दो न परिभूयते भवादृशा पामरवञ्चकेन । (प्रकाशं) ननु राजन् ! कस्माद् गृहीता वैष्णवमतस्य दीक्षा ? अथवा किमर्थं धारयसि श्रियं भाले ?

कर्णसिंहः—श्रीमद्रङ्गाचार्यस्य शिष्योऽस्मि ।

गुणेन्दुः—(जनान्तिकं) ननु अनङ्गाचार्यस्येति वक्तव्यम् ।

कर्णसिंहः—एषा वैष्णवमतस्य परमपूज्या श्रीः, य एनां न धारयति स चण्डाल एव ।

दयानन्दः—(विहस्य) एवम् ? ननु भवतां पिता अपि वैष्णवमतानुचरः किमासीत् ?

कर्णसिंहः—नहि नहि ।

दयानन्दः—तदा स एव चाण्डालतनयः ।

कर्णसिंहः—(सक्रोधं) आः मुन्डितमुण्ड, पाखण्डखण्ड ! किमुच्यते, एष दर्शयामि; अयं न भवसि । (इति करवालेन हन्तुमुद्यते । दयानन्दस्तत् खन्डयति)

दयानन्दः—आः क्षत्रियाधम ? पापापसद ! कुलकन्टक ! दयानन्दं हन्तुमीहसे ?

अनेन क्रूरपापेन वंशविप्लवकारिणा ।
पराभूतेन भीतेन लज्जते जननीत्वया ॥१६॥

कर्णसिंह–सुन लो, कान खोलकर ! यहाँ रहकर आप वैष्णव मत का खन्ड़न न करें; हाँ हाँ समस्त सनातन धर्म का खन्ड़न न करें।

दयानन्द—राजन् ! क्या वैष्णव है आप ?

कर्णसिंह—और नहीं तो क्या ? देखते नहीं हो मेरे मस्तक पर श्री चिन्ह ?

दयानन्द—(स्वगत) ओ कर्णसिंह ! तुम जैसे पतित जनों से दयानन्द धोखा नहीं खा सकता ! (प्रकाश में) हाँ राजन् ! आपने वैष्णव मत की दीक्षा किससे ली है ? और यह लक्ष्मी का प्रतीक मस्तक पर क्यों धारण करते हैं ?

कर्णसिंह–मैं श्रीमद् रंगाचार्य जी का शिष्य हूं।

गुणेन्दु—(लोगों से) नहीं, नहीं, अनंगाचार्य ऐसा कहना चाहिये।

कर्णसिंह–यह वैष्णव मत की परमपूज्य 'श्री' है, जो इसे धारण नहीं करता, वह चान्डाल ही है।

दयानन्द—(मुस्कुराते हुए) ऐसा है ? क्या आपके पिताजी भी वैष्णव मतानुयायी थे ?

कर्णसिंह—नहीं नहीं।

दयानन्द—तो वे भी चान्डाल और आप भी चान्ड़ाल पुत्र हैं !!

कर्णसिंह—(क्रोध से) ओ घोटमघोट पाखन्ड़ी साधू ! यह क्या बकता है ? देख, मैं मजा चखाता हूं, तुझे, अब झंझट नहीं रहेगा [तलवार से मारने के लिये वार करता है] दयानन्द तलवार को दो टूक कर देता है।

दयानन्द—ओ क्षत्रियाधम ! नीच ! कुलकलंक ! दयानन्द को मारना चाहता है।

ऐसे ही क्रूर पापों से, वंश विप्लवी कर्म से
हारे ड़रे हुए तुझसे माता है लज्जिता तव ॥१९॥

दुर्मदान्ध ! विषयलंपट !

ये धर्मागमरक्षणाय बलिनः शत्रुव्रजेरुत्कटः
सास्थिस्नानसमुत्प्लुत विदधिरे संग्रामसीमाङ्गणम् ।
सोऽयं प्रौढिमुपागतः कृतवलादक्षुण्णधर्मद्रुम-
श्छेत्ता तस्य परं कथ स्वजननीभाराय भूतो भवान् ।।२०।।

(कर्णसिंहः सलज्जं तिष्ठति)

रे रे दुष्ट, लंपाक ! किं निर्वीर्यं निःसत्त्वं भारतम् ? नाद्यापि निद्योतेत किं स्फूर्जितं धर्मस्य ?

चार्वाकभीषणसमीरणचालितस्य
दग्धस्य बौद्धजटिलोद्धृतपावकेन ।
आतस्थुषश्च दृढवेदसुरद्रुमस्य
किं वा करिष्यति भवान् ननु कीटकल्पः ।।२१।।

एकः पुरुषः—ननु रे संन्यासिन् ! किं गर्वायसे ! ननु निषेधयति महाराजो न कर्तव्यं खन्डनम् ।

दयानन्दः—अरे रे जननीगर्भभारभूत, भारतकलङ्क ! शृणु,

आः केनोद्धतमत्तहस्तिकरिपोः स्फूर्जत्सटामोटिता
क्षिप्तः केन करः स्फुरच्छिखिमहज्वालाललन्मण्डले ।
अन्योन्यप्रतिघातसंकटनटचलच्छैस्फुटत्कर्परं
व्यासेद्धुं ननु कस्य शक्तिरभवत्संवर्तझञ्झानिलम् ।।२२।।

गच्छ गच्छ गृहं, राजन् ! कदध्वानमाश्रितोऽसि न करवालकरालधारया भीतो दयानन्दः कदापि सत्यं त्यक्ष्यति!

अथवा—

अद्याद्य कृन्ततु शिरः करवालधारा
मार्तण्डमण्डलमिदं किरतु स्फुलिङ्गान् ।
किन्तु ब्रवीमि, मम सत्यमियं प्रतिज्ञा
नाहं कदापि विरमामि पवित्रधर्मात् ।।२३।।

जो धर्मश्रुति शास्त्र रक्षण रतारि नाश लन्थादरी;
दाता अस्थिपंजर के रणधारामैं प्राप्त सन्मानना,
वो ही आज अजसुपापरत हैं धर्मद्रुमाक्रन्तक
माता यौवन नाशकाधमतिमान् पापार्थ दत्तार्थवान् ।।२०।।

(कर्णसिंह लजाता है)

अरे दुष्ट लम्पट ! क्या भारत शौर्य शून्य हो गया है ? क्या आज भी धर्म की बिजली नहीं चमकती ?

चार्वाक भीषण समीरणने कँपाया,
बौद्धादि नास्तिक मतानलने जलाया,
तो भी प्रशस्ततम वेदसुरद्रुमास्था,
को क्या कभी कीट समान मिटा सकोगे ?

एकपुरुष :—अरे साधु बाबा ! क्यों गर्व कर रहा है, महाराज ना कर रहे हैं तो खण्डन क्यों करता है ?

दयानन्द:—हाँ हाँ रे, माता कोख के भारभूत ! राष्ट्रकलंक ! सुन—

ऐसा कौन जो हस्तिरिपुको भी थाम ले केशसे,
कें कें हाथ अमीत चण्ड अनल ज्वालौघ में क्षत्रप,
अन्योन्यप्रति घात कष्ट जनक प्रख्यात वीरेशको,
यों ही रोक सके न शक्ति नर में सर्वत्र क्रोध से ।।२२।।

जाओ जाओ राजन् अपने घर, कुपथ में चले गये हो, करवाल की करालधारा दयानन्द को भयभीत कर, सत्य नहीं छुडवा सकती ! अथवा—

दे काट आज शिर को करवाल धारा;
हो खण्ड-खण्ड रविमण्डल अग्नियोंसा,
मैं बोलता हूं दृढसत्य यही प्रतिज्ञा,
वेदोक्त धर्म आभयानबना रहूं मैं ।।२३।।

यदि नाम सत्यं मन्यसे वैष्णवमतं तदा समाहूय रङ्गाचार्यं निश्चयं करोतु भवान् ।

कर्णसिंहः—आः कस्त्वं तेन समं शास्त्रार्थं विधातुं क्षमः? (किङ्करं) ननु भोः आगच्छन्तु सर्वे । पश्चात्प्रचण्ड दण्डं दास्यामः ।

(इति निष्क्रान्ताः)

गुणेंदुः–भगवन् ! नराधमेन महदकार्यमनुष्ठितम् ।

सभाजनाः–फलमस्यानुभूतम् । सत्यस्य जयः सर्वदैव ।

गुणेंदुः—भगवन् ! मन्ये किञ्चिदवश्य अनार्यसदृक्षं करिष्यति नराधमः ।

दयानन्दः—न भेतव्यं, न भेतव्यम् । गोप्तरि सकलनायक परमात्मनि किमस्ति सामर्थ्यं कोटस्य तस्य ? भवतु, समासीदति संध्यावसरः । विसृज्यतां सभाजनः श्रौतविषये ।

गुणेंदुः—एवं यथादिशति भगवान् । [सूर्यं दृष्टवा)

ध्वंसं निरीक्ष्य कुटिलक्षितिपैरजस्त्रं
धर्मस्य सत्रमुदयेन च भारतस्य ।
आरक्तमण्डल उदस्तमहाः सलज्जं
अस्तं प्रयाति भगवान्किमु वासरेशः ।।२४।।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

प्रवेशश्चतुर्थः

(स्थानं काशी, श्रीस्वामी दयानन्दः, गुणेन्दुश्च)

दयानन्दः–प्रियबन्धो, गुणेन्दो ! निरीक्षस्व पुनः पुनः काशिकाया महिमानम् ।

आदर्शः श्रुतिगौरवस्य, सदनं धर्मक्रियायाः परं
सेतुः शास्त्रमहोदधेरघमलध्वंसाय दिव्याम्बुदः ।

यदि आपको वैष्णवमत पर विश्वास है तो रंगाचार्य को बुलाकर निश्चय करा ले मेरे सामने !

कर्णसिंह :–अरे, कौन हे तू उनके साथ शास्त्रार्थ करने वाला ? चलो सब यहाँ से, बाद में भयंकर दंड देंगे।

(सब चले जाते है)

गुणेन्दु :–भगवन् ! नराधम ने बड़ा नीच कर्म किया,

सभाजन :–इसका फल भी तो चख लिया है, सत्य की जीत होती है सदा।

गुणेन्दु :–महाराज ! यह नरराक्षस, अवश्य ही कुछ बुरा करेगा !

दयानन्द :–मत डरो, मत डरो, परमरक्षक प्रभु के रहते इस बेचारे की शक्ति ही क्या है ?

अच्छा, संध्याकाल आ रहा है, सभा समाप्त करो, वैदिक् विधि सम्पादन के लिये।

गुणेन्दु :—जो महाराज की आज्ञा (सूर्य को देखकर)

विध्वस देख कुटिल क्षिति पालकों से,
धर्मादि का सतत, उन्नति देश की ये,
संरक्त मन्डल दिनेश्वर लज्जितोसा,
अस्ताचलाभिमुख क्यों अब जा रहा है ? ॥२४॥

(सब चले जाते हैं)

चतुर्थ प्रवेश

[स्थान : वाराणसी; स्वामी दयानन्द एवं गुणेन्दु]

दयानन्द :–प्रिय बन्धो ! गुणेन्दो ! बार-बार काशीपुरी का माहात्य, देखो। देखो–

'आदर्श प्रबलार्ष गौरवमयी, धर्मक्रिया सुस्थली,
शास्त्राम्बोधिका सुसेतु, अघ के ज्वालार्थ दिव्याम्बुद;

मूलं निश्चलमार्यजीवनतरोरुच्छ्वास आसंसृतेः
सेयं विश्वजनीनशर्मसरणिः मुक्तिप्रिया काशिका ॥२५॥

अत्रैव वैदिकधर्मस्य निदानम्। अत्रैव वेदविरुद्धं बौद्धमतं मार्तण्ड इव संतमसं श्रीशङ्करः खण्डयाञ्चकार। अस्मादेव स्थानात्परेऽपि धर्माः प्रादुर्बभूवुः। सर्वथा नमो विद्याजनन्यै भारतसौभाग्यतिलकायमानायं काशिकायै!

गुणेन्दुः–(स्वगतं) अहो सौजन्यं कर्मयोगिनो महात्मनः (प्रकाशं) भगवन्। अत्र सांप्रतं किं विधेयम्?

दयानन्दः–स एव वेदसिंहनादः। गुणेन्दो! महान्प्रकर्षः खलु काशीस्थैः पण्डितप्रकाण्डैः सह शास्त्रार्थचर्चायाम् ननु भवता वाराणसी पर्यटता कीदृशं कौतुकं वीक्षितम्? अपिनाम समपद्यत संगमः केनापि धीमता?

गुणेन्दुः–महाराज! मया यद् दृष्टं तथैव तत्तिष्ठतु।

दयानन्दः–किञ्चिदाश्चर्यं विद्यते?

गुणेन्दुः–भगवन्! दूरतः पर्वता रम्या, इति सत्यमनुभूतं मया।

दयानन्दः–[विहस्य] तथापि शृणोमि।

गुणेन्दुः—गतोऽहं सर्वत्र भ्रमणाय, तत्र—

केचिद्दम्भपराः प्रतारणपरा वैतण्डिका याचका
धूर्ताः श्राद्धभुजश्च मांसरुचयः शैलालिनः काथिका
आधूना अलसा विलासनिरता दृष्टा मया सर्वतो
द्वित्राः सन्ति मनस्विनः श्रुतिशिखाकर्णावतंसाः परम् ॥२६॥

दयानन्दः–[सहर्षं] महाभाग! तैरेव भूषिता काशिका।

अस्त गते श्रुतिसनातनधर्मभानौ
स्वार्थाम्बुदेन पिहिते स्मृतिशीतरश्मौ।
आस्कन्दितेऽन्धतमसा जगतीतलेऽस्मिन्
द्वित्राः स्फुरन्ति ननु दिग्भ्रममाधुतानाः ॥२७॥

है मूलाश्रय आर्यधर्म तरु की उच्छ्वास संस्कार की,
है ये विश्व जनीन पुन्य पथिका वाराणसी मोक्षदा ॥२५॥

यही पर वैदिक धर्म का निदान है, यहीं पर बौद्ध जैन मतान्धकार को मार्तन्ड बनकर आदि शंकराचार्य महाराज ने खन्ड खन्ड किया था, इसी स्थान से अन्य धर्मोंका प्रादुर्भाव हुआ, विद्या प्रसविनी भारत सौभाग्य वर्धिनी पुन्यनगरी काशी पुरी को हमारा नमन हो !

गणेन्दु :–(स्वगत) अहो इस कर्मयोगी महात्मा का कितनी सज्जनता है ?

(प्रकाश में) भगवन्, अब क्या करना होगा ?

दयानन्द :–वही वैदिक सिंहनाद ! गुणेन्दु ! काशी के प्रकान्ड पन्डितों के साथ शास्त्रार्थ करना बड़ा गौरवशाली है । तुमने वाराणसी भ्रमण में क्या क्या कौतुक देखें ? क्या किसी बुद्धिमान के दर्शन भी हुए ?

गुणेन्दु :–भगवन् पर्वत दूर से सुन्दर लगते हैं इस उक्ति का यथार्थ अनुभव पा लिया मैंने ।

दयानन्द :–(हँसते हुए) तो भी सुनूं तो सही !

गुणेन्दु :--मैं सर्वत्र भ्रमण के लिये ही गया हूं और सर्वत्र—

कोई दम्भ भर प्रतारणपटु प्रागल्भ्य है भिक्षुक
धूर्त श्राद्ध रताशनगत, प्रज्ञाविहीन कृत,
मांस सुरादि सेवन, आलस्यशीलाखिल,
तो भी द्विजमनस्वि पादरज से पुन्यस्थली काशिका ।२६।

दयानन्द:–(सहर्ष) महाशय । इन्हीं से काशी शोभायमान है

अस्तंगत श्रुयिसनातन धर्मभानु,
स्वार्थं, मबुदीय ढकना स्मृति चन्द्रमा प,
गाढान्धकार भव में अति विस्तराये,
दो तीन ही पथ दिखा भ्रमनाश कारी ॥२७॥

गुणेन्दुः—भगवन् !

किं श्रावयामि कौतुकम् ?

घण्टानिनादेन समाकुलेऽस्मिन्
गृहे गृहे भूतपतेर्निवासः ।
तटे तटे किं च घटात् पटानां
रटन्ति भेदं प्रतिघट्ट भट्टाः ॥२८॥

तथा च—

न श्रूयते वेदविवेकशैली
दुस्तर्कपङ्के सकला निलीनाः ।
आवासर हा कुविचारदोषै-
रध्यासते पण्डितमण्डलीशाः ॥२९॥

दयानन्दः—साधारणमिदं कर्म तेषां घटपटविघटनम् ।

गुणेन्दुः—केचिद्व्याकरणावधानविधुराः शब्दार्थचिन्ताकुला
मीमांसारटवश्च नैकमतयः क्लिष्टाः परे तार्किकाः ।
केचिन्मन्त्रविवादिनः सुकृतिनः केचित्प्रबन्धामृतै-
रेवं वेदविवेचना चतुरिमा संख्यासमालिङ्गति ॥३०॥

दयानन्दः—(विहस्य) ननु तवापि सुप्रसन्ना निरीक्षणवैदग्धी ।

गुणेन्दुः—स्वामिन् ! अत्र काशिकायामवश्यकर्तव्यस्य शास्त्रार्थस्य रहस्यं मया न सम्यग्विदितम् ।

दयानन्दः—एवं, शृणु—इदमेव विजयस्थामं धर्मस्य । अत्र निर्णीतस्य धर्मस्य पन्थानमनुयान्ति सर्वेऽपि भारतीयाः । ततः काशिनिवासिभिः पण्डितप्रकाण्डैः पूर्वं विधेयः श्रुतिधर्मसिद्धान्तः । शृणु गुणेन्दो ! रहस्यम् । एतेषां ब्राह्मणानामेव हस्तेषु भारतोदयसूत्रस्य निक्षेपः । कुलक्रमः खलु धर्मकर्मोद्धाराय ब्राह्मणानाम् ।

गुणेन्दुः—(स्वगतं) कथं कुलक्रमः, न गुणकर्मणी ?

गुणेंदु :—भगवन् ! क्या मैं कौतुक सुना दूं ?

घन्टानिनाद मुखरीकृत आलयों में,
है विश्वनाथ हर का सब और वास,
भागीरथी तट गतामल छात्र नित्यम्
अत्यन्त लीन मन हो रटते घटत्वम् ॥२८॥

और—

आती कर्णपथ में श्रुतिसत्यशली
दुस्तर्क कदम निमग्न समस्त वेदी,
रात्रिंदिवा अहह भ्रष्ट विचारदोषी
ये शोभते है कविराज यहाँ वहाँ पे ॥२९॥

दयानन्द–यहां घटत्व पटत्वादि कर्म तो साधारण है इनके लिये !

गुणेंदु—कोई व्याकरणावधान पटु, जो शब्दार्थ चिन्ताकुल,
मीमांसा निपुणार्थं वादरत तो कोई बड़े तार्किक,
कोई मंत्र विवादधी सुकृतवान्, कोई प्रबन्धामृती,
ऐसे वेदविवचकों के गणका चातुर्य संन्यास में ॥३०॥

दयानन्द–(मुस्कुराकर) तुम तो निरीक्षण में बड़े निपुण निकले।

गुणेंदु–स्वामीजी ! काशी शास्त्रार्थ की आवश्यकता मेरी समझ में तो नहीं आयी कि इसमें क्या रहस्य है ?

दयानन्द:--अच्छा, तो सुन लो, काशीपुरी ही विजयस्थली है धर्म की, सभी भारतीय यहाँ निर्णीत धर्म को मानते हैं। अत: काशी निवासी प्रकान्ड पन्डितों से वेदोक्त धर्म का निर्णय कराना है। गुणेन्दो ! और सुनो रहस्य-इन्हीं ब्राह्मणों के हाथों में भारतोदय सूत्र का आधार है, धर्मकर्मोद्धार के लिये कुलक्रम तो ब्राह्मणों का है ही।

गुणेन्दु–(स्वगत में) कुलक्रम क्यों, गुणकर्म नहीं ?

दयानन्द :—यदि खल्वेते पक्षपातं विहाय गुणकर्मानुरागिणः श्रुतिसिद्धान्त प्रकाशनाय जागरिताः स्युः, तदा पुनर्जन्म कर्तुं प्रभविष्यन्ति भारतस्य ।

गुणेन्दु :—(स्वगतं) हन्त निरस्ता शङ्का । (प्रकाशं) भगवन् । सत्यं समस्तं, किन्तु साम्प्रतमनधिकारिशासकशासनात्-

शिक्षा नष्टा जना भ्रष्टाः सर्वाः शिल्पकलागताः ।
परचक्रपीडितानां श्री ह्री धी कीर्तयो गताः ॥३१॥

दयानन्द :—सम्यक् पश्यसि बन्धो ! एतत्सर्वं हृदये निधाय प्रवृत्तिर्मे स्वातन्त्र्यमूलम् । ऐक्यं पूर्व धर्माविरोधेन स्थापनीयम् ततः परं सर्व श्रुतिसिद्धान्ततः सहोदरा इव श्रेयसे कल्पिष्यन्ते । मूलं धर्मः परमाभ्युदयस्य ।

गुणेन्दु :—न मदीया मतिः स्फुरति भवदीयतेजसि ।

दयानन्द :—(अश्रुत्वेव) आगामिनि वासरे बेदविजयस्य सूत्रं स्थापनीयम् । (सध्यानं) ओ३म्, मङ्गलं विधास्यति विश्वनाथः ।

गुणेन्दु :—(स्वगतं] अहो परमोत्कर्षः स्वामिनः ।
प्रभो ! सत्यबन्धो ! देहि पवित्रं प्रकाशम् ।

दयानन्द :—आगच्छतु नित्यनियमाय ।

[इति निष्क्रान्तौ ।]

पञ्चमं दृश्यम्

[स्थानं दशाश्वमेधघट्टः । आनन्द-गौराङ्गौ पुरवासिनश्च प्रविशन्ति]

दयानन्द—और यदि ये ब्राह्मण पक्षपात छोड़कर गुणकर्मानुसार वैदिक सिद्धान्त प्रकाशन के लिए कटीबद्ध हो जावें, जागृत बन जावें तो निःसंदेह भारत का पुनर्जन्म हो जाये।

गुणेंदु—(स्वागत) ओहो! शंका समाधान हो गया (प्रकाश में) महाराज, आपका कथन अक्षरशः सत्य है किन्तु सामयिक अनधिकारी शासन होने से।

शिक्षा नष्ट, जनभ्रष्ट, सारी शिल्पकला गयी,
पराधीन मनुष्यों की श्री ही धी कीर्तियाँ मिटीं ॥३१॥

दयानन्द-ठीक देख रहे हो भाई, यह सब देखकर ही तो मेरे हृदय में स्वतंत्रता की भावना उठी है; धर्मगत एकता सर्वं प्रथम स्थापित होनी चाहिये, बाद में तो सभी जन वैदिक सिद्धान्तों से सहमत होकर सहोदरों के से परस्पर बर्तेंगे कल्याण के लिये। धर्म ही तो परमाभ्युदय का आधार है।

गुणेंदु—मुझे कुछ नहीं सूझता आपके विचारों के सामने।

दयानन्द—(अनसुना करके) आगामी दिनों में वैदिक विजय सूत्र की स्थापना करनी होगी। (सोचकर) ओ३म् भगवान् विश्वनाथ कल्याण करेंगे।

गुणेंदु—(स्वगत) स्वामीजी तो अत्यन्त पहुंचे हुए हैं। प्रभो! सत्यबन्धो! पुनीत ज्योति प्रदान करो।

दयानन्द—चलो नैत्यिक कार्यं करने चले।

(दोनों चले जाते हैं)

पंचम दृश्य

[स्थान दशाश्वमेघघाट, समय सायंकाल, आनन्द, गोरांग और नगर निवासियों का आगमन]

गौराङ्ग :–हन्त भोः समाकुलं शिवनगरं धर्मवादेन । अहो आश्चर्यमाश्चर्यम् ! तस्य महात्मनः श्रुत्वा शास्त्रार्थचर्चा प्रतिगृहं, प्रतिहट्टं, प्रतिदेवकुलं प्रतिघट्टं च सर्वत्र पल्लवितं धर्मचर्चया । जाने किञ्चिन्नूतनं तत्त्वमु-पदेक्ष्यति महात्मा अथवा नवीना भारतस्येतिहासपृष्ठे सोभाग्य-प्रतिष्ठा स्थास्यति । गतोऽहं गतदिने तस्य श्रोतुं शास्त्रार्थचर्चामहो-पाण्डित्यम् । अहो ! विवेचनवैदग्धी, अपूर्व इव दृश्यते असाधारणस्तस्य महात्मनो वैदिकधर्म पक्षपातः । सौजन्यसरलं पश्यतस्तस्य वदनं कापि विलक्षणा श्रद्धा जायते जनस्य । किं वा कथमेतन्न भविष्यति—

पावनं सृष्टसल्लोकं साधीयो विश्वशङ्करम् ।
धर्मकर्मोदयस्येदमुत्तमं ज्योतिरुद्गतम् ॥ ३२ ॥

आनन्द :–कथं गौराङ्ग ! किमत्र चिन्तयसि ?

गौराङ्ग :–किं चिन्तनं शास्त्रार्थं कोलाहलमन्तरेण ?

आनन्द :–बन्धो ! किं दृष्टं गतवासरे तत्र ?

गौराङ्ग :–अहो किं श्रावयामि ? महान्प्रकर्षस्तस्य । एकतः सर्वा वाराणसी-पण्डितमण्डली, अन्यत्र एकाकी संन्यासी महात्मा दयानन्दः । आश्चर्यमाश्चर्यं । नेपथ्ये—

भो भोः अन्तेवासिनः ! संनद्धा भवन्तु । अद्य तेन संन्यासिना धर्मध्वसकेन समं व्याकरणशास्त्रे भविष्यति संवादः ।

आनन्द :–[श्रुत्वा] अये किमिद, कश्चिद्विद्वान् शास्त्रार्थं कर्तुकाम इव लक्ष्यते ।

गौरांग अरे ओ यह ! शिवनगरी तो धर्मवाद से गूंज उठी है। बड़ा आश्चर्य है। उस महात्मा के शास्त्रार्थ की चर्चा, घर-घर में गली बाजारों में, मन्दिर-मन्दिर में, घाट-घाट पर हो रही है। पल्लवित धर्म चर्चा के कारण लगता है कुछ नवीन तत्व को उपदेश देगा यह महात्मा अथवा भारतीय इतिहास के पृष्टों पर नवीन प्रतिष्ठा स्थापित करेगा। गत दिवस ही तो मैं उस महात्मा की शास्त्रार्थ चर्चा को सुनने गया था। ओ हो कितना पाण्डित्य है ! विवेचन का वैदग्ध्य क्या कमाल का है ! उस महात्मा का वेदों के प्रति असाधारण प्रेम है। यह पक्षपात तो अभूत पूर्व ही है। महात्मा के सौजन्य मण्डित मुख मण्डला को देखकर न जाने श्रद्धा कहाँ से उमड़ पड़ती है जन-जन के मनों में; क्या ऐसा तो नहीं हो जायेगा—

ज्योति उदित हो गयी नवली, धर्मकर्म उदयन उत्तम
पावनतम उत्पन्न जगत यह विश्व-शंकरी साधनतमा ॥३२॥

आनन्द—क्यों गौरांग, क्या सोच रहे हो ?

गौरांग—शास्त्रार्थ कोलाहल के अतिरिक्त क्या सोचना है ?

आनन्द—भैय्या, कल शास्त्रार्थ में देखा तुमने ?

गौरांग—अरे भई ! क्या सुना ऊं ? वह बड़ा विद्वान् है महात्मा, एक ओर सारी वाराणसी नगरी और दूसरी ओर एकाकी साधुबाबा दयानन्द ! आश्चर्य, आश्चर्य,

नेपथ्य में

अरे विद्यार्थियों ! सज्जित हो जावो, आज उस धर्मध्वज संन्यासी के साथ व्याकरण शास्त्र पर शास्त्रार्थ होगा।

आनन्द—(सुनकर) हैं ? क्या कोई विद्वान इनसे शास्त्रार्थ करने की इच्छा कर रहा है ?

गौराङ्गः :-किं न जानासि ? स एव वृद्धः पण्डितः स्वरसंयोगेन ज्ञायते । [आकाशे दृष्टवा] भो भोः !

यस्याकर्ण्य घनाघनध्वनिमिव क्ष्वेडाप्रकर्षं गजा-
श्चीत्कुर्वन्ति रणन्ति पर्वतगुहास्त्रुटयन्ति दिग्भित्तयः।
रे रे वृद्धशृगल ! साकममुना पञ्चाननेनाधुना
स्पर्धाबन्धमुपेयुषस्तव कथं लज्जापि नो जायते ॥३३॥

कृष्णचन्द्रः-[प्रविश्य] भो नरदेव ! कथं संभ्रान्त इव दृश्यसे ?

प्रथमः—न श्रूयते भवता कोलाहलः ?

द्वितीयः—आम् श्रूयते. किमस्ति तेन ?

कृष्णचन्द्रः-भोः ! आश्चर्यमाश्चर्यम् !

भित्त्वा संतमसं प्रकाश्य भुवनं छित्त्वा जगन्निद्रितां
भङ्क्त्वाऽस्माकमनोरथं च परमामून्मुल्य मायाविताम्।
सम्प्राप्तं रविमेनमाशुसकला बध्नन्तु बध्नन्तु भो-
रित्थ-घूकनिकाय एत्यभिरणं तस्यैष कोलाहलः ॥३४॥

प्रथमः—ननु किं हृदये कृत्वा मन्त्रयसे ? स्फुटं प्रतिपादय ।

कृष्णचन्द्रः-किं न विदितं शास्त्रार्थकुतूहलम् !

प्रथमः—अवगतं तत्त्वम् । पण्डिताः शास्त्रार्थं कर्तुं व्रजन्ति।

कृष्णचन्द्रः—अथ किम् ? परं न तेषां विजयः । अहं जगदेव ! पुराणमताय तिलाञ्जलिं दास्यामि ।

द्वितीयः—ननु तस्यैव महात्मनः प्रभावेण ।

कुलमणिः—(प्रविश्य) आश्चर्यमाश्चर्यम् । (विलोक्य) अहो नटवर । त्वमत्रैव नृत्यसि ?

गौरांग—तुम्हें नहीं पता लग रहा है कि वही बूढ़ा पाण्डित शास्त्रार्थं करने वाला है, पारस्पारिक वातचीत से ! (आकाश की ओर देखकर) अरे रे !

'श्यामाम्बोधर गूढशब्द समहीं मत्तेभ राजेश्वर,
आकर्णीकृत तत्क्षण प्रकटिता भीति प्रभिन्नाचल,
ओ रे वृद्धश्रृगाल ! सम्प्रति सह व्यापारवान् सिंह से,
स्पर्धा में यदि तू रहा उत्तर तो लज्जा न आती तुझे ।।३३।।

कृष्णचन्द्र—[प्रविष्ट होकर] अरे नरदेव ! हैरान सा क्यों दीख रहा है ?

प्रथम—नहीं सुना तुमने हो हल्ला ?

द्वितीय—हाँ, सुन तो रहा हूं, पर क्या है यह ?

कृष्णचन्द्र—अरे, बड़े आश्चर्य की बात है कि—

मिटान्धकार को, प्रकाश लोक को, जगतको नींद से जगा,
हमारी मनःकामना को तोड़कर मायाविता का भावमूल से भगा
दिनेश का प्रवेश शीघ्र हो रहा, सभी इसी को
बाँध-आँधलो अरे ! ।।३४।।

इसी प्रकार आ रहा है युद्ध क्षेत्र में घूघ का समूह यह
उसी का शब्द है ।

प्रथम—क्यों भई ! मन ही मनमें क्या सोच रहा है? स्पष्ट कहो न ।

कृष्णचंद्र—ज्ञात नहीं है क्या शास्त्रार्थं का तत्व ?

प्रथम—हाँ हाँ जानता हूँ शास्त्रार्थ का तत्व तो, पण्डित शास्त्रार्थं करेंगे ।

कृष्णचंद्र—और क्या, किन्तु पण्डित विजयी नहीं होंगे, जगदेव ! मैं भी पौराणिक मतको छोड़ने वाला हूं ।

द्वितीय—क्या उसी महात्मा के प्रभाव से !

कुलमणि—आश्चर्य आश्चर्य है । (देखकर) अहो नटवर ! तू यही पर नाच रहा है ?

द्वितीयः—कथं संभ्रांतस्त्वम् ?

कुलमणिः-गतोऽहं शास्त्रविवादं श्रोतुम् ।

सर्वेः—(सकौतुकं) किं वृत्तं, किं वृत्तम् ?

कुलमणिः—खण्डितं पाखण्डजाल महर्षिणा। विजिताः सर्व शास्त्रविशारदाः पण्डिताः। शृणुत। यदा महात्मनि दयानन्दे—

ऋत्विग्भिश्चिरकालयोगमिलितैर्वेदैश्चतुर्भिः समं
तस्मिन् हव्यमिव प्रतीपविमतं वादानले जुह्वति ।
पर्यस्तातितमस्विनो घनघटा स्वच्छं नभोमण्डलं
विश्वं वृत्तमनन्तमङ्गलगहं सौभाग्यमुज्जृम्भते ।।३५।।

द्वितीयः—ननु तादृशाः समस्तशास्त्रपाथोनिधिकर्णधारकल्पाः, निःशेषतन्त्रस्वतन्त्रमतयः व्याकरणन्यायसांख्यमीमांसा-वेदान्तादिषड्दर्शनविमर्शनप्रखरपाण्डित्यपूर्णाः, अनेकपरिपन्थिमत्तमातङ्गमतगण्डखण्डनप्रचण्डप्रवाददण्डाः, उद्दण्डाः पण्डिताः कथमेकेन सन्यासिना दयानन्देन पराजिताः? आश्चर्यम् !

कुलमणिः—दूरे विजयस्तेषां शृणु—

उद्यद्भानुमिवाद्य-कौशिकघटाकादम्बिनी मारुतं
जिष्णुं वैरिचमूर्मृगेन्द्रतनुजं दन्तावलानां ततिः ।
भीतेव प्रपलायितेव विगतव्यापारभारेव सा
दृष्ट्वा पण्डितमण्डली यतिवर दिग्भ्रान्तिमभ्यस्यति ।।३६।।

कृष्णचन्द्रः—ननु एते सर्वे सूरयः किं न जानन्ति धर्मरहस्यम्?

कुलमणिः—साम्प्रतं शास्त्रार्थेन तदेव विदितम्। मिथ्यात्व-वञ्चिता निखिला विद्वांसो व्यामोहयन्ति नानाधर्मवादैः पामरान् ।

द्वितीय–तू कसे चकित हो गया ?

कुलमणि–मैं शास्त्रार्थ सुनने गया था,

सब–(कुतुहल के साथ) क्या हुआ ? क्या हुआ ? शास्त्रार्थ में ?

कुलमणि—महर्षि ने पाखण्ड का भाण्डा फोड़ दिया है, सारे शास्त्रार्थ केसरी, महर्षि दयानन्द ने जीत लिये हैं, सुनो,

महात्मा दयानन्द के शास्त्रार्थ विजयी होने पर

बादानल में, जले वाद के हव्य, विपक्षी मत के वाद,
चतुर्वेदविद योगसिद्ध ऋत्विक पुरोहितों के ही साथ
व्याप गयी रजनी निर्मलता मिटा नभस् घनी-घनी,
लगता था सम्पूर्ण विश्व में मगल प्रतिमा बनी-बनी ॥३५॥

द्वितीय—क्योंजी समस्त शास्त्र सागरों के कर्णधार, बड़े-बड़े विद्वान् अखिल तत्र स्वतत्र गतिमान, व्याकरण न्याय-सांख्य-मीमांसा-वेदान्तादि दर्शन विमर्शन में प्रखर पाण्डित्य पूर्ण अनेक विपक्षियों रूपी मदमस्त मातंगों के गण्डस्थल खण्डन में प्रचण्ड प्रवाद तर्कशील, उद्दण्ड ये पण्डित कैसे जीत लिये उस एकाकी दण्डी संन्यासी दयानन्द ने ? आश्चर्य है !

कुलमणि – दूर दूर सुन लो उसका विजयघोष—

वह पण्डितमण्डली बड़ी, लखभागी यतिको दिगन्त में
जिस भाँति कौशिकावली लख रविको, घनघटा पवन को,
और जयी शत्रु सैन्य, मृगपति सूनू को करिवर समूह को
भयबिभीत धावित प्रति धावित त्याग क्रिया व्यापार
भार को ॥३६॥

कृष्णचंद्र—क्यों ये सब पण्डितवर्य धर्मरहस्य नहीं जानते ?

कुलमणि—इस शास्त्रार्थ से तो यही ज्ञात होता है। समस्त विद्वान् मिथ्यात्व से अववंचित होकर सारी मूर्ख जनता को बहकाये हुए हैं।

द्वितीयः—ननु त्वया यथावकाशं विहितं महात्मनो दर्शनम् !

प्रथमः—(मध्ये) अयि, वञ्चितोऽसि तस्य विना दर्शनेन ।

मूर्तं धाम वरौजसां त्रिभुवनत्राणावतीर्णं महो
मन्ये मिष्टमभीष्टकल्पलतिकासूतं नवीनं फलम् ।
आवासो यशसां, पदं श्रुतिमुदामप्यास्पदं श्रेयसां
सोऽयं वेदवरेण्यभर्गतरणिः काशीपुरीमागतः ॥३७॥

कृष्णचन्द्रः—अस्तु । किमस्ति तस्य महात्मनो मतं येन निखिला विपरीता भवन्ति ।

कुलमणिः—वेदसंमतं मतं तस्य, वेदविरुद्धं न प्रमाणयति ।

द्वितीयः—वेदानां प्रमाणं सूरयोऽपि प्रमाणयन्ति ।

प्रथमः—नहि, अस्माभिरेकोऽपि कदापि न श्रुतो मन्त्रः । समायान्ति तेऽस्मद्गृहे स्मार्तकर्माणि कारयितुं तदा पुराणश्लोकप्रलापेन कुर्वन्ति सर्वम् ।

कुलमणिः—एवमेवम् । केऽपि वेदसिद्धान्तं न जानन्ति ततस्तस्मिन्विषये किमस्ति वेदे प्रतिमापूजनं इति समुद्घुष्टो वादस्तेन महात्मना ।

प्रथमः—ननु किं तस्य मतस्य याथातथ्यम् ?

आकर्णयन्तु सर्वे—

कुलमणिः—निराकारस्त्रिभुवननायकः सच्चिदानन्दः परमात्मा । वेदाः परमं प्रमाणम् । नास्ति प्रतिमापूजनं वेदसंमतम् । विरुद्धाचारः श्राद्धादिकर्मकलापं, । न केवलं जन्मना वर्णनिर्णयः । गुणकर्मानुरोधिनी वर्णप्रतिष्ठा । न जायते पुरुषाकारः परेशानः । पाखण्डजालं तीर्थस्नानम् भगवत्सेव-

द्वितीय—तुमने ठीक ठीक दर्शन किये उस महात्मा के ?

प्रथम—(मध्य में) अरे ! तुम उन्हें विना देखें ही रह गये !

तीनों भवनों के रक्षणहित वो धराधाम अवतीर्ण हुआ
मानो मिष्ट अभीष्ट कल्पतरु लतिका फलनव्यजना,
वो ओजो निधि यश आलय है,—वेदपीठ कल्याण भवन,
काशी आया वेदभक्त अघनाशीकर्ता ध्वान्तनशन ।।३७।।

कृष्णचन्द्र—अच्छा, यह बताओ कि वह महात्मा ऐसी क्या बात कहता है कि सभी विरोधी बन जाते हैं ?

कुलमणि—वेदानुकूल मत है उसका, वेद विरुद्ध मत का खण्डन करता है ।

द्वितीय—वेदों का प्रमाण तो पंडित गण भी मानते हैं ।

प्रथम— नहीं जी ! हमने तो एक भी वेदमंत्र नहीं सुना अभी; हमारे घर में तो आते ही रहते हैं । स्मृतिकर्म कराने, तब तो केवल पुराणों के ही श्लोक बोल के सारा कर्मकांड करा देते हैं !

कुलमणि—ऐसा ही है, कोई भी वैदिक सिद्धान्त नहीं जानता । वेदों में प्रतिमा पूजन का विधान है ? इस विषय पर उस महात्माने प्रश्न पूछा था ।

प्रथम—अच्छा, यह बताओ कि वास्तविकता क्या है वाद में ? सुनें सब—

कुलमणि—त्रिलोकीपति भगवान् निराकार है, सच्चिदानन्द है, परमात्मा है । वेद ही स्वतः प्रमाण हैं; प्रतिमापूजन वेद सम्मत नहीं है । मृतक श्राद्धादि कर्म अवैदिक हैं । गुणकर्म स्वभाव से वर्ण व्यवस्था है, जन्ममात्र से नहीं; परमेश्वर शरीर धारण नहीं करता, तीर्थ स्नान पाखण्ड

वयैव मुक्तिः। कपोलकल्पितं परलोकोपासनम्।

अथवा संक्षेपतः श्रूयताम्—

नीरूपो भगवाँश्चराचरगुरुः, स्रष्टा, प्रमाण श्रुति
जीवः कर्मवशादुपैति च जनिं, श्राद्धादिकाण्डा वृथा।
तीर्थं सच्चरण, स्वकर्मगुणतो वर्णाश्रमाणां संस्थितिः,
मोक्षः सत्यविचारतो भवभृतामेतन्मतं वैदिकम् ॥३८॥

कृष्णचन्द्रः—मदीयो गुरुरपि कदाचित्कदाचिदेवं प्रतिपादयति। परन्तु स ब्रूते नाधिकारिणमन्तरा धर्मस्थितिः।

प्रथमः—अयमपि स्वार्थप्रायः प्रलापः। समीचीना निर्णीता मुनिना धर्मप्रथा। वेदाचारविरोधेन मूर्खबहुलं जातं जगत्।

द्वितीयः—ननु स एव वैदिकधर्मः पुरातनमुनिसमतः तदा कथं विलुप्तप्रायः सांप्रतम्?

प्रथमः—शृणु रहस्यम्—

चार्वाकेण विभर्त्सितः कलिबलाद्बौद्धेन संताडितो
जैनेन प्रतिपादचारमुदयद्रोहेण संत्रासितः।
दुर्वारैर्यवनैस्ततः कवलितश्चान्योन्यमास्कन्दितो
हंहो वैदिकधर्म एष विषमां कां कां दशां नागमत् ॥३९॥

कुलमणिः—सत्यं पश्यसि। तथापि तस्य सत्यस्य प्रचाराय विपत्परंपरा।

प्रथमः—कथम्?

है। भगवान की सेवा से ही मोक्ष होता है। परलोको-पासना कपोल कल्पना है संक्षेप में यों सुन लीजिये—

निराकार है स्थावर जंगम का सृष्टा, चतुर्वेद है परमप्रमाण
जीव कर्मवश जन्मगृहिता, श्राद्धमृतकका व्यर्थतमाम।
सदाचार ही तीर्थस्नानं सहज कर्म गुण वर्ण प्रकार
मुक्ति प्राप्ति हो सद् विचार से वेदोदित सिद्धान्त उदार ॥३८॥

कृष्णचंद्र—हमारे गुरुजी भी कभी कभी ऐसा ही प्रतिपादन करते हैं। किन्तु वे कहते हैं कि बिना अधिकारी के धर्मस्थिति नहीं हो सकती।

प्रथम यह भी स्वार्थान्मुख विचार है। मनु महाराजने धर्म व्यवस्था अति सुन्दर बनायी है। वेदाचार विरोध से ही संसार मूर्खों से भर गया है।

द्वितीय—तो क्या यही है वह वैदिक धर्म प्राचीन ऋषि मुनि सम्मत ! यह धर्म नष्ट क्यों हो गया अब ?

प्रथम—इसका रहस्य सुनो—

किया प्रयास खास चार्वाक ने यही
मिटे जगत से वेदमत विचारणा,
यही किया प्रयत्न बौद्ध जैन ने सदा
मिटे प्रशस्त वेदमत सुधारणा,
यवनों ने असीम त्रास देके इसे
मिटाने का महान् यत्न खूब किया,
हुआ है जीर्णशीर्ण चाहे यह मिटा नहीं
महान् वेद का प्रवाह यान यह मिटा नहीं ॥३९॥

कुलमणि—ठीक कहते हो, तो भी सत्यप्रचार में विघ्न बाहुल्य हैं।

प्रथम—कैसे ?

कुलमणिः—तस्मिन्दिवसे निर्णयादनन्तरं कैश्चित्पामरैस्तस्योपरि लोष्टपाषाणवृष्टिरभिक्लृप्ता ।

सर्वे—धिक् धिक् पापान् ।

दोषेषु प्रथमेऽपमानमुदिता मायाप्रबन्धप्रियाः
कार्याकार्यविचारणाविरहिता लुब्धाः शठा दुर्मदाः ।
श्रामं श्राममहर्निशं विदधति च्छिद्राणि शुद्धे जने
मोदन्ते परदुःखतः प्रतिदिनं दुष्टग्रहा दुर्जनाः ॥४०॥

(नेपथ्ये घण्टारवो भवति)

द्वितीयः—आगच्छन्तु सर्वे दर्शनाय । भविष्यति भैरवपूजनम् ।

प्रथमः—[आकाशे] हंहो पूजकाः । श्राम्यन्तु श्राम्यन्तु क्षणं भवन्तः ।

हंहो भैरव ! तिष्ठ, तिष्ठ भगवन् ! लास्यं क्षणं श्राम्यतु
हेरम्ब ! प्रतिकर्णतालमुदर चीत्कारशून्यं कुरु ।
शंभो ! शङ्कर ! ताण्डवप्रिय ! मनाग्दत्तावधानो भव
श्रूयन्ते चिरमभ्युपेतभुवनोद्धाराः पवित्रा गिरः ॥४१॥

कृष्णचन्द्रः—अहो, ज्ञानबहुलं भविष्यति जगत् ।

तत्त्वं जगत्त्रयहिताय पदं गरिम्ण
ऐदंयुगीनमुदयाय यशोभगीनम् ।
आकल्पमुल्लिखितकल्पमदोऽन्तरिक्षं
श्रुत्वा स्फुरत्यखिलभारतभाग्यचित्रम् ॥४२॥

कुलमणि—उसी शास्त्रार्थ दिवस की घटना है कि शास्त्राथ निर्णय के बाद ही बहुत सारे नीचों ने महात्मा के ऊपर ईंट पत्थरों की वर्षा करदी—

सब—धि:कार है ऐसे नीचों को !

स्वय दोषसम्राट् अन्यों में वे ढूंढते,
हर मान, आल्हाद पाते सदा धूर्तता चूटते,
अकार्यों में वे कार्यधी लुब्धशठ दुर्मदी
प्रसन्नात्म दुष्टा परों के दुखों से मुदी ॥४०॥

(नेपथ्य में घण्टा बजता है)

द्वितीय—सब लोग दर्शनों के लिए आजाइये । भैरव का पूजन होगा ।

प्रथम—(आकाश में) ओ पुजारियो ! आप लोग थोड़ी देर सुस्ता लो जरा;
आ रही है कर्ण कुहरों में सुपावन वाणियाँ
'विश्व का उद्धार होगा, गूंजती है वाणियाँ
चिरसमय से त्रस्त कुण्ठीत, वेदमत सूरज उगेगा,
भ्रष्ट पाखन्डों में वेष्टित देश का तामस भगेगा,
लास्य भैरव ! ठहर जाओ ! क्षणिक विश्राम पालो
ओ गणेश्वर ! निज उदर से तालमय चीत्कार काढो
त्यागताण्डव शम्भुशंकर ! ध्यान देना देव भोले
कौन है कहता सुनाता ! चित्तकर्षक गीतिकाएँ
है भगाता कौन शातिकाओं पुरातन भीतिकाए ॥४१॥

कृष्णचंद्र—अहो ! सारा संसार ज्ञानवान् बन जायेगा अब तो ।

तीनों भुवनों का हित हेतु, गौरव पद का पोषण हार,
तत्वपूर्ण वह युग-उदयन को, कीर्ति देता उपहार,
इन बातों की कान्तकल्पना, मूर्तिमंत नभ में साकार,
कण कण मोद भरा सजता है करता भारत का जयकार ॥४२

कुलमणिः—एवं यदि परमात्मा श्रेयो विधास्यति। नेदीयाँस्तदा भारतविजयावसरः। [सानन्दं]
हंहो महर्षि दयानन्द ! भारतोद्धारक !
चिरंजीव, लभस्व विजयं, राष्ट्रयोगिन् !
तारय संसारं पारतन्त्र्यसागरात्।

अद्य हि—

चञ्चच्चन्द्रकरन्ति शिष्टपरिषच्चेतश्चमत्कारवे
कल्याणामरवाहिनी रसलसत्स्यन्दन्ति सन्मण्डले।
श्रीमच्चन्दनलेपनन्ति मधुराः श्रीमद्दयानन्द ! ते
सर्वाङ्गे कुसुमप्रमोदरसिकाः शुभ्रा यशोराशयः ॥४३॥

द्वितीय—सत्यं सत्यम्। आगच्छन्तु पुनर्यथावसरं मध्यन्दिने तत्र दर्शनार्थं गमिष्यामः।

सर्वे—एवम्।

[इति निष्क्रान्ताः सर्वे]

इति पाखण्डखण्डनं नाम चतुर्थोऽङ्कः



कुलमणि—ऐसा ही है, तो भगवान की कृपा होगी, तब तो भारत विजय का अवसर सन्निकट ही है। [सानन्द] ओहो दयानन्द महर्षि वर्य ! भारतोद्धारक ! चिरजीवी हो ! कीर्ति पाओ, विजयी बनो, राष्ट्रयोगेश्वर ! अखिल जगत् को परतंत्रता सागर से पार कर दो !

अब तो—

चंचल चन्द्र किरण बरसी हैं,
शिष्टों की परिषद भारी है,
चित्त चमत्कृत हुए सभी के,
भद्रामृत सरिता न्यारी है,
मोदमधुररसंपूर्ण दिशा,
सुवती शोभती अति प्यारी है,
दयानन्द ! हे साधो ! यतिवर !
चन्दन से भी शीतल तेरी है,
कीर्ति कौमुदी धवल पुण्यतम,
भवकी पावन कारिणी,
जय जय हो तेरी देवमहर्षे !
तपोजात कल्याण सारिण ॥४३॥

द्वितीय—सत्य है, सत्य है, तो चले समयसर मध्यान्ह बेला में उस महात्मा के दर्शन कर कृतार्थ होलें।

सभी—अच्छा, अच्छा, चलो चलो।

[सब चले जाते हैं।]

इति पाखन्ड खन्डन नामक चतुर्थ अंक समाप्त



पञ्चमोऽङ्कः

मृत्योर्माऽमृतं गमय ।

प्रथमं दृश्यम्

(स्थानम्–उदयपुरस्य विहारारामसंनिवेशः, समयः प्रातः कालः, केचिद्रक्षकाः । पुनः सचिवेन समं महीपालस्य प्रवेशः)

नायक–रक्षकाः ! यूयं यथास्थानमवधानेन भवन्तु सांप्रतमेव महाराजः श्रीएकलिङ्गस्य शंकरस्य दर्शनं कृत्वाऽत्रैवागमिष्यति सह सचिवेन ।

प्रथमः—ननु कथमद्य प्रातरेव महाराजेन स्वीकृतमेतत् ?

नायकः–श्रूयते, श्रीदयानन्देन समं धर्मचर्चां विधातुम् ।

द्वितीयः–अहो ! आश्चर्यमाश्चर्यम्, अस्ति तावत् किंवदन्ती तेन महात्मना वाराणसीपण्डितमण्डली तमोघटेव भानुना निर्जिता धर्मध्वनि, अस्ति तत्र संशीतिपात्रं मे मनः ।

नायकः—किं दुष्करं परमात्मशरणस्य सत्याग्रहस्य ?

पंचम अंक

मृत्यु से मुझे अमृत में ले चलो

(प्रथम दृश्य)

स्थान—उदयपुर का विहारोद्यान, समयः प्रातःकाल
कुछ रक्षक और मंत्री के साथ महाराणा का प्रवेश)

नायक—अरे रक्षको ! अपने अपने स्थान पर जाकर सावधानी से खड़े हो जाओ ! अभी अभी महाराणा जी भगवान एकलिंग महादेव के दर्शन कर यहीं आ रहे हैं अपने मंत्री के साथ !

एक :—महाराणाजी आज प्रातःकाल यहाँ क्यों आ रहा है ?

नायक—सुनते हैं कि श्री दयानन्द के साथ धर्म चर्चा करने के लिए।

द्वितीय—अहो ! बड़ा आश्चर्य है, सुनने में तो यह भी आया है कि उस महात्मा ने भगवान् सूर्य नारायण के समान ही अंधकार की घनी घटासी काशी की पण्डित मन्डली को छिन्न-भिन्न कर दिया, किन्तु मुझे विश्वास नहीं आ रहा है।

नायक—अरे ! इसमें संशय की क्या बात है ? परमात्मसहाय को क्या कठिन है संसार में ?

तृतीय:—अस्ति कश्चिदकब्बरस्य सेनापतिः; यो दक्षिणां दिशं गत्वा वाराणसीमजयत् ।

नायक:-धिङ् मूढ ! किं ब्रूषे ? स महात्मा दयानन्दः ।

तृतीय:-परं भोः ! शृणु—

न सेना संग्रामक्रमणचणमाश्वीयमथवा
गजा नो नो यानान्युपरचितदीर्घा न च जटा ।
यथा चाणक्येन प्रसभमपदग्धा द्रुपदजा-
स्तथा, मन्ये तेन द्विजकुलबुधाः संप्रति जिताः ॥१॥

प्रथम:—[विहस्य] ननु त्वमपि परशुरामस्य शिष्यः । मूर्खशिरोमणे ! पन्डितानां जये विजयोपकरणस्य सेनागजतुरङ्गमस्य किं प्रयोजनम् ।

तृतीय :—ततः किं वाङ्मात्रेण विजयः ?

नायक :— पाण्डित्येन ।

तृतीय :—हंहो किमेतत्, नूतनं पाण्डित्य शास्त्रम् ?

हलं बलेर्वाऽशनिरुद्धवस्य
भीमस्य वा लाङ्गलपुच्छमेतत् ।
हनूमतश्चक्रमथास्ति किं वा ?
पण्डित्यमायोधनसाधनं किम् ॥२॥

नायक :—मूढालङ्कार ! शास्त्रजन्यं ज्ञानं पाण्डित्यं वदन्ति ।

तृतीय :—एवं तदा शास्त्राणि कस्य कलत्राणि ?

प्रथम :—विन्ध्याचलस्य ! ।

द्वितीय :-[विहस्य] अरे हताश ! अलमलमज्ञातेन, परिच्छेदो हि पाण्डित्य, न जानासि त्वं मृत्पिण्डबुद्धिः ?

तृतीय —कोई होगा अकबर का सेनापति, जो दक्षिण दिशा में जाकर काशीपुरी जीत गया।

नायक—धत् मूर्ख ! क्या बकता है ? वह तो महात्मा दयानन्द जीतने वाला !

तृतीय—किन्तु अजी सुनिये तो—

न सेना थी, घोड़े रथ गज विमानादि करण,
न साथी था कोई, प्रहरण न थे शस्त्र निचय,
जलाये थे जैसे चणक सुनने द्रौपद तथा,
जलाये या जीते विबुधगण सारे ही उसने ॥१॥

प्रथम—[मुस्कुराकर] अरे ! लगता है तूभी परशुराम का शिष्य है, मूर्खराज ! पन्डितों के जीतने के लिये विजयसाधन सेना हाथी घोड़ आयुधों की कहाँ आवश्यकता है ?

तृतीय—तो क्या वाणी मात्र से विजय हो जाती है ?

नायक—पाण्डित्य से !

तृतीय—अरे भई ! यह पाण्डित्य नामका नया अस्त्र है क्या ?

'हल है बलिका, वज्र अस्त्र उद्धवका,
या यह है भीमसेन का, यह लांगल पूछ,
हनुमान का चक्र, और यह तो बोलो,
यह पाण्डित्य अस्त्र साधन है किसका ॥२॥

[सब हंसने लगते हैं]

नायक—मूढ शिरोमणे ! शास्त्रों से उत्पन्न ज्ञान को पाण्डित्य कहते हैं।

तृतीय—तो ये शास्त्र किसकी पत्नी हैं ?

प्रथम—विन्ध्याचल की !

द्वितीय-ओ बुद्धि के वैरी ! रहने दो जिस शास्त्रज्ञान-विज्ञान की चर्चा को, तू क्या जाने कि पण्डिताई क्या बला है ?

—नेपथ्ये—

शनैः शनैरागच्छतु प्रजापालः

नायक :—एष महाराजः सचिवेन सममागतः, गच्छत यूयम्।
[ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टः प्रजानायकः]

महाराज :–सचिवराज ! अद्य भगवतो भूतनाथस्य दर्शनसुखमनुभूयापि न जाने किमर्थं हृदयमुद्वेगतरलतामाश्रयते ?

सचिव :—शिवतातिः शङ्करानुग्रहात्, महाराज ! सततं वृत्तिरियं, प्रजारक्षणजागरूकस्य वसुधापतेः।

एष धर्मः सदा सेव्यः पार्थिवैरुदयार्थिभिः।
सततं हितकामेन प्रजानां पर्युपासनम् ॥३॥

महाराजः–विधीयते याथाकथाचनतया प्रजापुण्योदयेन अपि,नाम प्रसन्नवृत्तयः सर्वाः प्रकृतयः ?

सचिव :–भानुकुलवल्लभ ! सुकृतसंग्रहसमुन्मुखे शासति श्रीमति वसुमती को नाम विपल्लवमपि स्पृशेत् ? भारतवर्षेऽपि गगन इव भानुना क्षत्रियकुलगौरवमावहता समुल्लसत्तेजःसहस्रेण श्रीमता विस्तारितमार्यपुरुषानुरूपं समस्त्व यशः, अद्यापि विद्योतते दिव्यता दानवविद्वेषिणी भारतीयानामितिदुर्दान्तकर्मणा समरानुरागधारिभिः श्रीमत्कुलपूर्वजैः शतशः स्वदेशस्य स्वातन्त्र्यानुभावपुरःसरं स्थापितं गौरवम्। अधुनाऽपि सर्वकल्याणानामुपरिस्थितमपि स्वात्मसंभावनादूरीकृतकदर्यविदेशशासक

(नेपथ्य में)

महाराणाजी शनैः शनैः पधारिये,

नायकः— ये महाराणाजी मंत्री के साथ पधार गये हैं, अच्छा जाओ, तुम सब यहाँ से !

(इतने में मंत्री के साथ महाराणा प्रवेश करते हैं)

महाराणा:- मंत्रिवर्य ! भगवान् भूतेश्वर के दर्शन कर लेने पर भी हृदय उद्वेलीत क्यों हो रहा है ?

मंत्री — कल्याण हो भगवान् शंकर के अनुग्रह से । महाराणाजी ! प्रजारक्षण तत्पर भूमिपालों की सदैव ऐसी ही वृत्ति होती है ।

यही धर्म सदा श्रेष्ठ, उदयेच्छुक भूप को,
निरंतर प्रजा रक्षा, हितकारी विधान से ॥३॥

महाराणा-हाँ, यथाकथंचित् तो प्रजा के पुण्योदय से भी तो प्रजा प्रसन्न रहा करती है न ?

मंत्री — सूर्यकुल कमल दिवाकर ! सुकृत संचयकारी आपके शासनाधिरूढ रहते हुए कोई भी विपदा कैसे आ सकती है आपकी प्रजा के ऊपर ? समस्त भारतवर्ष में भी, गगन में दिवाकर के समान, आपके महान् तेज की रश्मियाँ, असीमित प्रकाश पूंजमय क्षत्रिय गौरव को उजागर करती हैं; आज भी इस धरती का कण कंण आपके बलिदानी अग्रसरों के प्रशस्त यवनविरोधी कथाओं से ओत प्रोत भासमान लग रहा है, स्वराष्ट्र की सुरक्षा के नामपर ! आज के युग में धर्मधुरीण भारतीय राष्ट्र के असंख्य रक्षक आपके अनवद्य वंश के आदर्श पौरुष की गौरव गाथाएँ बड़े श्रद्धाविभोर बनकर श्रवण करते हैं, एवं विदेशी उच्छृंखल अमानवीय

शासनशृङ्खलं त्रैलोक्यमङ्गलप्रदीपं भवन्तं भारतसौभाग्यतिलक कलयन्ति सुकृतिनः ।

महाराज :—तत्रापि शिवङ्करः शङ्करः । सचिवराज ! सांप्रतं कार्यवशान्न मया संभावितं युष्मद्दर्शनं तदद्य विद्यते किमपि नूतनकुतूहलम् ?

सचिव :—नास्ति राज्यव्यवहारे परं बहुप्रकृतयः प्रजाः प्रतिवासरमनुभवन्ति भव्यताम् । संप्रति कश्चित् समस्त तन्त्र स्वतन्त्रः श्रुतिसिद्धान्तशिरोमणिः श्रीदयानन्दः संन्यासी समागतोऽस्मन्नगरे पुराणमतखण्डनेन वैदिकमतस्थापनार्थम् । इति मया नगरक्षकमुखादाकर्णितम् ।

महाराज :—एवम् मयाऽपि श्रुतमस्ति स प्रतिमापूजनमपि तिरस्करोति ।

सचिव :—सत्यं महाराजेन विदितम् ।

महाराज :--ततः कथं न विधीयते प्रतिबन्ध : ?

सचिव :—देव ! न राजशासनमर्हति धर्मः ।

महाराज :-किं नास्ति तत्र प्रभुत्वं राज्यस्य ?

सचिवः—देव ! न धर्मो राज्यतन्त्रः, किंतु राज्यं हि धर्मतन्त्रम् । अथवा प्रतिष्ठितस्य सानुरोधरक्षणमिति प्रस्तुतार्थव्यवस्था स्थेमानं जनयति द्वयोः ।

महाराजः—एवं ननु पुराणधर्मोऽपि स्थिर एवायम् ?

सचिवः—अत्रैव विचारणीयं वचः श्रीदयानन्दस्य । तथा च वाराणसी पण्डिताः पराजितास्तेन !

दुर्गन्त आक्रमण को जिस पराक्रम से आपके वंशजोनें-पूर्वजों ने निरस्त किया, उसका साक्षी प्रत्येक भारतीय है।

महाराणा—सर्वत्र शिवशंकर, शंकर भगवान का ही हाथ है। अभी तो मैं कार्यवश नहीं जान पाया शुभागमन का कारण, तो क्या नवीन कौतुहल है?

मंत्री—राजकाज में तो कोई ऐसी बात नहीं है अन्नदाताजी! परन्तु विभिन्न स्वभाव शील जनता सर्वदा ही सुख अनुभव करती रहती है, इस समय एक दयानन्द सरस्वति नामक सर्व तंत्र स्वतंत्र संन्यासी वैदिक सिद्धान्त मूर्धन्यता संवरण किये अपने नगर में पधारे हैं, वे पुराणमत विध्वंसन में अग्रणी हैं, ऐसा मुझे कोतवाल साबके मुखसे सुनने को मिला है।

महाराणा—मैंने भी सुना है कि वे प्रतिमा पूजन का भी विरोध करते हैं।

मंत्री—महाराज ने ठीक सुना है।

महाराणा—तो रुकावट क्यों नहीं लगायी गयी?

मंत्री—महाराणाजी! धर्म पर शासन प्रतिबन्ध नहीं लगा सकता,

महाराणा—क्या धर्म के ऊपर राज्य का प्रभुत्व नहीं है?

मंत्री—पूजनीय! धर्म राज्यतंत्र नहीं है, किन्तु राज्य ही धर्म-तंत्र है। अथवा प्रतिष्ठित-प्रचारित धर्म का सानुरोध रक्षण भी, प्रस्तुत अर्थव्यवस्था दोनों को स्थिरता प्रदान करने वाली होती है।

महाराणा—इस प्रकार पुराण धर्म भी स्थिर ही है?

मंत्री—इस प्रसंग पर तो स्वामी दयानन्द की बात विचारणीय है। इसी पर तो वाराणसीके विद्वान् पराजित हुए हैं इनसे।

महाराजः-आश्चर्यम्, भवानत्र किं पश्यति ?

सचिवः—भारतमङ्गलम्। देव ! कृतं मया महात्मनस्तस्य दर्शनम्। तथा च निर्णयोऽपि विहितः। प्रजानाथ ! स पुनः सत्यधर्मदेशनाभिर्नूतनं जीवलोकं निश्चलां देशगौरवश्रियं च स्थापयिष्यति। अभ्युदयप्रतीसारं देशस्य तस्य मतम्।

महाराजः—तथापि द्विजद्वेषः समस्त सुकृतं दहति।

सचिवः—देवदेव ! नायं विद्वेषः, किंतु, दिङ्मूढस्य पुनरपि भ्रमनिरसनम्।

परिष्कृतात्मद्युतिदीपिनानां
द्विजन्मनां सूत्रितसंस्कृतीनाम्।
तिरस्कृतिं हन्त विधाय तेषां
कुतः स्वदेशोदयकल्पनाऽपि ॥४॥

महाराजः—एवम्, तथापि यदि न कलहोन्मेषः स्यात्तथा कर्तव्यम्।

सचिवः—यथा देव आज्ञापयति। महाराज ! निवेदयामि ननु ?

महाराजः—ननु विश्रब्धं ब्रूहि।

सचिवः-श्रीमद्भिस्तस्य महात्मनश्चरणदर्शनं विधेयम्।

महाराजः—(विहस्य) सचिवराज ! मम हृदयानुगुणं मन्त्रितम्। अद्यैव मया प्रेषितस्तत्राङ्गरक्षकः। समानीय भगवन्तं तमुद्यानमागमिष्यति।

सचिवः-प्रियं नः प्रियं नः !

महाराणा--आश्चर्य है यह तो ! आप क्या देख रहे हैं ?

मंत्री—देश का सुमंगल, महाराज ! देव ! मैं उस महात्मा के शुभ दर्शन कर चुका हूं, और निश्चय भी ले चुका हूं, भूपते ! वे महात्मा नये सिरे से सत्यधर्मोपदेशों से ये नूतन जीवलोक एवं निश्चल राष्ट्र गौरव लक्ष्मी की स्थापना करेंगे; इनका भला विचार राष्ट्रीय-अभ्युदयोन्मुखीन है।

महराणा–तो भी ब्राह्मण विद्वेष तो सम्पूर्ण पुण्यों को जला देता है मंत्रीजी !

मंत्री—देवाधिदेव ! यह द्विजद्वेष तो नहीं है, किन्तु दिङ्मूढों को फिर से निर्भ्रान्ति करना है—

विना द्विजों की श्रुतिशील ताके,
परिष्कृतात्मद्युति भावना के,
अशक्य है हन्त ! द्विजोच्चता से,
स्वधर्म देशोन्नति दिव्यदीप ।।४।।

महाराणा–अच्छा, तथापि कलह न हो, ऐसी व्यवस्था कीजिये। कीजिये।

मंत्री—जो महाराणाजी की आज्ञा, यदि आदेश हो तो कुछ निवेदन करूं ?

महाराणा—निःसंकोच कहिये।

मंत्री—महाराज श्री ! आपभी करें उनके चरणदर्शन ?

महाराणा—(मुस्कुराकर) मंत्रिराज ! तुमने तो मेरे मन की बात कह दी, मैंने अभी अभी अगरक्षक भेजा है उस महात्मा के चरणों में ! वह ससम्मान स्वामीजी को उद्यान में ले आयेगा।

मंत्री—हमारे हितकी बात हो गयी यह।

सेवकः—(प्रविश्य) जयतु जयतु देवः !

सचिवः—किमस्ति कार्यनिवेदनम् ?

सेवक—तत्र भवान् श्रीदयानन्दः समागतः—

सचिवः—किमत्रैव ?

सेवकः—नहि ! अस्यैव विहारोद्यानस्य नेदिष्ठे प्रदेशे धर्म-व्याख्यानं कुर्वन्नास्ते। मया निवेदितः स "स्वयमेव महाराज आगच्छतिति" प्रतिपादितवान्। श्रुत्वा देवः प्रमाणम्।

[राजा सचिवस्य मुखं पश्यति]

सचिवः—को दोषः संन्यासिनां दर्शने ? आगच्छतु महाराजः। राजपुरुष ! गच्छाग्रतः।

सेवकः—यथाज्ञापयति। इत इतः शनैः शनैरागच्छतु देवः।

(सर्वे परिक्रामन्ति। पटपरिवर्तनम्।
स्वामी दयानंदः कथां कुर्वन्नास्ते प्रजाजनेषु)

गुणेन्दुः—भगवन् ! मन्ये श्रीसज्जनसिंह महराज इत एवा-गमिष्यति।

दयानन्दः—आगच्छतु तरणिकुलशिरोमणिः।

सेवकः—[प्रविश्य] भो भोः ! एष ससचिवो देवः।

[सर्वे उत्तिष्ठन्ति, दयानन्दं विहाय]

सर्वे—जयतु जयतु प्रजापालः।

महाराजः—भगवन् ! यः कोऽपि प्रजापालनकर्मणि नियुक्तः सोऽयं भगवन्तं प्रणमति। [इति नमस्कारं करोति]

सेवक—(प्रवेश करके) देव की जय हो !

मंत्री—क्या निवेदन करना है ?

सेवक—पूजनीय स्वामी दयानन्द पधार गये हैं।

मंत्री—यहीं पर ?

सेवक—नहीं जी, इसी विहारोधान के निकटवर्ती स्थान में वे धर्मोपदेश कर रहे हैं। मैंने उनसे निवेदन किया तो वे बोले : महाराणाजी स्वयं ही पधारे यहाँ ! आगे आप जानें।

[राणाजी मंत्री का मुख देखते हैं]

मंत्री—संन्यासियों के दर्शन में कोई दोष नहीं है। पधारिये महाराणा श्री ! सेवक, आगे आगे चलो।

सेवक—जो आपकी आज्ञा ! इधर इधर, कृपया शनैः शनः पधारिये देव !

सब घूमते हैं, पट परिवर्तन होता है। स्वामी दयानन्द जनसभा में प्रवचन कर रहे हैं)

गुणेन्दु—भगवन् ! लगता है महाराणा सज्जनसिंह इधर ही आ रहे हैं।

दयानन्द—पधारिये ! क्षत्रिय आदित्य कुलावंतस !

सेवक—(प्रविष्ट होकर) अरे, अरे ! महाराजाधिराज महाराणाजी अपने मंत्री के साथ पधारे हैं।

[सब उठ जाते हैं, दयानन्द को छोड़कर]

सब—जय हो जय हो ! प्रजावत्सल अन्नदाताजी की

महाराणा-भगवन् ! जो कोई भी जनसंरक्षण में नियुक्त है वही आप को सादर प्रणाम कर रहा है। [इस प्रकार हाथ जोड़कर प्रणाम करते हैं]

[सर्वे यथास्थानं तिष्ठन्ति]

दयानन्दः–राजन् ! अजस्त्रं राज्यभाजन भूयाः ।

सर्वदा धर्ममर्यादामास्थाय विदुषां प्रजाः ।
सप्तसप्तिसमो राजन् ! पालयन्नेधि नायकः ॥५॥

सचिवः–अनुभूयते भगवदनुग्रहात् ।

दयानन्दः–प्रजावल्लभ ! क्षम्यतां निष्परिग्रहस्य निर्बन्धः ।

महाराजः–अनुगृहीतोऽस्मि दर्शनदानेन ।

सचिवः–किमत्र वक्तव्यं साधूनां ये नियतं पूतात्मानः पदरजोभिः पावयन्ति पृथिवीतलम् ।

महाराजः–भगवन् ! कथं भवन्त संभावयामि ?

दयानन्दः–वैदिकधर्मपालनेन ।

महाराजः–योगीन्द्रवर्याः ! यथावदस्तु सर्वम्, किंतु प्रतिमापूजनखण्डनं मा कुरुध्वम् ।

गुणेन्दुः–[स्वगतम्] यच्चिन्तितं तदेव फलति ।

दयानन्दः–जननाथ ! अहमपि कथं सत्यानुसंधानं त्यजामि ?

सचिवः–किमिदं सत्यम् ?

दयानन्दः–पुराणमतनिरासेन श्रुतिसिद्धांताविष्करणं दयानंदस्य सत्यम् ।

महाराजः–भगवन् ! त्यज्यतामयं दुराग्रहः, कलिकालोऽयं भयावहः । सर्वथा मदीयनगरे राज्यसंमानमनुभूय विधेहि यथागतं धर्मम् ।

दयानन्दः–आः किमिदमुच्यते ? श्वःश्रेयसस्य पन्थानं परित्यज्य राज्यसंमानगह्वरे पतामि ? अथवा सत्यधर्मस्यावहेलनां विदधता भवतैव लज्जितव्यम् । अन्ये हि ते पामराः

[सब अपने अपने स्थान पर बठ जाते हैं]

दयानन्द–राजन् ! अखण्ड शासन करते रहो !

सर्वदा धर्ममर्यादा आर्यत्वशोभिता नृप।
विद्वज्जन प्रशंसाप्ता, तव शासन में बढ़े ।।५।।

मंत्री—प्रभु के अनुग्रह से अनुभव हो रहा है सब सुख।

दयानन्द–प्रजावल्लभ ! अपरिग्रहों के बन्धन तोड़ दीजिये।

महाराणा–अनुगृहीत हूं आपके दिव्यदशनों से यतीश्वर।

मत्री—निज चरणरज से धराके कणकण पवित्र बनाने वाले महात्माओं के विषय में जो कुछ कहें थोड़ा है।

महाराणा–भगवन् ! आपकी कौनसी आज्ञा पालूं ?

दयानन्द–वैदिक धर्म स्वीकार कर लें।

महाराणा–योगेश्वर ! आपका आदेश शिरोधार्य है, किन्तु प्रतिमा पूजन का खण्डन न कीजिये !

गुणेन्दु—(स्वगत) जो सोचा था वही फल रहा है।

दयानन्द–प्रजापालक ! मैं सत्यानुसंधान कैसे त्याग सकता हूं ?

मंत्री—यह सत्य क्या है ?

दयानन्द-पुराणमत खण्डन से वैदिक सिद्धान्त की स्थापना ही दयानन्द का सत्य है।

महाराणा–महर्षे ! यह दुराग्रह छोड़ दीजिये ! यह तो भयंकर कलिकाल है, मेरे नगर में निवासकर राजसम्मान भोगते हुए यथेप्सित धर्म का प्रचार कीजिये !

दयानन्द—राणाजी ! आप यह क्या कह रहे हैं ? निजकल्याण का मार्ग त्यागकर राज्यसम्मान के गर्त में गिर जाऊँ ? क्या आपको सत्यवैदिक धर्म की अवहेलना करने में लज्जा का अनुभव नहीं हो रहा है ? अन्य अधम संन्यासी कहलाने वाले साधुबाबा भले ही सत्यधर्म

संन्यासिव्यञ्जनाः स्वापतेयाध्येषणया धर्मं नानुरुन्धन्ति।

सचिवः-तथापि कलिकालोऽयं धर्ममर्मविघातकः प्रतिबध्नाति श्रेयः।

दयानन्दः-तत्किं वक्तुकामो राजराजः ?

महाराजः-यदि प्रतिमाखण्डनं न विधास्यते तर्हि सकलां तत एकलिङ्गसंपदमनुभवतु प्रसादपरंपराम्।

दयानन्दः-हंहो ! प्रतापकुलमण्डन ! किमिद कापुरुषप्रायं दयानंदस्य सन्निधौ प्रलपसि ?

भूपालभूषण ! जगज्जयराजमान !
व्याटीकमानबहलोज्वलविक्रमस्य।
स्वातन्त्र्यचक्रपरिचङ्क्रमणोचितस्य
हं हो ! प्रतापकुलजस्य न योग्यमेतत् ॥६॥

अथवा विस्मृतं किं प्रतापस्य वीरव्रतम् ?

अगणितगणरात्रस्फीतसंपत्तिसक्तिं
विहितपरमदेशत्राणमुत्सृज्य राज्यम्।
अशनिवहमुदस्यन् स्थापयन्तं प्रताप
स्मर विजयगरिम्णामास्पदं श्रीप्रतापम् ॥७॥

महाराजः-योगिवर्य ! सर्वं जानामि, तथाप्येषोऽयं व्यवसायः प्रजाजनोद्वेगकरः।

दयानन्दः-प्रजा राजानमनुसरति।

महाराजः-सत्यं, तथापि कुलक्रमागतं न मार्गं त्यजन्ति जनाः। अथवा राजशासन भवन्तं प्रतिबध्नाति।

दयानन्दः-(सरोषम्) आः, किमिदं शृणोमि ? म्लेच्छत्रस्तत्रि-

पालनकर पाखण्ड बढ़ावें, किन्तु मैं तो ऐसा नहीं कर सकता राजन् !

मंत्री—ऋषिराज ! यह कलिकाल है, इसमें तो सद्धर्म का विघात होता है और श्रेय तिरस्कृत होता है।

दयानन्द—राजराजेश्वर ! आपके कथन का क्या भाव है ?

महाराणा—यदि मूर्तिपूजा का खण्डन न करें तो समस्त एक लिंग महादेव की सम्पत्ति आपकी है, आप उसका पूर्ण रूप से उपभोग करें।

दयानन्द—अरे हो ! प्रतापकुल कमलकान्त ! का पुरुषों की बातें कैसे कह रहें हैं आप दयानन्द के सामने ?

भूपालभूषण ! यशोनिधि राजमान
उच्चातिउच्च परमोज्वल विक्रमोर्व्वं
स्वातंत्र्यचक्र परिचंक्रमणोचितोच्च-
राणाप्रताप कुलजात ! न यह प्रशस्तम् ॥६॥

अथवा कहीं आप राणाप्रताप का प्रताप भूल तो नहीं गये ?

अगणित सह पीडा, त्याग सम्पत्ति सारी,
विहित परमसेवा राष्ट्र को नौ उबारी,
अशनिसम विरोधी बाह्यशक्ति प्रतारी,
स्मरण कर जयश्री, आजतो अकबरारि ॥७॥

महाराणा—योगिराज ! मैं सब समझता हूँ, तो भी यह बात जनजनकी उद्वेगकारी हो सकती है।

दयानन्द—जनता राजा का अनुगमन करती है।

महाराणा—सत्य है, तो भी तो लोग कुलपरम्परा नहीं छोड़ते। अथवा राज्यशासन से आप बन्ध जाते हैं।

दयानन्द—(रोष प्रकट करते हुए) मैं यह क्या सुन रहा हूं ?

जगदंगारकौक्षेयकस्य श्रीप्रतापस्यापि महिमानमतिक्रामकं दुर्वचनम् ? अथवा लोकभीतिस्त्वां धर्मपथाद् भ्रंशयति ?

यः प्रोल्लङ्घयति स्म वारणघटागण्डस्थलीखण्डन
प्रोच्चण्डध्वनिनाऽप्यतुत्थयदहो व्योमाङ्गणं केसरी ।
तस्य क्रीडितविक्रमस्य च शिशुः कौसीद्यकालाहतो
जीर्यज्जम्बुकभीषिकाभिरभवन्नश्यत्कुलप्रक्रमः ।।८।।

राजन् ! इदमपि धर्मशासनम्, न त्यक्षति दयानन्दः ।

महाराजः–(सक्रोधं) किमयं सत्यः सर्गः ?

दयानन्दः–ओम्, सत्योऽयं सर्गः ।

महाराजः–(सहर्षम्) धन्योऽसि धर्मोद्धारक ! सचिवराज ! किमिदं शृणोमि ?

सचिवः–भारतगौरवं दुंदुभिनादम् ।

महाराजः–भगवन् ! क्षम्यतामस्य निर्बन्धः ।

शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् (इति पादयोः पतति)

दयानन्दः–विजयीभूयाः सज्जनसिंह !

गुणेन्दुः–(सहर्षं) भो भोः सज्जनाः शृणुध्वम् !

अकाण्डवैतण्डिकतुण्डखण्ड-
प्रचण्डपाण्डित्यगरिष्ठदण्डः ।
श्रीमद्दयानन्दयतीश एषो
धर्मस्वराज्य बितनोतु भूयः ।।९।।

महाराजः–भगवन् ! किमनेन दासजनेन करणीयम् ?

दयानन्दः–कुलानुकरणम् । धर्मभ्रष्टस्य परस्परविद्वेषदावानलज्वलितस्य गौरवहतस्य पारतन्त्र्यपरीतस्य भारतस्य

विधर्मी म्लेक्षो से संत्रस्त राष्ट्र की रक्षा करने वाले
राणाप्रताप के महान् त्याग बलिदान को भी नीचा
दिखाने वाला है यह दुर्वचन ! या यों कहूंकि जनापवाद
से आप भयभीत हैं और धर्मपथ से भ्रष्ट हो रहें हैं ?

जो उलंघनशक्त था गजघटा गण्डस्थली खण्ड में
प्रोचण्डध्वनि से प्रकम्पित किया व्योमांगन सिंहने, ।
ऐसे विक्रमशील के ही सुत ! कौ सीधकाकातंने
बूढी जम्बुक घुडकियों से डरके मेरा कुलीययश
राजेन्द्र ! दयानन्द इस धर्मसासन को नहीं छोड़ सकता ।

महाराणा-(सक्रोध) यही है क्या सत्यसर्ग ?

दयानन्द—ओम्, यही है सत्यसर्ग !

महाराणा-(सहर्ष) धन्य है आप धर्मोद्धारक ऋषे ! सचिववर्य
मैं यह क्या सुन रहा हूं ?

मंत्री—भारतीय गौरव का दुन्दुभिनाद !

महाराणा—ऋषिवर्य ! क्षमा कीजिये, राज्य के निबंध के लिये
'शिष्य हूं मैं आपका' (यह कहकर चरणों में गिर पड़ते
हैं)

दयानन्द-महाराणा सज्जनसिंह का विजय हो ।

गुणेन्दु—(सहर्ष) सज्जनों, सज्जनों ! सुनिये, सुनिये ।

अयुक्त वैतण्डिक तुण्डभेद-
प्रचण्ड पाण्डित्य गृहीत दण्ड,
श्रीमद् दयानन्द ऋषिश पूज्य,
पुनः स्वराज्योन्नति को बढावें ।।६।।

महाराणा-भगवन् ! दास को क्या आज्ञा है ?

दयानन्द—वंशानुकरण ! धर्मभ्रष्ट, परस्पर विद्वेष दावानल में
प्रज्वलित, गौरव नाशक, परतंत्रता शृंखलाबद्ध भारत

पुनरुद्धारं विधातुं धर्मावष्टंभेन बद्धपरिकरो भूयाः।

महाराजः–यदादिशति गुरुदेवः। (सचिवम्) अव्याहतप्रचारो भवतु भगवतः सिद्धान्तमार्गः।

सचिवः—यदादिशति राजराजः।

महाराजः—अतः परं किमस्ति करणीयम्?

दयानन्दः–अत्रैव धर्मसंमेलनं भूयात्।

सचिवः—सौभाग्यमस्माकम्।

महाराजः–भगवन्! अनुगृहीतोऽस्मि परमेश्वरेण। सर्वथा शिष्योऽस्मि भवताम्।

दयानन्दः–जीव शरदां शतम्।

—नेपथ्ये—

यः प्रातस्तिमिरावगुण्ठनपटीमुन्मथ्य पद्मश्रियां
लोकालोकमुरीचकार करुणापूर्णः स तिग्मद्युतिः।
संप्रत्यंबरमौलिमण्डनकलां तेजोमहिम्ना वहन्
प्रौढप्रौढरुचिः प्रतापकलितो मध्याह्नमालम्बते ॥१०॥

सचिवः–(श्रुत्वा) राजन्। मध्याह्नसमयः।

दयानन्दः—महाभाग! साधयतु भवान् सांप्रतम्।

महाराजः—यथा गुरोः शासनम्

[सर्वे उत्तिष्ठन्ति, निष्क्रामन्ति च]

द्वितीयं दृश्यम्

[स्थानं योधपुरम्, राजभवनम्, प्रातःसमयः, कतिचन पुरुषाः]

कञ्चुकी–आदिष्टोऽस्मि राजकुलेन नन्नीजाननामधेयाया वाराङ्गनाया नृत्यमहोत्सवार्थं गत्वा सुसंविधां विधेहि प्रासादमण्डप इति। तद् भो भो राजपुरुषाः—

नीरन्ध्रद्युतिदिग्धपीतसरसस्पर्धानुबन्धोधते-
र्मालाभिः कुसुमैः कृताभिरुदयच्छृङ्गाररसभङ्गिभिः।
द्वारे तोरणसत्क्रिया परिचरः कुर्वन्तु लीलोज्वलां
सिक्ते चन्दनवारिणा च परितः प्रासादमुल्लासिते ॥११॥

का पुनरुद्धार करने के लिए आप कटिवद्ध हो जाइये ।

महाराणा-जो गुरुदेव की आज्ञा ! (सचिव से) भगवत्पाद को धर्मप्रचार में निष्कण्टकता रहे ।

मंत्री—जो आपका आदेश ।

महाराणा-और कोई आदेश दीजिये गुरुदेव !

दयानन्द-यहाँ धर्मसम्मेलन होना चाहिये ।

मंत्री—हमारा सौभाग्य होगा ।

महाराणा-भगवन् ! परमेश्वर की बड़ी कृपा है । मैं आपका शिष्य हो चुका हूं अब ।

दयानन्द—त्वं जीव शरदः शतम्-तुम जीओ शत शरद प्रजेश्वर !

—नेपथ्य में—

जो प्रातः घनअन्धकार हर के, पद्मों की शोभा बढा
लोगों में द्युतिदिव्यभव्यभरके भास्वान है भासता
संप्रत्यम्बर मौलिकमण्डनकला को जो दिपाता स्वयम्
प्रौढ़ प्रौढ़ रुचि प्रतापनिलय प्रायात् मध्याह्न में ॥१०॥

दयानन्द—महाराणाजी ! आप पधारिये अब !

महाराणा-जैसी गुरुवर की आज्ञा ।

[सब उठ खड़े होते हैं, और चले जाते हैं]

द्वितीय दृश्य

[स्थान-जोधपुर राजप्रासाद; समय प्रभात, कुछ राजपुरुष]

कंचुकी-मुझे राजकुल से आदेश हुआ है-नन्हीजान नाम की वेश्या के नृत्य महोत्सव के लिये महालय मण्डप में व्यवस्था करवाऊँ । तो अरे अरे, ओ ! सुनते हो :—

सुरभित सुमनविनिर्मितमाला जालसमूहालंकृत द्वारा
भलसित धवल विमल संरम्भा विलसित तोरणहार ।
कण कण कमन सलिल चन्दन से सिंचित धराभिरामा
महल बहुल शोभाविष्कृत कर संभूषित प्रतिधामा ॥११॥

पुरुषः–(प्रविश्य) मा तावत्, प्रतिषिद्धोऽयमुत्सवः।

कञ्चुकी–आः केन ?

पुरुषः–स्वयं महाराजेन।

कञ्चुकी:–कथमेतच्चिन्तितमेकञ्चापतितमन्यत् ?

पुरुषः—श्रीदयानन्दः संन्यासी महाराजाय धर्मबोधं करिष्यति।

कञ्चुकी:–प्रियं नः।

पुरुषः—कथं प्रियं नः ? भो भाग्येनाद्य द्रष्टव्यं नृत्यमासीत् तदपि निरुद्धं महाराजेन।

कञ्चुकी:–ननु सा वाराङ्गना निराशीभूय गमिष्यति।

पुरुषः–अथ किम् ? गतैव सा रोषकषायितवदना स्वगृहम्।

कञ्चुकी:–समीचीनम् ! अथवा सांप्रतं समस्तं राज्यतन्त्रमेव वेश्यापणायमानम्। शृणु—

चेटीव प्रियमण्डली न नृपतेः पृष्ठं परं मुञ्चति
धात्रीव क्षमते प्रधानपरिषद् भ्रूभङ्गसंकोचनम्।
वित्तोलुण्ठनका विटा इव परे पाण्डित्यमाप्ता रुचौ
वारस्त्रीव विराजते किमपरं सर्वैव राज्यस्थितिः ॥१२॥

पुरुषः–अस्तु तदावां गच्छावः।

कञ्चुकी:–एवम्।

[इति निष्क्रान्तौ]

तृतीयं दृश्यम्

[स्थानं योधपुरस्योद्यानवाटः, संध्यासमयः दासी प्रविशति]

पुरुष—(प्रवेश करके) नहीं, नहीं अब यह महोत्सव नहीं होगा।

कंचुकी—क्यों किसने रोका है ?

पुरुष—स्वयं महाराजाने !

कंचुकी-क्यों तो सोचा था और क्यों रोक दिया गया ?

पुरुष—श्रीमद् दयानन्द नामक संन्यासी धर्मोपदेश करने वाले हैं।

कंचुकी—अच्छा हुआ हमारे लिये।

पुरुष—हमारे लिये क्या अच्छा हुआ ? बड़े भाग्य से तो आज सुन्दर नृत्य देखने के लिये मिलने वाला था, उसे भी महाराज ने रोक दिया।

कंचुकी—वह वेश्या तो निराश होकर चली गयी होगी !

पुरुष—और क्या, वह तो क्रोध से तमतमाये मुख लेकर चली गई अपने घर !

कंचुकी-बहुत अच्छा हुआ अथवा साराही राज्यतंत्र वेश्याओं का शौकीन हो गया है। सुनो !

चेटीसी प्रिय मण्डली न नृप की है छोड़ती पीठ को,
संकोची सचिवों की सर्वपरिषद धात्री सभाभी वृथा,
द्रव्यादान परायणाग्र पटुता धारे परे से विट
वारस्त्रीसम हो गयी नृपगति क्या अन्य बातें कहें ॥१२॥

पुरुष—अच्छा, चलो चले अब।

कचुकी—जो इच्छा।

(दोनों चले जाते है)

तृतीय दृश्य

(स्थान जोधपूर प्रासाद का उद्यान समय संध्याकाल दासी आती है)

दासी:—आदिष्टाऽस्मि तावदार्यया, दयानन्दस्य भोजनपाचकमानेतुम्। तत् तावदत्रैव प्रतिपालयामि तस्य निर्गमावसरम्। हन्त! किं नापकृतं महाराजेन स्वामिन्यास्तस्य साधोर्वंशवर्तिना भूत्वा? ततः साऽपि कुपिता भुजगीव तस्य दयानन्दस्य प्राणान् जिहीर्षन्ती, किमपि कूटं करोति। यतः साधारणकुलोद्गताऽपि वामा नावमानं सहते, किमुत या निर्मर्यादं पन्थानमाश्रिता विविधकपटनाटकनाटिका वाराङ्गना? अथ च तया संदिष्ट स ब्राह्मणः सहसा वारवनिताऽभिधानं श्रुत्वा नागमिष्यति। तेनाहमस्य प्रतिवेशिनो गेहमाश्रयामि। त्वं विप्रगृहमिति प्रतिश्रुत्य तं पाचकमानयेति। [अग्रतो दृष्टवा] स एव तस्मादुद्यानपथादागच्छति पाचकः, भवतु सन्निधिं करोमि [गत्वा] महाराज! प्रणमामि भगवन्तम्।

पाचकः–[विलोक्य] कल्याणमस्तु। का त्वम्?

दासी:–अहमस्मि नगरनिवासिन्याः कस्याश्चिद्धतभाग्याया ब्राह्मण्याः परिचारिका।

पाचकः–[स्वगतम्] काचिद्विधवा भविष्यति। ततः किम्?

दासी:—सा प्रतिदिनं व्रतमाचरति विना ब्राह्मणभोजनं न भोक्तव्यमिति। तदस्मिन्दिने न कोऽपि श्रोत्रियः प्रतीक्ष्यः प्राप्तः।

पाचकः:–अथ तत्र भवती अतिथिव्रतमाचरति?

दासी·—अथ किम्? भगवन्! यदि न चेत् कार्यान्तरायः सदक्षिणं साध्यतां तत्।

पाचकः:—[स्वगतम्] सदक्षिणमिति गन्तव्यम् [प्रकाशम्] क्रियद्दूरं सदनं भवत्याः?

दासी—आर्या ने आदेश दिया है मुझे दयानन्द के पाचक को बुला लाने का। तो यही ठहरकर बाट देखूं; जाता हुआ पाचक मिल जाएगा। हाय रे क्या बुरा नहीं किया राजाधिराजने उस साधु के वशीभूत होकर बेचारी हमारी स्वामिनी का? तभी तो स्वामिनी कुपित सर्पिनी बनकर स्वामी के प्राणों को हरने की इच्छा कर रही है, और एतदर्थ कुछ न कुछ क्रूर कार्य करने चली हैं। क्योंकि सामान्य कुल में जन्मी नारी तो अपना अपमान नहीं सह सकती, तो विविध कपट नाटक करने वाली अमर्याद मार्गगामिनी वारांगना की तो बात ही क्या है? वसे तो पाचक वेश्या का नाम सुनकर नहीं आयेगा, इसलिये मैं पाचक के पड़ोसी के घर में जाकर ही बैठूं। ब्राह्मण का नाम सुनकर पाचक आ जायेगा [आगे बढ़कर) उद्यान मार्ग से अरे वही तो आ रहा है पाचक, अच्छा तो, पास में चलूं [पार्श्व में जाकर] महाराज, प्रणाम करती हूं आपको!

पाचक—(देखकर) कल्याण हो तुम्हारा, कौन हो तुम?

दासी-मैं नगरवासिनी किसी अभागिनी ब्राह्मणी की दासी हूं।

पाचक-[स्वगत] कोई विधवा होगी। तो फिर?

दासी—वह प्रतिदिन व्रतोपवास करती रहती है, विना ब्राह्मण को जिमाये नहीं खाती, आज प्रतिक्षा के बाद भी कोई वेदपाठी ब्राह्मण नहीं आया।

पाचक—तो देवीजी अतिथीव्रत का आचरण करती है?

दासी—और क्या? महाराज! यदि कार्य हानि न होती हो तो आप ही आज चलिये, दक्षिणा की प्राप्ति होगी।

पाचक—[स्वगत] दक्षिणा है तो चलना चाहिये [प्रकाश में] कितनी दूर है देवी का घर?

दासी:—ननु समीप एव वर्तते !

पाचक:—एवम्, आगच्छतु भवती ।

[उभौ परिक्रामतः । पटपरिवर्तनम्]

[ततः प्रविशति 'नन्नीजान' वेश्या, सह सख्या]

सखी:—आगच्छतु भवती । तदेतद विविक्तं निकेतन प्रतिवेशिना स्वयमेव कृतम् । निषीदतु भवती, आसनमिदम् ।

नन्नी:—[उपविश्य] अपि सखि ! चिन्तितं फलिष्यति ?

सखी:—कल्पलतयेव त्वया चिन्तितं किं न फलति ? कोऽयं वराक: पाचक: ।

नन्नी:—सखि । असह्यमिदं कष्टम् । तस्य साधोरवसाने मे शान्तिर्भविष्यति ?

सखी:—अथ सोऽपि ज्ञास्यति प्रभवति काचिदिति ।

[नेपथ्ये]

इत इतो महाराज: ।

सखी:—[श्रुत्वा] ननु संपन्नफलमागता मालिका पाचकेन समम्

नन्नी:—एवं त्वयाऽपि किञ्चित्करणीयम् । [कर्णे एवमिव] गच्छ अनेन द्वारेण । [सखी गता]

दासी:—[प्रविश्य] इतो महाराज ! इदमस्माकं गृहम् [नन्नीं विलोक्य] पश्यतु, तिष्ठति व्रतमुपास्यमानाऽऽर्या । [नन्नीं] देवि ! एष ब्राह्मण: सत्कृतः ।

नन्नी:—[उत्थाय] भगवन् ! वन्दे भवन्तम् । मालिके ! आसनं वितर विप्राय । महानुग्रह एष विप्रस्य, तन्मा भूत् तस्य स्वकार्यविघातस्तदिमां पञ्चविंशतिमुद्रापूर्णां सशाटिकां दक्षिणां तस्मै प्रदाय विसर्जयतु तं महाभागम् ।

दासी—अजी समीप ही है।
पाचक—अच्छा, तो चलो।

[दोनों घूम जाते हैं। परिवर्तन होता है]

(नन्ही जान वेश्या अपनी सखी के साथ प्रवेश करती है)

सखी—पधारिये देवी। यह घर एकान्त में है, पडोसी ने स्वय ही कर दिया है, विराजिये आप, यह रहा आसन।
नन्नी—(बैठकर) क्योंरी ! सोचा हुआ कार्य हो जायेगा ?
सखी—कल्पलता के समान, आपका सोचा हुआ क्यों नहीं फलेगा ? इस बेचारे पाचक की क्या बिसात है ?
नन्नी—सखि ! यह कष्ट तो असहनीय हो गया है। उस साधुबाबा के मर जाने पर ही मुझे शान्ति मिलेगी !
सखी—उस बाबा को भी पता चलेगा कि आप भी कोई हैं।

(नेपथ्य में)

सखी—[सुनकर] लगता है की बात बन गयी है पाचक से
नन्नी—तुझे भी तो कुछ करना चाहिये (कान में ऐसे) इस द्वार से चली जा।

(सखी चली गयी)

दासी—[प्रविष्ट होकर] इधर से महाराज ! यह है हमारा घर, [नन्नी को देखकर] देखिये, व्रतोपवास करती हुई आर्या सामने बैठी है। (नन्नी से) देवि ! ये रहे ब्राह्मण देवता, इनका स्वागत सत्कार कीजिये।
नन्नी—(उठकर) भगवन् भूमिदेव ! प्रणाम करती हूं, आपको। मालिके ! पण्डित जी को आसन पर बिठाओ। ब्राह्मण देव की बड़ी भारी कृपा हुई, इनके कार्य में कोई विघ्न नहीं होना चाहिये; अतः इन्हें धोती के साथ में पच्चीस मुद्रा दक्षिणा देकर विदा कर दो।

दासी:—यथादिशति ।

पाचकः–[स्वगतम्] अहो ! महानादरः सूचितः । किं पञ्च-विंशतिमुद्रापूर्णा दक्षिणा ?

दासी:—महाब्राह्मण ! गृहाण भवत्या अल्पामपि समर्चाम् ।

पाचकः–[गृहीत्वा] स्वस्ति भवत्यै, मालिके ! महदौदार्यं भवत्याः ।

दासीः—महाराज ! अलमलं प्रशंसया । चिरसंचितं वित्तं समस्तमेवार्ययाऽतिथिसात् करिष्यते ।

पाचकः–अहो वदान्यता, अथवा दैववशात् संप्राप्य धनानि यः सुकृतानि न समाचरति, किं तस्य तेन पुण्यहीनेन धनेन ?

दैवयोगेन लब्धानि धनानि विविधान्यहो ।
असंभोगेन योगेन वनानीव सतां मतम् ॥१३॥

नन्दो:—मालिके ! कथं चिरायते कलिका ?

दासी:—सा राजभट्टं गृहीत्वा त्वरितमागमिष्यति ।

पाचकः–(स्वगतम्) कथं राजभट्टः ? अवश्यं तेन श्रौतस्मार्त-विधानं संपादनीयमनया (प्रकाशम्) भवति ! अहमपि वेद्मि कर्मकाण्डसरणिं, तदाज्ञापयतु किं करणीयम् ?

दासी:—नास्ति महाराज ! विधानं कर्तव्यान्तरं विद्यते ।

पाचकः–(स्वगतम्) पृच्छामि तदपि यदि मया नाम साधनीयं ततो महानर्थलाभः (प्रकाशम्) भवति ! किं तत् कार्यं विद्यते ?

दासी:—अत्र स्थानपरिग्रहं करोतु ।

दासी—जो आज्ञा आपकी।

पाचक –ओ हो! खूब आदर किया है। पच्चिस मुद्रा की दक्षिणा ?

दासी—महान् भूसूर ! इनकी थोड़ी सी पूजा स्वीकार लें।

पाचक-(लेकर) आपका कल्याण हो ! मालिके ! बड़ी भारी उदार हैं ये देवीजी !

दासी—महाराज ! प्रशंसा न कीजिये ! देविजी इस समस्त चिरसंग्रहीत धनको अतिथियों को दे देने वाली हैं।

पाचक-आहो ! कितनी श्रेष्ठता है यह ! अथवा भाग्यवश उपलब्ध धन पाकर जो पुन्यार्जन नहीं करता, तो उसे उस उपनीत धनों का क्या लाभ हैं ?

देव योग से लब्ध धन, विविध भाँति के जो
असंभोग से, योग से वनसमान सत्पुरुष मत ॥१३॥

नन्नी—मालिके ! कलिका को देर क्यों हो गई ?

दासी—वह राजभट्ट को लेकर शीघ्र आयेगी !

पाचक-(स्वगत) क्यों राजभट्ट को ? लगता है यह राजभट्ट श्रौतस्मार्त के कर्मकाण्ड करायेगा इनके यहाँ। (प्रकाश में) देवि ! मैं भी जानता हूं कर्मकाण्ड तो, आज्ञा दीजिये क्या करना है ?

दासी—महाराज ! कर्मकाण्ड तो कुछ नहीं करवाना, और ही कुछ कार्य हैं।

पाचक-(स्वगत) इस कार्य के बारे में ही पूछ देखूं, स्यात है इसमें कुछ अधिक अर्थ लाभ हो जावे। (प्रकाश में) देवीजी ! वह क्या कार्य है ?

दासी—आप यही पर ठहरिये !

(इति तिष्ठति)

दासी:—इयं नः सखी ब्राह्मणी महता दुःखेन परिभूयमाना।

नन्नी:—(मध्ये) कथं त्वयाऽपि मालिके ! यस्य कस्याग्रतो रुद्यते ?

पाचक:—कथय मालिके ! किमस्ति दुखं ? अहमपि ब्राह्मणो भूत्वा स्वजाति दुख न सहिष्ये।

दासी:—अथ कां वृत्तिमुपजीवति महाभागः ?

पाचक:—अहं नाम राजगुरोर्दयानन्दस्य पाचकोऽस्मि; अथवा नहि, नहि शिष्योऽस्मि।

(उभे हसतः)

नन्नी:—[दीर्घं निःश्वस्य] गच्छतु महाराजः।

पाचक:—[स्वगतम्] कथं दयानन्दनामश्रवणेनानया निःश्वसितम ? किमपि हृद्गतं नाम भवेत् ? [प्रकाशम्] ननु प्रतिपादयत्वार्या।

नेपथ्ये

आगच्छतु राजभट्टः।

पाचक:—आः कोऽय राजभट्टः ?

दासी:—महाराज ! किं कथयामि हतभागा ? तेन दयानन्देन खल्वस्या अबलायाः सर्वस्वमपहृतम ! (इति रोदिति)।

पाचक:—(स्वगतम्) अत्याहितं किमपि, आः सर्वस्वम् ? सर्वस्वं हि पतिरबलायाः, किमानिष्टं समाचरितमस्याः पत्यौ दयानन्देन ? (विचार्य) अथवा श्रूयते तस्य तादृग् चरित्रं यथा बहवः पण्डिताः पराजितास्ताडिताः दण्डिताश्च (प्रकाशम्) ननु विश्रब्धं ब्रूहि। किमस्ति करणीयम् ? आः स्वजातिविपदं न सोढाऽस्मि।

(ठहर जाता है)

दासी—यह हमारी सहेली ब्राह्मणी बहुत दुखी है।

नन्नी—(बीच में ही, मालिके ! तू क्यों रोने लगती है सब किसी के सामने ?

पाचक–कह तो सही मालिके ! क्या दुख है उसको ? मैं भी तो ब्राह्मण होकर स्वजाति दुःख नहीं सह सकता।

दासी—आपकी वृत्ति क्या है, महाराज ?

पाचक–मैं तो राजगुरु दयानन्द स्वामी का पाचक हूं, नही नही मैं तो शिष्य हूं उनका।

(दोनों हंस पड़ती है)

नन्नी –[दीर्घ निःश्वास छोड़कर] पधारिये महाराज।

पाचक–(स्वगत) इसने दयानन्द का नाम सुनकर क्यों निःश्वास छोड़ा ? मन में कुछ तो होना चाहिये। (प्रकाश में) आर्या प्रतिपादन तो करें क्या बात हैं ?

नेपथ्य में

आइये, आइये राजभट्ट !

पाचक–अरे यह राजभट्ट कौन है ?

दासी—क्या कहूं महाराज ! इस दयानन्द ने वेचारी इस अबला का सर्वस्व छीन लिया है। (रोने लग जाती है)

पाचक-(स्वगत) कोई भयंकर घटना घटी है। हें सर्वस्व ? अबलाका सर्वस्व क्या हो सकता है ? क्या बिगाडा है अबलाके पतिका दयानन्द ने ? (विचार करके) सुनाई तो ऐसा ही देता है इनके चरित्र की बात को इन्होंने अनेक पन्डितों को जीत है, ताडित् किया है, दन्डित कराया है। (प्रकाश में) अच्छा तो ठीक ठीक वताओ क्या करना है, मुझसे स्वजाति विपदा नहीं जाती यह !

दासी:-किं प्रतीकारं करिष्यति महानुभावः ?

पाचकः-अवश्यम् ।

दासी:-(सहर्षम्) ततः प्रसन्नाऽऽर्या पूर्वं सहस्त्र मुद्राः, ततः पञ्चसहस्त्र च दास्यति ।

पाचकः-(स्वगतम्) आः किमिदं शृणोमि, मन्ये गतं दारिद्र्यम् ! (प्रकाशम्) किमस्ति ततः ?

दासी:-(कर्णे एवमिव)

पाचकः-(सभयम्) इदं तत्र दुष्करम् ।

नन्नी:—मालिके ! कथ ब्राह्मणं खेदयसि, को नाम जगति शृणोति परस्य विपदं, तत्रापि हताशायाः अबलायाः ? (इति रोदिति)

पाचकः-(स्वगतम्) आः किं करणीयमुचितम् ? एकतः स्वार्थः, परत्र विश्वासघातः, अन्यत्राबलातिरस्कृतिः (प्रकाशम्) भवति ! तथापि बाधते मां पदे पदे विह्वलता—

एतादृशेन सहसा यतिवञ्चकेन
पापं चिनोमि कुमतिर्धनलोभलुब्धः ।
वासोऽपि मे न नरके कृमिकीटपूर्णे
सम्भाव्यते, तदहमत्र परत्र नष्टः ॥१४॥

दासी:—अलमलं संशयितात्परलोकादात्मानमुपेक्षितुं कातरवत्, सर्वथा प्रसीदतु दासवृत्तिमपाकर्तुम् । अस्ति भूयान् वित्तराशिरार्यायाः, या संतुष्टा पुनरपि संतोषयिष्यति भवन्तम् । अथवा कस्तेऽसौ दयानन्दः ?

नन्नी:-मालिके ! कृतं कृतमतिपरिदेवनेन । को नाम करग्रहं

दासी—आप क्या प्रतिकार कर सकते हैं महाराज ?

पाचक-अवश्य करूँगा समुचित प्रतिकार।

दासी—(सहर्ष) तो प्रसन्न आर्या प्रथम एक सहस्त्र रुपये दे और पुनः पांच सहस्त्र रुपये भेंट में देंगी आपको।

पाचक–यह मैं क्या सुन रहा हूं, लगता है निर्धनता तो चली जायेगी ऐसे ! (प्रकाश में) तो क्या कार्य है ?

दासी—(कान में ऐसा है।)

पाचक-(सभय) यह तो कठीन है।

नन्नी—मालिके ! ब्राह्मण देवता को क्यों पीड़ा पहुंचा रही है ? कौन है ऐसा जो दूसरों की विपत्ति सुनता है और तिस पर भी हताश अबला की ? (रोने लगती है)

पाचक–(स्वगत) तो क्या करना ठीक है ? एक ओर स्वार्थ है, दूसरी ओर विश्वासघात है: तिसरी ओर अबलाका तिरस्कार है। (प्रकाश में) देवी ! मुझे यह विह्वलता कदम कदम पर व्यथित बना रही है।

'यतिवर को भी सहसा धोखा देकर क्यों अपकर्म करूं ?
कुमति पाशमें फँसकर धनहित क्यों पापों का चयन करू ?
नरकवास में भी कृमिकीटों भरे मुझे ना स्थान मिलेगा,
अहह: लोभवश मेरे दोनों लोकों का आवास मिटेगा ॥१४॥

दासी—बस रहने दीजिये कायरों के समान स्वयं को संशयित परलोक के विचारों से भ्रान्त बनाने से ! दासत्व वृत्ति को भगा दीजिये, आर्या के पास बहुत कुछ है धनराशि। सन्तुष्ट होने पर तो ये और भी देंगी आपको धन। अथवा यह तो बताइये, यह दयानन्द आपका क्या लगता है ?

नन्नी—मालिके ! अब रहने दे अधिक आक्रोश से, कौन है ऐसा

करोति पीतपरिभ्रष्टस्य सागरे ?, सत्यमिदं परस्य दुःखं शीतलं कलयन्ति जनाः। :किं मेऽत्र जीवितेन ? हन्त ! तेनैव दयानन्देन मदीयं सर्वस्वं जीवित हृतम्। सांप्र दग्धहृदया किं करवाणि धनेन, जनेन, जीवितेन वा। तदनेन यमसहोदरेणैव सर्वदुःखापहारकेण हालाहलेन करिष्यामि करणीयम् !

(इति पटान्तात हलाहलं निःसारयति)

पाचकः—आः ! कथं सत्यं हलाहलम् ? उ ..मा। न पेयं न पेयं विषम् !

[हालाहल गृहीत्वा]

छेत्स्यते येन पापेन चन्दनद्रुममञ्जरी ।
कुठारेण करालोऽयं भुजङ्गस्तेन कर्त्यते ॥१५॥

—नेपथ्ये—

एहि राजभट्ट !

सखी—(प्रविश्य) आर्ये ! राजभट्टः समायातः।

नन्नी—एवम् ! तं राजभट्टम्—

पाचकः—(मध्ये) विसर्जयतु, स्वीकृतं मया तत् कर्म।

नन्नी—एवं क्रियतां मालिके ! यथा महाराज आदिशति। देहि प्रथमं मुद्रासहस्रम् ।

[दासी ददाति]

पाचकः –(गृहीत्वा) भवति ! न भेतव्यम् (स्वगम्)
गत दारिद्र्यं भोजनस्य (प्रकाशम्)
भवतु साधयाम्यहम्

नन्नी—मथाऽविलम्बेन भवेत्तथा करणीयम् ।

पाचकः—ननु प्रातरेव द्रक्ष्यसि।

[मुद्रा गृहीत्वा गतः]

जो जहाज से सागर में पतित डूबते हुए व्यक्ति का हाथ पकड़ता है ? सत्य तो यह है कि अन्यों का दु:ख देखकर लोगों को ठन्डक होती है। मेरे ऐसे जीवित से क्या लाभ है ? हाय रे ! इसी दयानन्द ने तो मेरा सर्वस्व छीन लिया है। जले हृदय से मैं क्या करूँगी धनदौलत का ? आदमियों और जीवन का ? तो यह रामसहोदर हालाहल विषसे ही सारे दु ख द्वंद्व दूर कर लूँगी अपने अब !

(वह वस्त्र से हालाहल निकालती है)

पाचक—ओहो ! सचमुच में यह तो विष हालाहल ही है ? ऊ··· मा मत पीना, मत पीना विष !

[हालाहल विष हाथ में लेकर]

कटेगी पाप से जिससे, चन्दन द्रुम मंजरी,
फिर से भयानक यह, भुजंग उससे कटे ॥१५॥

—नेपथ्य में—

सखी—(प्रवेश करके) आर्ये ! राजभट आ गया है।

नन्नी—अच्छा ! उस राजभट्ट को——

पाचक—(बीच में ही) लौटा दीजिये, मैं करूँगा यह काम।

नन्नी—मालिके ! ऐसा कर जैसा महाराज चाहते हैं। प्रथम एक सहस्त्र रुपये दें दे इन्हें।

(दासी देती है)

पाचक—(लेकर) देवि ! डरना नहीं (स्वगत) भोजन की खट-पट तो मिट गयी। (प्रकाश में) मैं काम साध लूंगा।

नन्नी—जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी करें।

पाचक—अजी कल प्रातःकाल ही देख लेना।

(मुद्राएँ लेकर चला जाता है)

सखी—भवति ! अनाटि नाटकम् ।

दासी—निर्वहणं ननु दुष्करम् ।

नन्नी—ननु सिद्धमेव समीहितम् । पश्य—

कार्याकार्यविवेकशून्यमनसस्तृष्णाभिभूताः परं
येन घ्नन्ति सुतं गुरुं च जनकं स्वभ्रातरं मातरम् ।
नानारण्यसरित्पयोधिविषमग्रावाम्बरव्यापिनो
गाहन्ते विपदं जनाः प्रतिपदं लोभस्य तच्चेष्टितम् ॥१६॥

एहि करणीयान्तरमाचरामः

[इति सर्वाः निष्क्रान्ताः]

[स्थानं योधपुरम् मध्याह्नकालः, श्रीदयानंदकुटीतोऽविदूरे]

काशीनाथः–(प्रविश्य) अहो ! आश्चर्यमाश्चर्यम् । अहो महासत्त्वता तस्य, महात्मनः, सहसा नरेशः स्वाच्छन्द्यं विहाय नम्रीभूय शिष्यायते । अहो किमाश्चर्यम् ?

शान्तारामः–(प्रविश्य) आगतोऽस्मि राजकुलात् (विलोक्य) भोः किं करोति भवान् ?

काशीनाथः–महाभाग ! किं श्रूयते राजकुले नवीनं कुतहलम् ?

शान्तारामः–किमस्ति कुतूहलं धर्ममन्तरेण ? भ्रान्तमिव सकलं राजकुलं दृश्यते ।

काशीनाथः–महाभाग ! कोऽपि मूर्त इव धर्मः समभ्यागतः ।

शान्तारामः–अथ किम ?

सखी—देवि नाटक तो हो गया।

दासी—निर्वाह कठीन है।

नन्नी—अरी इच्छा पूरी हो गयी देख—

कार्याकार्य विवेकशून्य मनसे, लोमाभि भूतान्तर,
मालाबन्धु पितात्मजो गुरुजनों को मारते है मुदा,
नानारण्य नदी पयोधि विषम ग्रामाम्बर व्याप्त जो,
ऐसों को विपद सदैव गहति सर्वत्र लोभाश्रय ॥१५॥

इधर आओ, करने का कार्य अन्दर करेंगे।

(सब चली जाती हैं)

चतुर्थ दृश्य

[स्थान जोधपुर, समय: मध्याह्न; स्वामी दयानन्द के निवास के निकट में]

काशिनाथ—(प्रवेश करके) ओहो ! बड़ा अचरज है। बड़ा अचरज है ! ! उस महात्मा की महान् आत्मियताओ देखो ! जाने क्या जादू कर दिया कि जोधपुराधीश अत्यन्त नम्र हो गये हैं, और सब प्रकार की लम्पटता छोड़कर स्वामीजी के शिष्य बन गये हैं ये ! कितना आश्चर्य हैं ?

शान्ताराम—(प्रविष्ट होकर) मैं राजघराने से आ रहा हूं, (देखकर) अजि ! आप क्या कर रहे हैं ?

काशिनाथ—महाराज ! राजकुल में कोई आश्चर्य की बात सुनायी दे रही है ?

शान्ताराम—धर्म की बात के अतिरिक्त और क्या सुनायी दे सकता है ? समस्त राजकुटुम्ब भ्रान्त सा लग रहा है।

काशिनाथ—क्या धर्म साकार होकर आ गया है ?

शान्ताराम—और क्या !

गुणेन्दुः—(प्रविश्य) अहो ब्रह्मचर्यं हि प्रथमवलम्बनं कल्याणस्य, न विस्मयाय तेजस्विनां महासत्त्वता। हन्त, धर्मप्राणस्य भारतस्य परित्राणाय मन्येऽभिनव इव कोऽपि धर्मातिशयः साक्षादाविर्भूय भूतसंघातं पाखण्डतमसः परिपाति संप्रति। भारतोदयकरः श्रीवेदसिंहध्वनिः संप्रति सर्वत्र श्रूयते।

शैवं हन्त शिवायितं, विगलितं तुच्छं मतं वैष्णवं
शाक्तं संकुचितं, गत जिनमतं, जंबालजालाहितम्।
ख्रैष्टीयं च चलायितं प्रशमितं मोहम्मदीयं यतो,
जातः संप्रति भारतोदयकरः श्रीवेदसिंहध्वनिः ॥१७॥

काशीनाथः—ब्रह्मचारिन्! जाने, भवान् तस्य चरणचञ्चरीक इति।

गुणेन्दु—ओम्, अहं त भगवन्तं दयानन्दमुपासे।

शान्तारामः—महाराज! अहो महिमा तस्य योगिनः।

गुणेन्दुः—एवम्—

आशैलेन्द्रशिखालयाद् दलयताऽलीकाल्दिन्तावल-
श्रेणीकुम्भघटामटाट्यत जटाघातस्फुटत्कर्पटम्।
स्वाहंकारकरालमोजसि महासत्त्वेन दीप्ताशयं
लोकेऽलङ्करणं यशः शवलितं सिंहेन वा योगिवा ॥१८॥

काशीनाथः—अतः परं किं हृदयसंमतं भगवतो दयानन्दस्य?

गुणेन्दु—(प्रवेश करके) अहो ! ब्रह्मचर्य ही कल्याण का प्रथम सोपान है, तेजस्वियों की महासत्वत्ता विस्मय के लिए नहीं होती। आनन्द की बात है; धर्म प्राण भारत की रक्षा करने के लिये कोई महापुरुष नवीन रूप में आविर्भूत हुआ है; और राष्ट्र में अभिव्याप्त गाढान्धकारको मिटा रहा हैं। भारतोदय कारिणी वेदसिंह ध्वनि, दशो दिशा में प्रतिध्वनित होती हुई सुनाई पड़ रही है—शैवों का भी मत प्रसार यह शान्त हो गया और वैष्णवों का भी मत आक्रान्त हो गया।

शाक्तवाद का संकोचन, जैनवाद का बौद्धवाद का
वान्त हो गया,
मुसलमान, ख्रीष्टों का भी मजहब दीप शान्त हो गया,
सम्प्रति वेदादित्य ज्योतिका प्रखर प्रकाशन कान्त हो
गया ॥१७॥

काशिनाथ—ब्रह्मचारीजी ! लगता है आप उनके चरण सेवक हैं ?

गुणेन्दु—ओम्, मैं महर्षि दयानन्द का पदपद्म सेवक हूं ?

शान्ताराम—महाराज ! उन महान् योगिराज की महिमा तो बताइये।

गुणेन्दु—अच्छा, तो सुनिये—

वो योगी अथवा मृगेन्द्र अपनी तेजास्विता से अहो !
आ शैलां बुधि राष्ट्र में निजपयश ख्याति प्रचारार्थवान् !
ये हाथी मत सम्प्रदाय सुनके ही गर्जना नाद को,
चारों ओर भगे हैं। प्राणपण से रक्षार्थ स्वीयास्वका ॥१८॥

काशिनाथ—इसके अतिरिक्त भगवान दयानन्द को क्या अभीष्ट है ?

गुणेन्दु :-ननु व्यक्तमेवं भारतोदय इति—

विद्वांसः श्रुतिबोधबन्धुरधियः सत्योन्मुखाः श्रोत्रिया
भूपालाः प्रजया जयन्तु विहितस्वातन्त्र्यशिक्षोदयाः।
ब्रह्मक्षत्रविशां परोपकरणं शूद्रैः समेषां समं
भूयाद् भारतवर्षगौरवयशःसजीवनं जीवनम् ॥१९॥

नेपथ्ये

भो भोः गुणेन्दुप्रभृतयः श्रीदयानन्दचरणानुजीविनः! धावत धावत, योऽसौ भोजनपाचकः स भगवते स्वामिदयानन्दाय विषं दत्वा पलायितः।

[गुणेन्दुर्मूर्च्छति]

उभौ-समाश्वसिहि, समाश्वसिहि महाभाग!

गुणेन्दुः—(उत्थाय) आः कोऽयमकाण्डे वज्राघातः? आः पाप! पाचकाधम! किमिदमाचरितम्?

काशिनाथः—महाभाग! संभावयतु शीघ्रं गत्वा भगवन्तम्।

गुणेन्दुः—एवम्, आः पाचकहतक! दुष्टभुजङ्ग! नराधम जगन्नाथ![1]

(इति गच्छति)

शांतारामः—(आकाशे) कोऽयमुत्पातः?

क्षारं निपीय सलिलं पदवीं प्रपन्ना-
स्त्वं जीवनं सकलजीवकृते दधानाः।
किन्तु प्रचण्डपवमानपरम्पराभि-
र्मेघा व्रजन्ति निधनं क्वचिदन्तराले ॥२०॥

अहमपि तत्रैव गच्छामि। आः पाप! पाचक!

[इति निष्क्रान्ताः सर्वे]

पंचम दृश्यम्

[स्थानं स्वामिनो निवासः, सर्वे नरेशसहिताः शिष्याः, गुणेन्दुः, स्वामी च]

---

१ घेड इति केचिद्।

गुणेन्दु—'भारतोदय' की भावना तो व्यक्त ही है—

विद्वान हो श्रुति बोधशील मति के, सत्योन्मुख श्रोत्रिय,
राजा हों, जनताहितार्थ कृतिक, स्वातंत्र्य शिक्षापर,
विप्र क्षत्रिय, वैश्य का हित बढ़े शूद्रान्त्यजों का सह;
होवे भारतवर्ष गौरव यशः संजीवनी जीवनी ॥१९॥

—नेपथ्य में—

अरे, ओ गुणेन्दु आदि ब्राह्मचारियों । स्वामी दयानन्द के शिष्यों, दौड़ो, दौड़ो, वह जो पाचक था वह महर्षि दयानन्द को विष खिलाकर भाग गया है ।

[गुणेन्द्र मूर्च्छित हो जाता है]

दोनों—थोड़ा होश में तो आजावो महाराज !

गुर्णेन्दु—(उठकर) यह अयुक्त वेला में कैसा वज्रपात हो गया है ? ओ नीचातिनीच पापी पाचक / तूने यह क्या कर दिया है ?

काशिनाथ—महाभाग ! शीघ्र जाकर स्वामीजी को संभालो।

गुर्णेन्दु—अच्छा, अच्छा, ओ पापी पाचक ! दुष्ट सर्प ! नराधम जगन्नापि ! (चला जाता है)

शान्ताराम—(आक्रोश में) यह कैसा उत्पात हो रहा है ?

क्षाराम्बु पान करके बनके पयोद
अन्यों के हेतु निजजीवन धारते ये,
किन्तु प्रचण्ड पवमान परम्परा से,
हा । मेघ भी मर रहे कुछ दूर जाके ॥२०॥

(सब चले जाते हैं)

पंचम दृश्य

स्थानः स्वामी दयानन्द की कुटिया, जोधपुर नरेश सहित अनेक शिष्य गुणेन्दु एवं स्वयं स्वामी दयानन्द । समय–मध्यान्ह-कालः जोधपुर नरेश भगवन् ! स्वास्थ्य कैसा है अब ?

योधपुरनरेश—भगवन् ! अपि स्वास्थ्यं संप्रति ?

गुणेन्दुः—नरेश ! निःसारितं भगवता योगमार्गेण विषम् ।

सचिवः—तथापि चिकित्सकमतं प्रशस्यते ।

दयानन्दः—न प्रयोजनं जाने ।

नरेशः—सचिवराज ! क्व सः पाचको जगन्नाथश्चाण्डालः ?

सचिवः—प्रेषितस्तं पलायितं धर्तुं गुल्मनायकः ।

[ततः प्रविशति गुल्मनायकः पाचकं गृहीत्वा]

गुल्मनायकः—जयतु महाराजः ! एष पाचको जगन्नाथः ।

[गुणेन्दुः सरोषमुत्थाय तं गले गृहीत्वा ताडयति]

दयानन्दः—गुणेन्दो ! कोऽयं प्रकारः ?

गुणेन्दुः—पापस्य प्रतीकारः ।

दयानन्दः—मुञ्चतु भवान् त, ब्राह्मणोऽसौ ।

सचिवः—जात्या, किन्तु कर्मणा सांप्रतं चाण्डालः !

नरेशः—रक्षक ! गच्छ शूलमारोप्यतामयम् ।

दयानन्दः—नरेश ! मैवं ! पाचक ! गच्छ गच्छ ।

नरेशः—भगवन् । किमिदं विधीयते ?

दयानन्दः—दयानन्दसदृशमेतत् कर्म । राजन् ! न चन्दनात् हालाहलं प्रादुर्भवतु ।

नरेशः—तत्कि विचारितम् ?

दयानन्दः—अस्य मोक्षः !

[सर्व चकिता भवन्ति]

सचिवः—तदा सा वारवनिता राज्यदण्डपात्रं भवतु ।

दयानन्दः—नहि साऽपि मा दण्डपात्रं भवतु ।

गुणेन्दु—नरेश्वर ! स्वामीजी ने योगक्रिया से विष तो निकाल दिया है।

मंत्री—तोभी चिकित्सक का विचार जान लेना चाहिये।

दयानन्द-जिससे क्या प्रयोजन है ?

नरेश —सचिवराज ! वह चाण्डाल पाचक जगन्नाथ कहाँ है ?

मंत्री—राजाधिराज ! उसे पकड़ने के लिये जमादार को भेज दिया गया है।

[तभी जमादार पाचक को पकड़कर लाता है।]

जमादार—महाराज की जय हो ! लीजिये यह रहा पाचक जगन्नाथ !

[गुणेन्दु क्रोध में आता है और गले से पकड़कर पाचक को पीटता है]

दयानन्द—गुणेन्दु ! यह कौनसा ढंग है ?

गुणेन्दु—पाप का प्रतिकार।

दयानन्द-छोड़ दो इसे, ब्राह्मण है यह।

मंत्री—जन्म से, कर्म से तो चाण्डाल है यह।

नरेश-रक्षक ! ले जाओ इसे फाँसी पर चढ़ा दो।

दयानन्द-जनाधिप ! ऐसा मत कीजिये, पाचक ! जा, चला जा यहाँ से !

नरेश —भगवन् ! यह क्या कर रहे हैं आप ?

दयानन्द—नरेश ! दयानन्द के योग्य तो यही कार्य है। चन्दन से हलाहल तो उत्पन्न नहीं होता।

नरेश - क्या आदेश है आपका !

दयानन्द-छोड़ दीजिये इसे। [सब चकीत हो जाते हैं]

मंत्री—तब तो वेश्या को दन्डित करना होगा !

दयानन्द-उसको भी दन्ड न दीजिये।

नरेशः–भगवन् ! विधेयोऽस्मि, भवतः, तथापि न मन्ये भवद्वचः।
दयानन्दः–राजन् ! अन्योऽयं राजमार्गाद् धर्ममार्गः ।
सचिवः—ततः—
दयानन्दः—क्षम्यतामुभयोरपराधः ।
नरेशः –(पाचकसे) पापिष्ठ ! पश्य, पश्य ।
पाचकः—(चरणे पतित्वा) महाराज ! क्षम्यताम् ।
दयानन्दः—जगन्नाथ ! गृहाणेदं धनं, यथेच्छं व्रज । मा कदापि पुनः करणीयमीदृशं कर्म (रक्षकं) मुञ्च पाचकम् (मुञ्चति । पाचको धनं गृहीत्वा व्रजति)
नरेशः—(जनान्तिकं) सचिव ! पश्य पश्य भगवतो मुखं, जाने करुणापीयूषं वर्षति, अथवा सूर्यशततेजोभासितम् ।
सचिवः—सोऽयं योगप्रभावः ।
दयानन्दः—नरेश ! सचिवराज ! सांप्रतं राज्यकार्याणि साधयन्तु भवन्तः ।
सचिवः—भगवन् ! एतदत्याहितं विलोक्य न मे हस्तपादं प्रसरति साध्येषु ।
दयानन्दः–स्वभावोऽयं करुणावताम् । गच्छन्तु भवन्तः ।
(सर्वे प्रणामादनन्तरं गच्छन्ति)
दयानन्द –एहि विश्रमाय वत्स !

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

(षष्ठं दृश्यम्)

[स्थान अजमेरनगरम् । समयः दीपोत्सवस्य सन्ध्यावसरः; सर्वे शिष्याः स्वामी दयानन्दश्च)

गुणेन्दुः—भगवन्, महर्षे ! अपि नाम सह्या वेदना ?
दयानन्दः–वत्स ! वेदनाबहुलं शरीरं, तत्र नास्ति ममाभिनिवेशः तथा च गुरुदत्तरामानदादिभिः सांप्रतं यथाशक्यं पुनरपि समुपचारो विधीयते ।

नरेश—भगवन् ! आपका शिष्य हूं, किन्तु इस विषय में आप की बात मान्य नहीं हो सकती।

दयानन्द-यह धर्ममार्ग है, राजमार्ग के अतिरिक्त !

मंत्री—तो पुनः—

दयानन्द–दोनों का अपराध क्षमा कर दीजिये।

नरेश –(पाचक को) अधमातिअधम ! देख, देख,

पाचक–(चरणों में गिरकर) अन्नदाता, क्षमा कर दीजिये।

दयानन्द–जगन्नाथ ! ले लो यह धनराशि, जहाँ चाहो चले जाओ, आगे पुनः ऐसा दुष्कर्म मत करना। (रक्षक से) छोड़ दो जिस पाचक को।

रक्षक पाचक को छोड़ देता है। पाचक धन लेकर चल देता है।

नरेश(मंत्री के निकट) मंत्रीवर्य ! देखो देखो गुरुवर का मुख-मण्डल; करुणामृत की वर्षा हो रही है जिससे अथवा शतसहस्त्र सूर्यों की तेजस्विता प्रकट हो रही है।

मंत्री—नृपते ! योग का प्रभाव है।

दयानन्द-भूपते ! सचिवराज ! अब आप लोग राज्यकार्य करें।

मंत्री—यह देखकर मेरे हाथ पैर किसी कार्य में नहीं चल रहे।

दयानन्द–करुणा हृदयों का ऐसा ही स्वभाव होता है। जाइये आप सब। वत्स विश्वनाथ, इधर आओ !

[सब चले जाते हैं]

षष्ठ दृश्य

[स्थान : अजमेर नगर, दीपमालाका दिन-समय; सायंकाल स्वामी दयानन्द और सब शिष्य तथा अनुयायी]

गुणेन्दु—भगवन् ! महर्षे ! बड़ी असह्य वेदना हो रही है ?

दयानन्द–वत्स ! शरीर तो वेदना से भरा है, इस शरीर में मुझे कोई आकर्षण नहीं रहा है, तो भी गुरुदत्त और रामानन्दादि बहुत उपचार कर रहे हैं।

गुरुदत्तः—महर्षे ! न तादृशं मदीयभाग्यम्, संकटग्रस्तं तत्र-भवन्त विलोक्य द्रवतीव सहस्रधा मे हृदयम् ।

दयानन्दः—वत्स ! न शोचनीयम् । निसर्गक्रमोऽयं प्राणभृताम् ।

सत्यं ज्ञानमनन्तमाक्षिविमलं ब्रह्मास्ति तत्त्वं पर
जीवः कर्मवशस्तदीयकरुणापीयूषलोषाकुलः ।
संसारे घटियन्त्रवत् प्रचलिते भोक्ता फलानां कृती
मोक्षानन्दभवभ्रमादुपगतादायाति संयाति च ।।२१।।

अयं निःशेषावसानमयः कालक्रमः ।

गुरुदत्तः—भगवन् ! अस्ति नाम परमेश्वरः ?

दयानन्दः—वत्स ! ओमस्त्येव । [इति योगमहिमानं दर्शयति]

गुरुदत्तः—(चक्षुरुन्मील्य, स्वगतं) आः किमिदं ज्योतिःस्पृष्टमिव मदीयं चक्षुः ! अथवा दीपकोत्सवप्रज्वालिताभिर्दीपिका-भिरावृतम् ।

दयानन्दः—वत्स गुरुदत्त ! वत्स रामानंद ! आर्यसमाजस्य रहस्यसूत्रस्य निक्षेपो भवत्सु ननु वर्तते । श्रीयजुर्वेदभाष्यं, ऋग्वेदार्यभाष्यविवरणं, शब्दाशास्त्रव्याख्यानं, सत्यार्थ-प्रकाशश्च यथान्यायं राष्ट्रभाषायां विशदीकर्तव्यानि ।

रामानन्दः—यथा गुरोरनुशासनम्, अयमेव पन्थाः श्रेयसे ।

दयानन्दः—एवम्, जानासि वत्स !

वेदो नित्यमधीयतां तदुदितः सर्वेश आराध्यतां
निःश्रेयः समुपास्यतां तदितरत्पथः परित्यज्यताम् ।
सत्यं धर्मरहस्यमार्यवरतस्तत्वं पर श्रूयतां
सत्यप्रेमतपःपरोपकृतिभिः सर्वैः सुखं स्थीयताम् ।।२२।।

गुरुदत्तः—[स्वगतम्] कथमन्यथा मनश्चैतन्यमनुभवति ?

गुरुदत्त–महर्षे ! ऐसा सौभाग्य कहाँ है। आपको पीडापीडित देखकरमेरा हृदय तो सहस्त्रों खन्डों में खन्डित हो चुका है।

दयानन्द–पुत्र ! इसकी चिन्ता मत करो। प्राणियों का यह स्वभाविक क्रम है जन्म एव मरण–

सत्यज्ञान अनन्त आदि विमल ब्रह्मादितत्व प्रभु,
जीवात्मा निजकर्म बन्धनगत प्राप्ता सुखों का तथा,
दुखों का घटियंत्र तुल्य भव में, भोक्ता फलों का कृति
मोक्षानन्द भवभ्रमों से रहित याता प्रयाता फली ॥२१।

यह नि:शेष विनाशशील कालक्रम है।

गुरुदत्त–गुरुदेव ! क्या वस्तुतः भगवान है ?

दयानन्द–ओम्, है तो गुरुदत्त ! [योगमहिमा दिखाते हैं]

गुरुदत्त–(आँखें खोलकर, मनही मन में) अरे ! ज्योति स्पृष्ट से, दिये मेरे नयन में कैसे लग रहे हैं। कही दीपमाला भी दीपराजियों का आलोक तो नहीं हैं यह मेरे लोचनों में समाया हुआ। श्री यजुर्वेदभाष्य, श्री ऋग्वेदाचार्य भाष्य विवरण, शब्दशास्त्र व्याख्यान, एव सत्यार्थ प्रकाशादि ग्रन्थ आर्यभाषा में प्रकाशित कर देना।

रामानन्द–जैसी गुरुदेव की आज्ञा यही कल्याण का पथ है।

दयानन्द–तो वत्स ! यह तुम्हें ज्ञात है ?

वेदों का पठनादि नित्य करना, वेदोक्त ईशार्चना
मुक्तिद्वार गहो, तजो तदितर प्रेयः सदा सज्जनो।
तथ्या कर्षण कीजिये सुकृतमत है, तत्व ये मोक्षद
सत्य प्रेम तपः परोपकरणी, से सौख्य पावें सभी ॥२२॥

गुरुदत्त–(स्वगत) मन में अन्य चैतन्य की अनुभूति क्यों हो रही है ?

रामानन्द.—भगवन् ! कथं वयं ते भूयः प्रियं करवाम ?

दयानन्दः—किमस्त्यधिकं सर्वदाऽऽशास्यते—

वेदा भेदमषीमलीमसतमप्रत्यर्थिपाखण्डिता
खण्डोदण्डसमुज्ज्वला द्विजवरैरायान्तु दिव्यक्रमम् ।
पृथ्वीशाः प्रजया भवन्तु कृतिनो देशोदये दीक्षिता
भूयाद् भारतधर्मवीरविजयः सौभाग्यसंभूतये ।।२३।।

तथा च—

विद्या तेजो वचः शौर्यं समुत्साहयशस्विनः ।
भवन्तु क्षेमसंसर्गात् भारतीया मनस्विनः ।।२४।।

सर्वः—भवदनुग्रहात् सर्वं भविष्यति ।

दयानन्दः—गुणेन्दो ! ज्ञायतां का वेला ?

गुणेन्दुः—[दृष्टवा आगत्य] महर्षे ! अस्ताभिलाषी भगवान् भास्करः ।

दयानन्दः—एवम् । [ध्यानं कृत्वा सानन्दम्] जगत्पते ! साधु-लीला कृता भवता ! !

[सर्वे चकिता भवन्ति]

दयानन्दः—गुरुदत्त ! ननु विदितं परमात्मरहस्यम् ?

गुरुदत्तः—नहि, भगवन् !

दयानन्दः—ततः पश्यन्तु भवन्तो भगवतः पावनं महिमानम् । [योगमहिमानं दर्शयति । सहसा सूर्यमण्डलावृतं भवति वदनं, तन्मध्ये महर्षिमुखात् श्रूयते सर्वैः]

ओ३म् भूर्भुवः स्वः ।

'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ।।
यत्र ब्रह्मविदो यांति दीक्षया तपसा सह ।
ब्रह्मा मा तत्र नयतु ब्रह्मा ब्रह्म दधातु मे' ।।

रामानन्द—भगवन् ! हम आपके हितार्थ क्या करें ?

दयानन्द इससे अधिक क्या होगा कि हम सर्वदा आशा करते रहें—

विद्वान ब्राह्मण नित्यसत्यनिरत श्रोताध्वयात्री रहे
वेदोद्धार विधान भव्य नव हो पाखण्डखण्डोद्यत।
राजा भी जनता सुखार्थ सतत राष्ट्रोदयेच्छा धरे,
होवें भारतवर्ष धर्मशर्म भरित प्रज्ञान विज्ञान से ।।२३।।
और भी——विद्या आयु प्रतापोजसमुत्साह यशस्विता,
भारतीय प्रजाओं में मद्रभावोदार्यता ।

सब लोग—आपके आशीर्वाद से सब हो जायेगा ।

दयानन्द—गुणेन्दु, क्या समय हुआ है ?

गुणेन्दु—(देखकर लौट आया) महर्षे ! भगवान भुवन भास्कर अस्ताचलगामी हो रहा है ।

दयानन्द—अच्छा, [ध्यानावस्थित होकर सानन्द) विश्वेश्वर ! जगदीश्वर । अच्छी लीला दिखाई आपने !

[सब चकीत होते हैं]

दयानन्द—पता चला परमात्मा के रहस्य का ?

गुरुदत्त—नहीं महाराज ।

दयानन्द—तो देख लो उस परमेश्वर की महिमा को, (योग महिमा दिखाते हैं। सहसा सूर्यमण्डल सी आकृति उभरती है, स्वामीजी के देदीप्यमान मुख पर। सब महर्षि के मुख से सुनते हैं)

ओ३म भूर्भुवः स्वः ।
परित्राणाय साधूनां विनाशायाच दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय, सम्भवामि युगे युगे ।।
यत्र ब्रह्मविदोयान्ति दीक्षया तपसासह ।
ब्रह्मा मा तत्र नयतु ब्रह्मा ब्रह्मद्धातु में ।।

ईश्वर ! तेरी इच्छा पूर्ण हो !

ओ३म्, ओ३म् ओ३म् !

सर्वे—आश्चर्यमाश्चर्यम् । जय परमात्मने ! जय जय महर्ष, दयानन्द ! ! जय ! जय जय ! !

अग्ने नय सुपथा—ओ३म् क्रतो स्मर !

गुरुदत्त—आः किमिदं पश्यामि ? अथवा परमात्मदर्शनम् ? जय महर्षे ! जय, जय वेदोद्धारक ! ! जय ! ! !

[सर्वे साञ्जलयो भवन्ति]

गुरुदत्तः—भो भो आर्यपुरुषाः ! शृणुत—

अङ्कुरितः कलिकल्मषहारिणि कुमारभट्टे यः ।
पल्लवितः श्रीशङ्करहृदये सदये समन्ततः पुण्यः ।।२५।।

यिरजानन्दमहामुनिसंविदि पुष्पितः परं प्रकाशेन ।
सोऽयं श्रुतिसुरविटपी फलितः करुणाकरे दयानन्दे ।।२६।।

जय परमपावन, भूतभावन, सच्चिदानन्द !
विश्वनायक ! जय, जय महर्षे ! दयानन्द ! जय ! !

[तेजोमण्डलमधिकं चकास्ति दिव्यमन्तर्जपः]

ओ३म् भूर्भुवः स्वः
तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् ।।

[सर्वे चमत्कारं पश्यन्ति । पटाक्षेपः]

दयानन्दयशोगङ्गा पुनातु भुवनत्रयम् ।
इति मृत्युञ्जयो नाम पञ्चमोऽङ्कः समाप्तः ।।

ईश्वर ! तेरी इच्छा पूर्ण हो !

ओ३म् ! ओ३म् !! ओ३म् !!!

सब लोग-आश्चर्य, अश्चार्य, भगवान की जय हो, महर्षि की जय हो, विजय हो ! दयानन्द की जय हो ! जय हो !! जय हो !!!

गुरुदत्त—अरे मैं यह सब क्या देख रहा हूं ? क्या सही तो प्रभु का दर्शन नहीं है ? जय महर्षे ! जय वेदोद्धारक !!! जय !!!

[सबके हाथ जुड़ जाते हैं]

गुरुदत्त—सुनिये, सुनिये एकत्र हुए आर्यो !—

जो पुण्य अंकुरित हुआ कुमारिल में कलि मलनाशी,
हुआ पल्लवित शँकर के सुहृदय हृदय पात्र में भासी,
विरजानन्द दन्डी की वाणोने पुष्पित किया जिसे था,
भव्य ज्योति से वही वेद तरु दयानन्द में फलित हुआ था,
जय हो परमपुनीत जग पावन, सच्चिदानन्द ! हे जय हो,
विश्वनाथ हे ! जय जय ऋषिवर ! दयानन्द ! तेरी जय हो,

[मुखमन्डल से तेज जलने लगता है, अन्तर्जाप हो रहा है ऋषिका]

ओ३म् भूर्भुवःस्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि। धियो योनः प्रचोदयात्।

[सब चमत्कार का दर्शन करते हैं। पटाक्षेप]

'दयानन्द यशोगाथा, हरे कल्मष विश्व का,
यह मृत्युंजय नामक पंचम-अंक समाप्त हुआ।

इति महर्षिदयानंदस्वामिनां शिष्यपंडितभीमसेनशर्मणामन्ते-
वासिनां वेदशास्त्रसंपन्नानां गुरुवर बालकृष्णशर्मणां
शिष्याणां गुर्जरराष्ट्रललामभूतानां दर्शनसार्व-
भौमानां मोहमयीगुरुकुलाचार्यपादानां
श्रीमत्पंडितमायाशङ्करशर्मणां कृपाभा-
जनशिष्यवरेण प्रतिष्ठितस्नातक-
सत्यव्रतेन विरचितं पावनं
महर्षिचरितामृत नाम
नाटकं पूर्तिमगात् ।

—०—

"ओमिति स्फुरदुरस्यनाहतं, गर्भगुम्फितसमस्तवाङ्मयम् ।
दन्ध्वनीति हृदि यत्परं पदं तत्सदक्षरमुपास्महे महः ॥"

तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति
नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥ यजुर्वेदः



महर्षि दयानन्द स्वामी के शिष्य पंडित भीमसेन शर्मा के अंतेवासी, वेद वेदांग सम्पन्न, गुरुवर्य बाळकृष्ण शर्मा के शिष्य, गुर्जर राज्य के ललामभूत, दर्शन सार्वभौम, मुम्बईस्थ गुरुकुल के आचार्यवर्य श्री पंडित मायाशंकर शर्मा के कृपापात्र शिष्यरत्न प्रतिष्ठित स्नातक सत्यव्रत लिखित; एवं गुरुकुल के भू. पू. आचार्य 'संस्कार पथ' के सम्पादक' आचार्य विभुदेव शास्त्री ने राष्ट्रभाषा में अनुवादित किया।

यह पवित्र महर्षि दयानन्द चरित नाटक समाप्त हुआ ! ओ३म् इस प्रणव रूप में जो स्वतः हृदय में निरंतर सुच्चरित हो रहा है, जिसने अंदर से समस्त वाङ्मयको गूंथ (एक सूत्रित कर) रखा है, और जो हृदय में बाहर गूंज रहा है, उस अविनाशी परम तेज की हम उपासना करते हैं।

उस ही का ज्ञान प्राप्त करके मनुष्य मृत्यु दुःख से छूट जाता है।

उसके साक्षात्कार के अतिरिक्त मोक्ष प्राप्ति का अन्य कोई मार्ग नहीं है। इति यजुर्वेदः

अभ्यर्थना

दूरादसूयां निधूय कृपां कृत्वा ममोपरि ।
रचितमृषिभक्त्येदं विलोक्य तद्वुधोत्तमैः ॥१॥
दोषत्वमुज्ज्वलगुणा अपि यान्ति येषु,
तैरुन्नतेः किमथवेह तिरस्कृतेः किम् ?
दोषोऽपि येषु गुणतामुपयाति भूयाँ-
स्तेभ्यो नमोऽस्तु सततं भुवि सज्जनेभ्यः ॥२॥

दृष्टिदोषेण सीसकाक्षरभङ्गाद्वा यदि कुत्रचित्स्थाने अशुद्धिः संभवेत्सा सदयीभूयानूचानैः क्षन्तव्येत्यभ्यर्थयते-

रचयिता स्नातकः सत्यव्रतः ।

अभ्यर्थना

जो सद्गुणों को जन दुर्गुण मानते हैं,
उनके प्रसाद अवसाद का न मूल्य,
संसर्ग से विगुण सद्गुण हों जिन्हों के,
वे ही महोदय नमस्य सदा धरा पै ॥

दृष्टि दोषों से, धातुज अक्षरों के भंग से जहाँ-जहाँ पर अशुद्धियाँ हुई हों, तो सदय हृदयी महाशय एतदर्थ मुझे क्षमा कर कृतार्थ करें ।

इति प्रार्थयिता स्नातकः सत्यव्रत (ग्रन्थकार)



~~[illegible] आर्य समाज आणंद~~
~~आचार्य माया शंकर शर्मा षड्दर्शनाचार्य~~

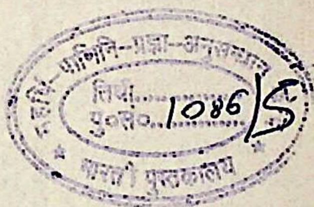
श्री दयानन्द दिग्विजयादि महाकाव्य के प्रणेता आर्य
कवींद्र महाभाग श्री मेधाव्रत मुनि महोदय
द्वारा प्रेषित आशीर्वचन—

श्रीमन्‌वेदविशारदार्यसुकवे ! सत्यव्रतस्नातक !
बारम्बार पढ़ा 'महर्षि चरितम्' आनन्द आया-मुझे;
आशातीत रसान्विताधिकतम प्रावीण्य दर्शी,
तो भीतृप्ति न पासका सुरुचिता स्वामी दयानन्द की !
सौराष्ट्र के मणिसमान महानृषिका
है चारुचित्ररमणीय चरित्र लेख,
सौराष्ट्र के ही कवि ने ऋषिका लिखा है,
भक्ति प्रसाद गुणगुम्फित आर्यवृत्त ।:
हितकरी जगको, जगके गुरु,
सुकृतिशीर्षयतीश्वर की कृति,
तव पवित्रचरित्रमयी शुभा,
पढ निमग्न मुदम्बुधि में हुआ ।।
अभिनन्दन अर्पित है मेरा, सुरवाङ्मय नाटक लेखक को,
ऋषिवर्यके ऋणसेउऋण हुए ऋषितर्पण से कविराज सुधी ।।४
साहित्यरत्न पदवीधर, सत्यसन्ध,
सत्यव्रत प्रबल वैदिक भक्ति शील ।
सरस्तती राधन कीर्ति कौमुदी,
विस्तारयेन प्राज्ञमनोहरां प्रभो ।।

अभ्युदयाभिलाषी
मुनि मेधाव्रताचार्य मुख्याचार्य आर्यकन्या
गुरुकुलस्य दिल्लीस्थनरेला नगर वर्तिनः
दिनांक १-४-१९६४

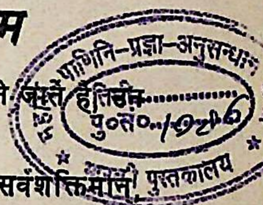
गुरुकुलम्

तपः सत्यं शिक्षाचरिमुदितं शीलमधिकं
स्वधर्मश्रद्धा वा सरलमनसां यत्रनियमः ।
गरीयोगांभीर्यं गुरुवचनविश्वासरुचिरं
चतुर्वर्गं धर्मं जनयति पवित्रं गुरुकुलम्


पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसन्धान
पु०सं० 1086
पुस्तकालय

॥ ओ३म् ॥

आर्यसमाज के नियम



१—सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सब का आदि-मूल परमेश्वर है।

२—ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है।

३—वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

४—सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

५—सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिए।

६—संसार का उपकार करना आर्यसमाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

७—सबसे प्रीतिपूर्वक, धर्मानुसार यथायोग्य बर्तना चाहिए।

८—अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।

९—प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट न रहना चाहिए, किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

१०—सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

महर्षिदयानन्दप्रणीताः सार्वभौमाः

आर्यसमाजस्य नियमाः

(श्री. पू. पं. आद्याशङ्करशर्मभिर्दर्शनाचार्यैः
या सत्यविद्याऽस्ति पदार्थधीश्च विज्ञायते यद्विबुधै
सर्वस्य तस्यास्ति विशुद्धमूलं, विश्वेश इत्याद्यवबं

ईश्वरः सच्चिदानन्दो निराकारो न विक्रि
सर्वशक्तिगतो न्यायकारी च सदयः स
अजन्मानन्तायुक्तोऽनादिर्नोपमया युतः
सर्वाधारश्च सर्वेशः सर्वव्यापकतां ग
सर्वान्तराजरामृत्युर्निर्भयो नित्यशौचभृत्
सृष्टिकारश्च विज्ञातः स ह्युपास्यो नृभिः स

वेदो हि सत्यविद्यानां पुस्तकं परिपठ्यते ।
अधीत्यध्यापनं तस्य श्रवणं श्रावणं तथा ।।
सर्वार्याणां मतो धर्मो जगत्यस्मिन् विदांवरैः ।। ३ ।।

सत्यं ग्रहीतुं वितथं च हातुं । सदोद्यमो साधुजनैर्विधेयः ।। ४ ।।

धर्मतः सर्वकर्माणि सत्यासत्यविचारतः
कर्तव्यानि जनैर्नित्यं हितायेति सतां मतम् ।। ५ ।।

शरीरात्मसमाजानां हितं कार्यं मनीषिभिः ।
तन्मुख्यं हि मतं ध्येयं समाजस्यार्यजन्मिनाम् ।। ६ ।।

कार्यं सर्वैः समं प्रीत्या धर्मौचित्यसमाश्रितम् ।
वर्तनं तद्धि मर्त्यस्य कथितं कर्मकौशलम् ।। ७ ।।

विद्याया वर्धनं कार्यमविद्यायाश्च नाशनम् ।
आर्यैः सदार्यवृत्तस्थैरेष धर्मः सनातनः ।। ८ ।।

सर्वेषामुन्नतौ सेव्यः संतोषः साधुभिर्जनैः ।
न केवलं स्वकीयायामुन्नताविह मानवैः ।। ९ ।।

ये सर्वभद्रकरणे नियमाः स्थितास्ते ।
सेव्या जनैः परवशैरपि वीतशङ्कैः ।।
प्रातिस्विकाय नियमाय रुचिर्विधेया ।
नैजी विवेकिजनपुंगवसंमता सा ।। १० ।।